संघी मोतीलालजी मास्टर

परिचय और श्रद्धांजलि

सम्पादक

जवाहिरलाल जैन

सन्त परम हितकारी, जगत माहि ।।
प्रभु पद प्रगट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी ।
परम कृपालु सकल जीवन पर, हरि सम सब दुख हारी ।।
त्रिगुणातीत फिरत तन त्यागी, रीत जगत से न्यारी ।
'ब्रह्मानद' सन्तन की सोबत, मिलत हैं प्रगट मुरारी ।।

प्रकाशक

श्री सन्मति पुस्तकालय,
जयपुर ।

मई, १९६१

मूल्य २)५०

मुद्रक
पॉपुलर प्रिन्टर्स, जयपुर

दो शब्द

सन् १९२०-२१ के आसपास की बात होगी, तब मैं पहले-पहल मास्टर मोतीलालजी के सम्पर्क मे आया। कैसे और किसके साथ पहले-पहल पुस्तकालय मे पहुचा, यह याद नही आ रहा। मास्टर साहब मेरे ननिहाल के मकान मे किराये पर रहते थे और वहा मेरा आना जाना प्राय होता ही था, अत. सम्भव है वही से उनके साथ गया होऊ, लेकिन इसमे शक नही कि प्रारम्भ से ही मास्टर साहब के प्रति असीम श्रद्धा और अद्भुत आकर्षण की जो अनुभूति मुझे हुई, वह आज तक कायम है और उसकी मिठास, मैं आजीवन नही भूल सकता।

एक बार परिचय होजाने के बाद फिर तो मुझे पुस्तकालय जाने और पुस्तकें पढने का नशा सा होगया और लगभग छ-सात साल करीब करीब प्रतिदिन या एक दो दिन के अन्तर से पुस्तकालय पहुचने और घटो वहा ठहरने का शौक रहा। तभी से पुस्तकें खासकर उपन्यास पढ़ने की ऐसी बीमारी लगी कि कभी २ साथियों मे होड होजाती कि पुस्तकालय मे आने वाला कोई भी नया उपन्यास बिना पढा तो नही रह जाता। पढने की वह बीमारी आज भी अपनी भयकरता मे कम नहीं हुई है, लेकिन उपन्यास अब अत्यन्त अपवाद रूप हो गया है।

हाँ, किन्तु पुस्तकालय मे पुस्तकों से कहीं बढकर आकर्षण तो मास्टर साहब के सौम्य, उदार और महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का था। मई-जून की भयकर गर्मी से धोती का एक हिस्सा बदन पर डाले, एक हाथ मे एक पैसे वाली खजूर की पखी लिये सारी दुपहर पुस्तकें जमा करने, नई पुस्तकें निकालने और नाम लिखकर देने का क्रम चलता रहता। इसी बीच मे नई पुस्तकें खरीदते, उनको रजिस्टर मे दर्ज करते, विविध धर्मों के सम्बन्ध मे चर्चा करते, किसी सज्जन के साथ एकाध घंटा बैठकर किसी पुस्तक का अध्ययन करते और बीच-बीच में कभी ऊघ का झौंका आ ही जाता तो उसे भी दो चार मिनट दे देते थे। पाच सात व्यक्ति जिनमे अधिक सख्या विद्यार्थियो की होती उन्हें सदा घेरे रहते। सभी के साथ मास्टर साहब की वही व्यक्तिगत निकटता, ममत्व और हिताकाक्षा। सभी यही समझते कि मास्टर साहब का सबसे अधिक स्नेह उसी पर है। और सब उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धायुक्त और आकर्षित रहते।

मास्टर साहब के साथ मेरा अधिक सम्पर्क १९३०-३२ तक रहा, बाद मे १९३४-४६ तक जयपुर से बाहर रहने के कारण जब कभी जयपुर आता, तब कभी २ उनके दर्शन हो पाते, लेकिन उनके जीवन के प्रवाह का वही क्रम रहा, वही सहानुभूति, वही स्नेह, वही हिताकाक्षा। अपने धर्म का अध्ययन करने, अगले जीवन के लिए कुछ बटोर कर रखने तथा आत्मा की ओर ध्यान देने, मदिर जाने आदि का उपदेश वे बराबर देते रहते। खेद है कि इस मामले मे मैं उनकी कसौटी पर सदा ही अधूरा उतरता, लेकिन इससे कभी न उनके स्नेह मे कमी आई और न कभी मेरी श्रद्धा उनके प्रति कम हुई। मास्टर साहब मे मैंने आत्म-सुधार और समाज-सेवा को दूध-मिश्री की भाति बिल्कुल घुला मिला पाया और यही कारण है कि वे अपने आप मे ही एक सजीव सस्था बन गये। न वे एक अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ आत्मचिंतक की भाति दुनिया से अलग और दूर थे और न वे एक सस्था कि भाति निर्जीव और व्यक्तिगत सम्पर्क तथा सहानुभूति से रहित थे। वे व्यक्ति रहकर भी सस्था बन सके और सस्था बनकर भी व्यक्ति रह सके, यही उनकी सबसे बडी विशेषता मुझे प्रतीत होती है।

मास्टर साहब का देहावसान १७ जनवरी १९४९ को हुआ। उन दिनो मैं जयपुर मे ही था, फिर भी खेद है कि उनकी कोई विशेष सेवा मुझसे नही बन पडी। इसकी कसक दिल में बराबर है। मास्टर साहब के प्रति श्रद्धाजलि के रूप में कुछ अश्रुकण मैंने लोकवाणी के जरिये उस समय अर्पित किये थे, लेकिन उससे न उनके प्रति न्याय हो सका और न मुझे उससे सतोष ही हुआ। पर मैं सोचता रहा कि कोई अधिक समर्थ विद्वान अथवा मास्टर साहब के अधिक निकट शिष्य स्मारक ग्रन्थ के काम को हाथ मे लें तो मै भी उसी तीर्थ-जल मे अपनी श्रद्धा के कुछ अश्रुकण सम्मिलित करके अपने-आप को धन्य मानूगा, लेकिन जब इस तरह का कोई भी प्रयत्न किसी ओर से होता नही दिखाई दिया और समय अधिक बीतता लगा तो फिर गत वर्ष मार्च मे मैंने ही अपने कुछ साथियो और मित्रो की सलाह से इस काम का भार अपने निर्बल कधो पर उठाने का डरते २ विचार किया। इस प्रयत्न का जो परिणाम हुआ वह इस पुस्तक के रूप मे पाठको के सामने है। इस सम्बन्ध मे मुझे बुजुर्गों और साथियो ने प्रोत्साहन, मार्ग दर्शन और सहारा दिया, लेकिन साथ ही अनेकों की ओर मे मुझे निराश भी होना पडा। जिन्होंने कृपापूर्वक सहायता दी, उन सबका मै अत्यत आभारी हू, साथ ही बार २ प्रयत्न करके भी जिनकी ओर से अन्त तक निराश ही रहना पडा, उन्हे भी मै धन्यवाद देता हू। इस सबध मे मेरा इतना ही निवेदन है कि हम जिस काम मे सहायक होना इष्ट मानें उसमे तुरन्त यथाशक्ति सहायता देदें, और जिसमे सहायक न होना चाहे

तुरन्त इन्कारी करदें। जब तक हमारे देश मे अनुचित लगने पर स्पष्ट 'न' कह सकने का आत्मबल जागृत नही होगा और हम अपने तथा दूसरो के समय और शक्ति की कद्र करना नही सीखेंगे, तब तक राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण सम्भव नही है।

मास्टर साहब के प्रति श्रद्धाजलि और सस्मरण का यह सग्रह बहुत छोटा और अधूरा है। इसे इस दिशा मे एक आरम्भ मात्र ही माना जाय। मैं मास्टर साहब के सभी शिष्यो और प्रशसको तक पहुच भी नही पाया, लेकिन मैं इस काम मे अधिक विलम्ब वाछनीय नही समझता था और पुस्तक को मास्टर साहब की पाचवी पुण्यतिथि १७ जनवरी ५३ तक प्रकाशित कर देना चाहता था, इसलिए इस अवधि के भीतर जितनी सामग्री एकत्रित हो सकी वह इसमे शामिल करदी गई है। मास्टर साहब का जीवन-परिचय लिखने मे मुझे स्वर्गीय श्री श्रीप्रकाशजी शास्त्री तथा श्री माणिकचन्दजी जैन के एक हस्तलिखित निबध से बहुत सहायता मिली है। इस सारे काम मे श्री सन्मति पुस्तकालय के प्रबन्ध ट्रस्टी श्री गेंदीलालजी गगवाल का सक्रिय सहयोग रहा है। खेद है कुछ कारणो से पुस्तक का प्रकाशन निश्चित तिथि से एक पक्ष बाद हो रहा है।

मुझे आशा है कि मास्टर साहब के जीवन, विचार और आचरण की यह सक्षिप्त सी झाकी पाठको मे मास्टर साहब की ही भाति आत्मोन्नति और समाज-सेवा के समन्वित जीवन-दर्शन को समझने और समझ मे आये तो प्रयत्न पूर्वक अपनाने की प्रेरणा और स्फूर्ति देगी—

इक जन जावे, दूजा आवे, फिर भी ज्योति जले।

बापू निधन तिथि
३० जनवरी, १९५३

जवाहिरलाल जैन

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

संतोष की बात है कि श्री सन्मति पुस्तकालय के नये भवन के शिलान्यास के अवसर पर पुस्तक का द्वितीय सस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया गया, क्योकि पहला संस्करण लगभग समाप्त हो चुका था। इस सस्करण में नये सस्मरण भी काफी संख्या मे जोड दिये गये हैं। पहले हमारा विचार मास्टर साहब के द्वारा चुने और पसन्द किये गये भजनो, सूक्तियों और कथाओं का छोटा सा सग्रह इस पुस्तक में बढा देने का था, पर नये सस्मरणो की सख्या बढ़ जाने के कारण यह विचार छोड देना पडा और यह तय करना पडा कि स्वतत्र रूप से ही निकट भविष्य में किसी उपयुक्त अवसर पर प्रकाशित किया जाय। नये संस्करण प्राप्त करने मे, पुस्तक के प्रूफ आदि देखने मे और समय में पुस्तक को छाप देने मे अनेक मित्रों का बहुत अधिक परिश्रम रहा है। जिन भाई-बहिनों ने सस्करण लिखे हैं और जिन्होंने पुस्तक छपाई आदि के कामों में मदद की है, उन सब का मैं हृदय से आभारी हूँ। इस सब मे भी मास्टर साहब की परोपकारी और समाज-सेवी मनोवृत्ति का अमर मौजूद है—ऐसा मुझे लगता है।

जीवन ज्योति	जवाहिरलाल जैन
ए—२१, बजाजनगर	सपादक
जयपुर-४	

विषय-सूची

विचार और दृष्टिकोण

संक्षिप्त
जीवन-परिचय

(जन्म–२५ अप्रैल १८७६, देहावसान–१७ जनवरी १९४९)

हजरत उस्ताद श्री मोतीलालजी साहब सघी जयपुरी

मृत्यु-तिथि सम्बन्धी पद्य

(श्री चांदबिहारीलाल माथुर 'सबा' जयपुरी शागिर्द मरहूम व मगफूर)

(१)

अगर तारीख की है फिक्र तुझको।
सबा उस्ताद मोतीलालजी की॥
तुझे फिर फिक्र क्या है—तू यह कदे।
सिपहरे इक्तदारे जौक मानी॥[1] (१९४९ ई०)

(२)

रहलत है यह मोतीलालजी की।
थी फैज रसाने खल्क जो जात॥
तारीख यह उनकी कह सबा तू।
खामोश है मुस्तजाबे दावात[2]॥

(३)

मोतीलाल हुए रुखसत।
देकर आज गमे जा काह।
कहदे सबा तारीख उनकी।
फख्र जमाना रुजवा जाह[3]॥

---

(१) सम्मान, प्रेरणा और सार्थकता के सूर्य। (२) दुआ स्वीकार करने वाली शक्ति अर्थात् ईश्वर भी शोक मे चुप है। (३) युग के गौरव तथा स्वर्ग के अधिकारी।

संघी मोतीलालजी मास्टर

(१)
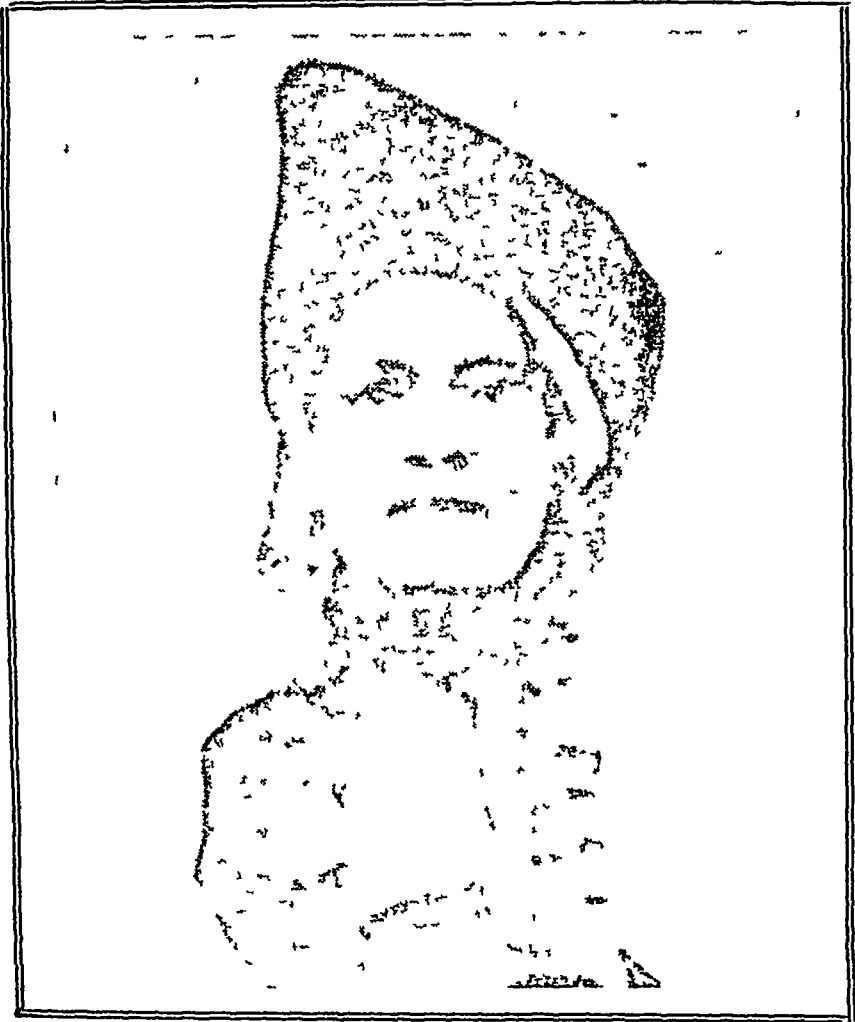
मघी मोतीलालजी मास्टर का जन्म २५ अप्रैल, १८७६ को वर्तमान राजस्थान राज्य के जयपुर डिवीजन के अन्तर्गत जयपुर जिले के चौमू कस्बे मे हुआ था। चौमू भूतपूर्व जयपुर रियासत का एक प्रतिष्ठित ताजीमी ठिकाना रहा है। मास्टर साहब के पितामह श्री लादूरामजी मघी ठिकाने के कामदार तथा चौमू के अत्यन्त प्रतिष्ठित और मान्य व्यक्तियो मे से थे। श्री लादूरामजी के तीन पुत्र थे– १. श्री विजयलालजी, २ श्री पन्नालालजी, ३ श्री जौहरीलालजी। श्री विजयलालजी के पुत्र मास्टर मोतीलालजी थे। लादूरामजी के समय मे घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी, लेकिन बाद मे स्थिति बिगडती गई।

मास्टर साहब ने छठी श्रेणी तक–अपर प्राइमरी तक की शिक्षा चौमू मे ही प्राप्त की। चौमू मे आगे शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण वे जयपुर आगये और यहां के महाराजा कालेज मे भर्ती हो गये। यही से १८९७ मे उन्होंने प्रयाग विश्व विद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास की। १८९९ मे जब वे इन्टरमीजियट की कक्षा मे–उस जमाने के एफ० ए० मे पढ़ रहे थे, तब उन्होने पढना छोड दिया।

कॉलिज छोडने के बाद कई वर्ष तक वे ट्यूशन करके अपनी आजीविका चलाते रहे। २७ अक्टूबर १९०७ को वे जयपुर नगर के वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक नियत हुए। उस समय उनका वेतन १५) मासिक था। करीब एक वर्ष बाद उक्त स्कूल के उठ जाने पर वे महाराजा कालिजियट हाई स्कूल मे उसी वेतन पर सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। २० जुलाई १९१७ को उसी वेतन और उसी पद पर उनका तबादला शिवपोल मिडिल स्कूल मे कर दिया गया। उसी सस्था मे उन्हे १ मई १९२० को ५) मासिक की वेतन-वृद्धि मिली। इसके बाद दो बार मे पाच-पाच की तरक्की सन् १९२३ तक मिली और इस प्रकार १ सितम्बर १९२३ से उन्हे ३०) मासिक का वेतन मिलने लगा।

१९२५ के जुलाई मास मे मास्टर साहब का तबादला चादपोल हाई-स्कूल में हो गया और उसके बाद उन्हे २) वार्षिक की वेतन वृद्धि प्राप्त हुई जो १९२८ मे ४०) मासिक पर समाप्त हो गई क्योकि उनके वेतन की ग्रेड

२४-२-४० तक ही थी। १९३७ तक मास्टर साहब इसी हाईस्कूल मे गणित का अध्यापन करते रहे और इसी वर्ष नवम्बर मास मे तीस साल की सरकारी नौकरी और ६१ वर्ष की अवस्था हो जाने के कारण उनकी पेंशन करदी गई। २०) मासिक की सरकारी पेंशन उन्हें आजीवन मिलती रही। सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त करने पर मास्टर साहब के विद्यार्थियो और सहयोगियो द्वारा एक विशाल विदाई समारोह और अभिनन्दन का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता तत्कालीन शिक्षा मन्त्री जोवनेर के ठाकुर नरेन्द्र सिंहजी ने की। मास्टर साहब को अभिनन्दन पत्र तथा ग्यारह सौ रुपये की थैली भेंट की गई। थैली की रकम मास्टर साहब ने तुरन्त ही साधनहीन विद्यार्थियो के उपयोग मे लाने की घोषणा की। मास्टर साहब अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते समय इतने भावमय हो गये कि उनसे कुछ न बोला गया, वे केवल हाथ जोडकर खडे रह गये। उनका एक लिखित सदेश ही सभा मे पढकर सुनाया गया, जिसमे उन्होने विद्यार्थियो को समाज सेवी और शुद्धाचरणयुक्त बनने की ही प्रेरणा दी।

मास्टर साहब का विवाह राजस्थान की तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के अनुसार ९ वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था। उनकी धर्मपत्नी की अवस्था उस समय केवल पाच वर्ष की थी। २८ वर्ष के सुखी वैवाहिक जीवन के बाद मास्टर साहब की धर्मपत्नी का देहात हो गया। यद्यपि मास्टर साहब की अवस्था उस समय केवल ३७ वर्ष की ही थी, किन्तु उन्होने दूसरा विवाह करने से इन्कार कर दिया और इस प्रकार लगभग ४० वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। मास्टर साहब के कुल मिलाकर चौदह सन्तान हुईं, लेकिन केवल दो ही जीवित रही। उनके पुत्र श्री सूरजमलजी का जन्म स० १९५० मे हुआ था। दूसरी सतान उनकी पुत्री सोनबाई थी जिनका जन्म स० १९५३ मे हुआ था। सोनबाई का विवाह मास्टर नानूलालजी के छोटे भाई श्री छोटेलालजी से हुआ था। श्री छोटेलालजी अद्भुत क्षमताशील, सूझ-बूझ तथा लगन वाले व्यक्ति थे। श्रीमती सोनबाई का देहान्त केवल १८ वर्ष की अवस्था मे ही हो गया और छोटेलालजी अपनी पत्नी की मृत्यु के तीन दिन बाद ही जयपुर से चले गये और बाद मे वे गाधीजी के निकटतम सम्पर्क मे आये और साबरमती आश्रम तथा सेवाग्राम आश्रम मे वे गाधीजी के अत्यन्त निकट के सहयोगियो तथा साथियो मे थे। गाधीजी ने 'आश्रम जीवन' और 'ग्रामोद्योग के आरम्भ और विकास मे स्वर्गीय श्रीमगनलालजी गाधी और श्री छोटेलालजी को ही सबसे अधिक सहायक माना था। श्री छोटेलाल जी का देहात बापू के निर्वाण के कुछ ही वर्ष पूर्व हो गया था।

श्री सूरजमलजी के केवल एक ही पुत्री है। इनका विवाह अलवर निवासी श्री नयनानन्दजी जैन से हुआ। उनकी सतति के रूप मे ही अब मास्टर साहब की वश परम्परा कायम है। इनमे श्री निर्मल कुमार की अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की है और वे बी. काम, एलएल बी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद अब चार्टर्ड अकाउन्टैण्ट का कार्य कर रहे है।

२

मास्टर साहब का जन्म जैन धर्म की दिगम्बर शाखा की अनुयायिनी खडेलवाल वैश्य जाति के दोशी गोत्र मे हुआ था, अत दिगम्बर जैन धर्म सम्बन्धी धार्मिक सस्कार और खडेलवाल वैश्य (सरावगी महाजन) जाति सम्बन्धी सामाजिक सस्कार उन्हें जन्म और कुल से ही प्राप्त थे और समाज-सुधार तथा समाज-सेवा का बीज भी उनमे आरम्भ से ही अ कुरित प्रतीत होता है, क्योंकि अध्ययन समाप्त करने और सरकारी सेवा मे प्रविष्ट होने के साथ-साथ वे १९०६ के आसपास तत्कालीन स्थानीय जैन समाज के अत्यन्त प्रगतिशील नेताओ और कार्यकर्ताओ के जिनमे श्री अर्जुनलालजी सेठी, घीसीलालजी गोलेछा आदि प्रमुख थे निकटतम सपर्क मे आ चुके थे और उनकी अन्तरग समिति के सदस्य बन चुके थे। वे उसी समय से स्वदेशी के भक्त बन गये और श्री सेठजी के शिक्षा-प्रसार सबधी कामो मे भी बहुत सहायता करने लग गये। श्री सूर्यनारायणजी सेठी तथा श्री घीसीलाल जी गोलेछा के सहभोज को लेकर दिगम्बर जैन समाज मे बहिष्कार का जो आदोलन चला था, उसके शिकार वे भी हुए। बाद मे श्री अर्जुनलालजी सेठी के देश की क्रातिकारी राजनीति मे सक्रिय रूप से लग जाने के कारण शिक्षा-प्रसार, चरित्र तथा समाज-सुधार का वह सराहनीय कार्य बन्द हो गया और मास्टर साहब तथा सेठीजी के मार्ग भिन्न-भिन्न हो गये। मास्टर साहब आध्यात्मिकता, चारित्रिक शुद्धता और जन शिक्षण के मार्ग से समाज-निर्माण के काम मे आगे बढे और सेठी जी कभी तिलक और कभी गाधी के मार्गों पर चलने के प्रयत्न मे कहा से कहा जा पहुचे यह तो राजस्थान के राजनैतिक इतिहास का एक पृष्ठ ही बन गया है। सन् १९१६ मे जयपुर मे प्लेग का प्रकोप हुआ। प्लेग के उस प्रकोप मे जिस प्रकार मृत्यु का ताण्डव चारो ओर उठा, उसके कारण सम्भवत धार्मिक ग्रन्थो के अध्ययन और आध्यात्मिक विचारो की ओर विशेष झुकाव हुआ। यद्यपि विचारो मे दृढ़ता उनमें शुरू से ही थी और घोर प्लेग के जमाने मे भी वे शहर मे आकर अपना ट्यूशन सम्बधी कार्य-क्रम यथावत् चालू रखते रहे, फिर भी इस बार उन्होने चौमू जाते समय मोक्ष शास्त्र का विशेप अध्ययन किया और उनकी अभिरुचि

आध्यात्मिकता की ओर अधिकाधिक होने लगी। जयपुर वापिस आने पर वे बधीचन्दजी के मन्दिर मे प० चिमनलालजी गोधा—वक्ताजी – के व्याख्यान मे प्रतिदिन शास्त्र श्रवण के लिए जाने लगे। इससे उनमे धार्मिक भावनाओ को विशेष बल मिला।

अगले वर्ष (१९१७) एक ऐसी घटना हुई जिसने उनकी जीवन धारा को बदलने मे बडी सहायता दी। वे एक दिन ट्यूशन करके अपने घर की ओर लौट रहे थे। रास्ते मे एक मित्र की दुकान थी जहा वे प्राय. ठहर जाया करते थे। उस दिन उस दुकान पर एक मद्रासी साधु खडे थे। वे अग्रेजी ही बोलते थे, जिसे उनके मित्र समझ नही पाते थे। मास्टर साहब को देखते ही मित्र महोदय ने उनको बुला लिया और मास्टर साहब से कहा आप इनसे बातचीत कीजिये। इसके बाद उस साधु तथा मास्टर साहब मे लम्बा वार्तालाप हुआ।

साधु महोदय ने मास्टर साहब से पूछा—आप कौन हैं?

मास्टर साहब ने उत्तर दिया—मैं जैन हूँ।

जैन किसे कहते हैं? जैनधर्म की क्या विशेषता है? आप किस अर्थ में जैन हैं?—आदि कई प्रश्न साधु महोदय ने मास्टर साहब से किये। मास्टर साहब ने अपनी जानकारी के अनुसार उनका उत्तर तो दिया, पर ठीक और सन्तोषपूर्ण उत्तर न पाने से दोनो की ही तृप्ति न हुई। यह सामान्य सिद्धात है कि किसी भी विवेचन का सबसे कठिन भाग परिभाषा ही है, और आदर्श की बात तो की जाती है, लेकिन उस पर जबखरे उतरने की बात सामने आती है तो प्राय जबान बन्द हो ही जाती है। अस्तु।

साधु महोदय ने कुछ अन्य लोगो से भी इसी प्रकार के प्रश्न किये। किसी ने कहा—मैं वैष्णव हू, किसी ने कहा—मैं शिवोपासक हू, लेकिन यह पूछने पर कि वैष्णव धर्म की विशेषता क्या है? शिवोपासक कैसे होने चाहिये—इन प्रश्नो का उत्तर सामान्य जानकारी वाले लोग क्या दे सकते थे? सब या तो चुप हो जाते थे या वैसे ही कुछ उत्तर दे देते थे।

साधु महोदय तो एक दो दिन बाद चले गये, लेकिन इस प्रसंग का मास्टर साहब के चित्त पर बडा असर हुआ। उन्हें लगा कि न हममे अपने बारे में और दूसरो के बारे में कुछ ज्ञान ही है, और न जो कुछ हम अपने आपको मानते हैं, उसके अनुकूल हमारा कर्म ही है। हम स्वय अज्ञान के समुद्र मे डूबे जा रहे हैं और दुनिया भी डूबी जा रही है। जिसे देखो वह

आत्म-ज्ञान के सम्बन्ध मे बिल्कुल कोरा ही है। जब मार्ग ही सामने स्पष्ट नही है तब सत्पथ पर चलने का या न चल पाने का सवाल ही कहा है !

बहुत कुछ सोचा, कोई उपाय न सूझा। लेकिन साधु महोदय ने मास्टर साहब की आत्मा को एक बारगी ही झकझोर दिया था, उनके दिल मे एक प्रकार की टीस पैदा हो गयी थी, पिपासा जागृत हो गई थी, एक मीठी मीठी बेचैनी पैदा हो गई थी जो उन्हे प्रेरणा दे रही थी और उन्हे कुछ न कुछ करने के लिए बराबर उकसा रही थी। उन्होने निश्चय किया कि सबसे पहले उन्हें स्वय आध्यात्मिक और धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिये और फिर आम जनता मे इनके अध्ययन की रुचि उत्पन्न करनी चाहिये। ज्ञान के प्रकाश के बिना अज्ञानाधकार मे मार्ग नही सूझ सकता। अतः उन्होने स्वय अपने धर्म-ग्र थो के अध्ययन से आरम्भ करने का विचार किया। लेकिन उनके सामने एक कठिनाई थी। स्कूल मे अध्ययन के समय उनकी दूसरी भाषा उर्दू थी। हिन्दी पढने मे भी इन्हे बडी कठिनाई होती थी, सस्कृत का तो प्रश्न ही कहाँ, और जैनधर्म का तो प्राय समग्र उच्चकोटि का साहित्य सस्कृत अथवा प्राकृत मे ही था। लेकिन लगी हुई लगन छूटने वाली कहा थी— उन्होने हिन्दी टीका मे ही धर्म ग्रन्थो को पढने का अभ्यास बढाया और सस्कृत के पारिभाषिक शब्दो का ज्ञान विद्यार्थी की भाँति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार कठिन परिश्रम के बल पर आध्यात्मिक ग्रन्थो का अध्ययन और ज्ञान वे लगातार और आजीवन प्राप्त करते रहे।

जन सेवा की दृष्टि से वे पहले अपनी आय का निश्चित अश करीब ७) या ८) मासिक गरीबो को भोजन कराने तथा कबूतरो को जुआर डालने मे व्यय किया करते थे। अब वे लगभग १०) मासिक की धार्मिक पुस्तकें खरीदने लगे। कुछ पुस्तकें उनके पास पहले भी थी। कुछ ही समय मे १०००-१५०० पुस्तको का उत्तम सग्रह उनके पास हो गया। अपने उस सग्रह से उन्होने अपने निवास स्थान से थोडे फासले पर स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर बडे मन्दिर मे श्री सन्मति पुस्तकालय की स्थापना सन् १९२० मे की। वे अपने अध्यापन तथा ट्यूशन कार्य को करते हुए सुबह, शाम अथवा स्कूल की छुट्टी आदि, का जो भी अवकाश का समय मिलता उसमे वे चुनी हुई पुस्तकें लेकर अपने परिचित मिलने जुलने वालों, प्रतिष्ठित व्यक्तियो के घरो पर जाते और वहाँ उनकी योग्यता के अनुरूप पुस्तकें पढने को देते, आत्मज्ञान की आवश्यकता समझाते और सन्मार्ग पर बढने पर जोर देते। निश्चित समय पर वे स्वय भी पुस्तकें लेने पहुँच जाते और दूसरी पुस्तकें दे आते। यदि कोई सज्जन आलस्यवश पुस्तकें नही पढ पाते तो उन्हे स्वाध्याय के लाभ और

आवश्यकता समझाते, पढने मे रुचि उत्पन्न करते और पुस्तक पढने की प्रेरणा देते। इसके साथ ही पुस्तको की सुरक्षा की दृष्टि से उन पर अखबारी कागज का गत्ता चढाने का काम भी वे स्वय प्रतिदिन घटे दो घटे बराबर करते थे। उन्होने अपने जीवन काल मे हजारो ही पुस्तको पर इस प्रकार गत्ते चढाये होगे।

३

पुस्तकालय को स्थापना के बाद मास्टर साहब का जीवन उसमे अधिकाधिक केन्द्रित होता गया। धीरे २ पुस्तकालय मास्टरसाहब-मय होता गया और मास्टर साहब पुस्तकालय–मय होते गये, यहा तक कि अन्त मे मास्टर साहब और पुस्तकालय दोनो एक ही दृष्टि से पर्यायवाची बन गये।

पुस्तकालय की स्थापना के समय मास्टर साहब अपने अवकाश का समय ही उसमे दे पाते थे। अध्यापन, ट्यूशन, खान-पान-विश्राम, शयन आदि से जो समय बचता वह उसमे लगाते थे। पुस्तकालय ज्यो २ जमता गया त्यो २ वे उसमे अपना समय और शक्ति भी अधिकाधिक लगाते गये। पहले उन्होने ट्यूशनो का करना छोडा। फिर वे धीरे २ घर पर अपने रहने का समय कम करते गये। अध्यापन कार्य से पेंशन लेने के बाद वे स्कूल मे दिया जाने वाला समय भी यही लगाने लगे और बाद मे तो वे अपने घर केवल भोजन के लिए जाते थे, बाकी समय रात दिन पुस्तकालय मे ही रहते थे और इसी के काम मे अपनी सारी शक्ति और समय लगाते थे। वे न केवल पुस्तकालय के सस्थापक और सरक्षक थे, बल्कि वे इसके व्यवस्थापक, लेखक, चपरासी और भृत्य सब कुछ अकेले ही थे। पुस्तकालय के कमरे की झाड़ू-बुहारी से लेकर, पुस्तके खरीदना, गत्तेचढाना, रजिस्टरो मे दर्ज करना, पाठको को देना-लेना, पुस्तकें घर जाकर दे आना, घरो से ले आना—सभी काम वे अकेले ही करते थे। विद्यार्थियो की टोली जरूर उन्हें थोडी बहुत मदद कर देती थी और उन्ही मे से धीरे २ उनके कुछ सहायक भी मिल गये थे, लेकिन वे अपने काम मे बराबर लगे रहते थे, जितनी सहायता समय पर मिल जाती वह सहज स्वीकार थी, बाकी अपना काम वे लगातार करते रहते थे।

मास्टर साहब की अभिरुचि अधिकाधिक आध्यात्मिकता की ओर थी। वे सदा इसी प्रकार की पुस्तको का अध्ययन करते थे और औरो को भी इसी दिशा मे प्रेरणा देने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। लेकिन वे बालको और आम जनता के झुकाव से अपरिचित नही थे और उन्हे उनके परिचित और आकर्षक मार्ग से उनके जीवन मे प्रवेश करने और उसे प्रभावित करने की कला खूब आती थी। वे धार्मिक थे, लेकिन धर्मान्ध नही थे। वे सुधारक थे लेकिन

डिक्टेटर नही। वे कुनैन देना चाहते थे, लेकिन उसे खाड में लपेट कर देने के विरोधी नही थे। वे इस बात को जानते थे कि लोगो की सामान्य रुचि कथा, कहानियो, उपन्यासो, नाटको आदि की ओर विशेष रहती है, अत उन्होने अपने पुस्तकालय मे हजारो की सख्या में ऐसी पुस्तकें खरीदी थी और वे पाठको को उनकी रुचि के अनुसार पुस्तके देते थे लेकिन पुस्तके वे स्वय परिमित सख्या मे देते थे, साथ मे एक दो पुस्तकें धार्मिक, आध्यात्मिक अथवा सदाचार सम्बन्धी अवश्य देते थे, और जब दोनो प्रकार की पुस्तकें ले जाने वाले पुस्तकें वापिस लाते तो उन धार्मिक पुस्तको मे उन्होने क्या पढा, इसकी जाच करते थे। अगर वे पुस्तकें बिना पढी वापिस आती तो वे पाठक को समझाते और दुबारा वही दे देते और पढने की प्रेरणा करते, इस प्रकार वे धीरे-धीरे उसकी सद्ग्रन्थ पढने की रुचि को जागृत और प्रोत्साहित करते थे। वास्तव मे वे कुशल मनोवैज्ञानिक की भाति अपने पाठको की रुचि और झुकाव का अध्ययन करते तथा उसे धैर्यपूर्वक सही दिशा मे मोडने का प्रयत्न करते रहते थे। बालको, युवको और वृद्धो की इस प्रकार की सेवा वे दत्त चित्त होकर करते रहते थे।

४

विद्यार्थियो की सहायता मास्टर साहब के जीवन का मुख्य ध्येय रहा। वे व्यवसाय की दृष्टि से शिक्षक थे और आदर्श की दृष्टि से भी आजीवन शिक्षक रहे। वे व्यावसायिक कार्य के अतिरिक्त विद्यार्थियो को नि शुल्क पढाते थे, इसके अलावा वे असमर्थ विद्यार्थियो को पाठ्य पुस्तकें देने अथवा उनकी व्यवस्था करवा देने मे आजीवन ही तत्पर रहे। वे स्वय अपनी आय मे से इस प्रकार की पुस्तकें खरीदते, परीक्षाओ मे सफल होने वाले विद्यार्थियो को इस बात की प्रेरणा देते कि उनके काम मे आ-चुकने वाली पुस्तकें पुस्तकालय को प्रदान करदें ताकि वे दूसरे विद्यार्थियो के काम आ-सकें अथवा वे सीधे गरीब विद्यार्थियो को पुस्तकें दिलवा देते। सामान्य अध्ययन की हजारो पुस्तको के अलावा पाठ्य पुस्तको का यह आदान–प्रदान शिक्षा सत्र के आरम्भ मे वे प्रतिवर्ष बहुत बडी सख्या में करते तथा करवा देते थे।

गरीब विद्यार्थियो के लिए जिस प्रकार पाठ्य पुस्तकें प्राप्त करना एक बडे सकट का काम होता था, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक सकट-पूर्ण स्थिति उनके सामने विश्वविद्यालय की विभिन्न परीक्षाओ के फार्म भरने के समय आती थी जब ५) से लेकर ३०) या ४०) तक उन्हे परीक्षा-शुल्क के नकद देने पडते थे। इस कठिनाई के अवसर पर भी मास्टर साहब अपनी पूरी शक्ति और प्रभाव से विद्यार्थियों की सहायता के लिए तत्पर रहते थे। किसी

के लिए पूरी फीस, किसी के लिए आधी या चौथाई जैसी जिसके लिए उचित समझते, या जैसी जिसकी शक्ति देखते उसकी व्यवस्था करने मे जुट जाते थे, बल्कि जिन विद्यार्थियो की सहायता वे पुस्तकों आदि से करते थे, उनके लिए फीस आदि के बारे मे भी वे पहले से ही सोचने लग जाते थे और अपने परिचित तथा सहायक वर्ग को इस बारे मे पहले से टटोलते रहते थे और समय के पूर्व ही सहायता की व्यवस्था कर रखने की चिन्ता रखते थे ताकि ऐन वक्त पर कही असमर्थ और योग्य परीक्षार्थी परीक्षा देने से वचित न रह जाय। फार्म भरने के दिनो मे उनके चारो ओर ऐसे विद्यार्थियो की भीड लगी रहती और वे उनके लिए उनकी असमर्थता के लिहाज से सहायता प्राप्त करने, सहायता दे सकने वाले लोगो के पास स्वय जाते, विद्यार्थियो को ले जाने या मिलवा देने मे व्यस्त रहते।

बहुत से गरीब विद्यार्थियो की दिक्कत केवल पाठ्य पुस्तकें प्राप्त कर लेने या परीक्षा के लिए फीस प्राप्त कर लेने से ही खतम नहीं होती थी, उन्हे खाने-पहनने और रहने की व्यवस्था मे भी बहुत कठिनाई पडती थी और इस मे भी मास्टर साहब विद्यार्थियो की बडी सहायता करते थे। वे ऊची श्रेणी के विद्यार्थियो के लिए प्राइवेट ट्यूशन की अथवा किसी आंशिक काम की व्यवस्था करने का प्रयत्न बराबर करते रहते थे क्योकि उनके बहुत से परिचित लोग अपने बालको के लिए उचित अध्यापक की भी माग करते रहते थे। लेकिन वे केवल ट्यूशन की व्यवस्था करके ही सतुष्ट नही हो जाते थे, बल्कि इस बात पर भी निगाह रखते थे कि अध्यापक अपने कार्य के द्वारा विद्यार्थी और उसके अभिभावक को सतुष्ट रख पाता है या नही और साथ ही अभिभावक उक्त अध्यापक को समुचित पारिश्रमिक समय पर दे देता है या नही, क्योकि वे अध्यापक और अभिभावक दोनो के समान हितैषी थे।

मास्टर साहब की यह सारी सहायता बिना किसी धार्मिक, जातीय या वर्णसबधी पक्षपात सबके लिए खुली थी। जो उनके पास पहुच पाता या पहुच जाता और जिसकी असमर्थता और कठिनाई की वास्तविकता मे उनका विश्वास हो जाता, वे बराबर उसकी सहायता करते थे, तथापि यह कहना अप्रासगिक नही होगा कि स्वभाविक रूप मे उनके सपर्क में विशेप आने के कारण जैन विद्यार्थियो को उनसे अधिक लाभ पहुचा होगा।

मास्टर साहब के सपर्क मे आने वाले कुछ ऐसे असमर्थ विद्यार्थी भी थे जो मास्टर साहब के पास ही रहते थे और मास्टर साहब उनके भोजन-वस्त्रादि का व्यय स्वय अपने पाससे-अपनी छोटी सी आय मे से ही देते थे।

ऐसे विद्यार्थी बरस–दो बरस सहायता प्राप्त करके अध्ययन समाप्त कर लेते थे और अपने धन्धे मे लग जाते थे। कुछ विद्यार्थी ऐसे भी थे जो दस–पाच वर्ष भी इस प्रकार मास्टर साहब की सीधी सहायता लेकर उनके ही पास रहे और बरसो विद्याध्ययन करते रहे—ऐसे विद्यार्थियो मे से अनेक आज उच्च कोटि के शिक्षित तथा ऊचे पदो पर है।

मास्टर साहब के मन मे विद्यार्थियो की सहायता के सबध मे इस तरह का कोई भेद भाव नही था कि प्राइमरी शिक्षा वाले, माध्यमिक या कालेज की शिक्षा प्राप्त करने वाले या किसी टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त करने वाले शिक्षार्थी की मदद करें या न करें। उनका हृदय सब के लिए समानरूप से खुला हुआ था–वे केवल पात्र का विचार करते थे और इस बात का प्रयत्न करते थे कि कोई सुशील और योग्य छात्र आर्थिक या अन्य कठिनाई के कारण अपनी वाछित शिक्षा–प्राप्ति से वचित न रह जाय।

आज जयपुर मे हजारो शिक्षित नागरिक ऐसे अवश्य हैं जो यह अनुभव करते हैं कि यदि मास्टर साहब का वरदहस्त उनके सिर पर नही होता तो वे आज के वर्तमान पद और स्थिति पर कभी नही हो सकते थे। इस का अनुमान आज कौन लगा सकता है कि उनकी जैसी सहायता के अभाव मे कितने विद्यार्थियो को कितनी कठिनाइयो और अभावो का सामना करना पडता होगा और मास्टर साहब के जैसे प्रेरक व्यक्तित्व की आज भी और सदा ही कितनी आवश्यकता रहेगी, लेकिन आज का सार्वजनिक जीवन जितना छिछला, स्वार्थपूर्ण और राजनीतिमय हो गया है उसमे आज मूक और निर्माण कारी प्रवृत्ति के लिए किसे अवकाश है और कौन इसकी कद्र करता है ?

मास्टर साहब का व्यक्तित्व बडा आकर्षक था। गोरा चिट्टारग, मझला-कद, करीब ५॥ फुट की ऊचाई, दुहरा मोटा शरीर, सादा पहनावा–धोती और कुर्त्ता या कमीज, पजामा और अचकन भी और सिर पर प्राय लाल रग की खूटेदार पगडी, उन्हे सैकडो व्यक्तियो मे भी अलग ही पहचाना जा सकता था।

मास्टर साहब का व्यक्तिगत जीवन और दिनचर्या अत्यन्त सादी थी। वे सुबह सूर्योदय से बहुत पहले उठ जाते थे और करीब डेढ दो घटे का समय सामयिक तथा आत्मचिन्तन मे लगाते थे। इसके बाद आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त होकर वे मन्दिर मे जाकर शास्त्र श्रवण करते थे तथा यदि नगर मे कोई साधु सन्त आये होते तो उनके पास कुछ समय के लिए धर्मोपदेश के लिए चले जाते थे। वहा से आकर नौ और दस बजे के बीच भोजन कर लेते

थे। शास्त्र-श्रवण और धर्मोपदेश के समय जो भी बात उन्हें उपयोगी और उचित लगती थी उसे वे नोट कर लिया करते थे और उसका मनन-चिन्तन रास्ते मे आते जाते भी करते रहते थे। इसके बाद का समय वे पुस्तकालय मे ही लगाते थे। शाम को सूर्यास्त के पूर्व ही भोजन कर लिया करते थे और भोजनोपरान्त फिर मन्दिर मे जाकर करीब एक घटे तक सामायिक करते थे। भोजन वे अपने घर पर जाकर करते थे और अपने जीवन के अतिम पच्चीस वर्षों मे केवल दो बार जाकर भोजन कर लेने से अधिक कोई सपर्क घर से उन्होने नही रक्खा।

भोजन और खान पान के सम्बन्ध मे मास्टर साहब अस्वादव्रत के पूर्ण आग्रही थे। वे दो बार से अधिक तो भोजन करते ही नही थे। कभी एकाशन आदि भी करते थे। भोजन के समय जो कुछ थाली मे आजाता था, वही खा लेते थे, स्वय अपनी ओर से कह कर खाने के लिए कभी नही बनवाते थे। पिछले वर्षों मे दूसरो के यहा कभी भोजन करने के लिए नही जाते थे। वैसे दूध, दही और छाछ उनकी प्रकृति के अधिक अनुकूल पडते थे। जैन होने के नाते मास-मद्य का तो प्रश्न था ही नही, वे रात्रि-भोजन भी कभी नही करते थे, यद्यपि पुस्तकालय के कार्य मे व्यस्त होजाने के कारण प्राय शाम हो जाती थी और भोजन के मामले मे उनके और सूर्य के बीच मे अक्सर कडी होड पड जाती थी। पहनावा भी उनका सारे जीवन भर बडा सादा और अल्पव्ययी रहा। वे आजीवन धोती या पजामा, कुर्ता और उसके ऊपर अचकन और पगडी ही पहनते रहे। पेन्शन हो जाने के बाद मे ज्यादातर धोती कुर्ता ही पहनते थे और पुस्तकालय मे गर्मी के मौसम मे तो वे प्राय केवल धोती ही पहने रहते थे, कभी-कभी धोती का आधा हिस्सा कधो पर डाल लेते थे। जाडे के मौसम मे वे कभी टोपा और साफा भी बाध लेते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे वे कपडो की सख्या मे कमी करते गये। कपडो की सख्या मे सादगी के साथ २ वे कपड़ो के सस्ते और टिकाऊपन तथा स्वदेशीपन के भी बडे समर्थक थे। वे सदा ही जयपुर या चौमू की हाथ बुनी हुई रेजी या दुसूती या सामान्य चौखाने के कपडे का उपयोग करते थे जो द्वितीय युद्ध के पूर्व शायद चार या पाँच आने गज से अधिक की कीमत का शायद ही होता हो। जूते भी हमेशा स्थानीय बने हुये ही और देशी कट के ही पहनते थे। इस प्रकार उनका सारा खान-पान, पहनाव और रहन-सहन स्थानीय और सादा था तथा देशी धधो वालो को रोजी पहुचाने वाला होता था।

'मास्टर साहब अपने दृष्टिकोण के अनुरूप आध्यात्मिक तथा भक्ति रस सम्बन्धी भजनो को सदा याद करते व गुनगुनाते रहते थे और उन्ही के

भावो में लीन रहते थे और इस प्रकार वे शरीर से सदा ही भगवान का अर्थात् समाज का काम करते ही रहते थे साथ ही जवान से सदा भगवान का नाम लेते रहते थे वे वचन या काययोग तो साधते ही थे, साथ ही मनयोग की साधना मे निरतर प्रयत्नशील रहते थे। जब कभी वे सोते या दूसरो से बात चीत करते या पठन-पाठन मे नही लगे होते थे, तब वे बराबर इस प्रकार के भजनों को गुन गुनाया करते थे—मेरी भावना की यह आकाक्षा—मैत्री भाव जगत मे मेरा सब जीवो से नित्य रहे, दीन दुखी जीवो पर मेरे उर से करुणा स्रोत्र बहे । तथा 'भगवन ! समय हो ऐसा जब प्राण तन से निकले, सुद्धात्मा हो मेरी अरु मोह मन से निकले', यह कडिया पुस्तकालय मे आने वाले विद्यार्थियो तथा अन्य व्यक्तियो ने सैंकडो ही बार उनसे सुनी होगी ।

मास्टर साहब का हृदय वडा करुणा पूर्ण था। वास्तव मे उनके हृदय मे करुणा का स्रोत ही बहता था । वे लोगो को दुखी देख कर विह्वल हो जाते थे और कोई भी करुणाजनक प्रसग वे सुनते या कभी विद्यार्थियो को या अन्य लोगो को सुनाते तो वे गद्‌गद हो जाते थे । उनकी आखो से आसुओ की धारा वह निकलती थी। वे अभावग्रस्त तथा पीडित मानव की भौतिक तथा मानसिक सहायता और सहानुभूति तक ही सीमित नही रहते थे, बल्कि अपने शुद्ध और करुणापूर्ण हृदय के कारण वे उसके दुख और वेदना को स्वय अनुभव करने लगते थे और उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते थे। आज के व्यापार और स्वार्थ प्रधान युग मे उनकी यह वृत्ति अपवाद रूप ही मानी जायगी ।

मास्टर साहब का अग्रेजी का ज्ञान इन्टर तक था, लेकिन अध्ययन-काल मे उनकी सहायक भाषा फारसी और उर्दू रहने के कारण उनका हिन्दी भाषा सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही थोडा था और सस्कृत तो वे बिल्कुल जानते ही न थे। परन्तु जैसे-जैसे उनकी रुचि भक्ति, अध्यात्म और धर्म की ओर बढ़ती गई और पुस्तकालय सम्बन्धी कार्य का विस्तार होता गया उनका हिन्दी का तथा धर्म और दर्शन सम्बन्धी ज्ञान वढता गया और इन विषयो के गूढार्थ को वे समझने लग गये थे। यह सही है कि वे प्रचलित अर्थ मे पडित अथवा विद्वान नही हो पाये थे, लेकिन उन्हें अपने आध्यात्मिक विकास और अनुभूति के लिए जितनी जानकारी की आवश्यकता थी वह उन्होने प्राप्त करली थी और पाडित्य-पूर्ण विद्वता यद्यपि उन्हे प्राप्त नही हुई लेकिन इसमे शक नही कि आध्यात्मिक ज्ञान और कर्तव्य बुद्धि उनमे बहुत विकसित हो गई थी और सच्चे अर्थ मे उन्होने ज्ञान और कर्म का समन्वय कर लिया था ।

मास्टर साहब 'नेकी कर और नदी मे डाल' वाले सिद्धान्त के पक्षपाती थे। वे इस बात का प्रयत्न करते थे कि यदि उनसे किसी की सहायता बन आवे तो उसका आभास भी दूसरो तक न पहुँच सके। साथ ही उनकी यह भी कोशिश रहती थी कि जिसे सहायता दी जाती हो उसे उसका भार या अहसान न लगे, और उसका आत्म-गौरव भी न घटे। वे या तो उसके पिता या निकट सम्बन्धी बनकर मदद करते या करवा देते या ऋण कह कर उसकी मदद करते जिससे यदि वह बाद मे वापिस कर देता तो औरो के काम मे रकम आ जाती और नही दे पाता तो उसके पास सहायता के रूप मे रह जाती, किन्तु वापिस करने का प्रयत्न लेने वाला करता रहता। मास्टर साहब के अपने आर्थिक तथा अन्य साधन तो नगण्य से थे ही, लेकिन उनके परिचितो और सहायको की सख्या और क्षेत्र बराबर बढता गया और हजारो रुपया लोगो ने गुप्त सहायता के रूप मे पुस्तको के लिए, विद्यार्थियो के लिए, दुखी, रोगी और गरीबो के लिए दिया और वह किस प्रकार किन की मदद मे, बिना जाति, धर्म, पेशे आदि के भेद-भाव के केवल वास्तविक जरूरत के आधार पर योग्य लोगो के पास पहुच गया इसका ज्ञान या तो उनको होता था या सहायता पाने वाले को या शायद सहायता करने वाले व्यक्ति को भी थोडा बहुत होता हो।

मास्टर साहब सर्व धर्म समभाव के प्रति निष्ठाशील होने के साथ ही अपने सप्रदाय-धर्म के पूरे अनुयायी थे। वे किसी धर्म या सम्प्रदाय के प्रति द्वेष या हीनता का भाव नही रखते थे, और प्रत्येक धर्मानुयायी को अपने-अपने धर्म का अध्ययन करने और उसे पूरी तरह मानने की ही प्रेरणा देते थे, किन्तु साथ मे वे स्वय अपने परम्परागत धर्म सम्बन्धी आचार-विचार के ही आग्रही थे, उसमे उनकी श्रद्धा अडिग थी। उस क्षेत्र मे उन्हे परीक्षा-प्रधानता की आवश्यकता नही लगती थी। इसी प्रकार आचार और व्यवहार मे भी अपने सम्प्रदाय की परपरागत रुढियो को आग्रह पूर्वक मानते थे। छूआछूत, खान-पान आदि के मामलो मे भी परपरागत मर्यादा से आगे नही जाते थे। लेकिन उनके प्रेम और सहानुभूति का क्षेत्र अत्यत विस्तृत था, इसमे वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय जाति का बन्धन नही था, वे प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और सहायता की भावना रखते थे तथा शक्ति और साधनो के अनुसार मुक्त और उदार भाव से सहायता करते थे।

मास्टर साहब का सर्वश्रेष्ठ स्मारक—

श्री सन्मति पुस्तकालय

निश्चय ही श्री मोतीलाल जी के जीवन का सबसे सच्चा और सबसे बडा स्मारक श्री सन्मति पुस्तकालय है, जिसके सस्थापक, व्यवस्थापक, लेखक और भृत्य-सब कुछ मास्टर साहब ही थे। प्रख्यात अमेरिकन निबधकार और विचारक इमर्सन ने एक स्थान पर लिखा है कि सस्था अपने सस्थापक की केवल विराट छाया है, यह कथन मास्टर साहब और उनकी सस्था पर विशेष-रूप से लागू होता है, क्योकि श्री सन्मति पुस्तकालय प्रत्येक दृष्टिकोण से मास्टर साहब के विचारो और कार्यो की छाया ही है।

जैसा पहले कहा जा चुका है इस पुस्तकालय का आरभ मास्टर साहब ने अपनी अल्प आय के निश्चित अश ८-१० रुपया मासिक की पुस्तकें खरीद कर सन् १९१६-१७ के आस पास किया था। उनके एक शिष्य श्री लादूराम जी लुहाडिया का कहना है कि मास्टर साहब ने पहले दिन बडे मन्दिर के ऊपर के तिवारे मे (जहा आज भी यह पुस्तकालय स्थित है) एक कोने की छोटीसी आलमारी मे दस पद्रह पुस्तकें लाकर रक्खी और उन्हे पहली पुस्तक प्रद्युम्न चरित्र पढने को दी, तब से उन्हे नियमित रूप से प्रतिदिन पुस्तक पढने-स्वाध्याय करने का शौक लग गया।

मास्टर साहब ने उस समय अपनी पुस्तको का विभाजन चार खण्डो मे किया था। पहला 'क' विभाग जिसमे दिगम्बर जैन धर्म की पुस्तकें थी, दूसरा 'ख' विभाग जिसमे श्वेताम्बर जैन धर्म की पुस्तके थी, तीसरा 'ग' विभाग जिसमे वैदिक तथा अन्य धर्मो की पुस्तकें थी, चौथा 'घ' विभाग जिसमे लौकिक कथा-कहानी, उपन्यास आदि की सामान्य पुस्तकें थी। यही विभाजन-क्रम उनका आजीवन चला और आज भी पुस्तकालय की पुस्तको का क्रम लगभग वही है। स्पष्ट ही यह क्रम किसी वैज्ञानिक आधार पर नही है और आधुनिक पुस्तकालय-विज्ञान के अनुसार निरर्थक है, किन्तु मास्टर साहब के जीवन-काल मे उन्हे अपने पाठको के लिए उपयुक्त पुस्तकें छांटने, और देने तथा खरीद कर रखने मे बहुत उपयोगी लगा और वे पुस्तको की सख्या हजारों तक पहुँच जाने पर भी इसी क्रम से पुस्तको को रखते रहे और उन्हे नगर की जनता को पठन-पाठन के लिए देते रहे। हजारो पुस्तकें प्रतिवर्ष वे लोगों को पढने को देते रहे और हजारो ही वे प्रति वर्ष खरीदते रहे।

मास्टर साहब का पुस्तकें खरीदने का क्रम भी अपना अलग ही था। वे इस बात के फेर मे कभी नही पडे कि उनका पुस्तकालय ज्ञान की अमुक शाखा या अमुक श्रेणी या वय के पाठको की आवश्यकता और अभिरुचि की पूर्ति मे

विशेषता प्राप्त करे। उन्होने कभी यह ध्येय सामने नही रक्खा कि उनके पुस्तकालय मे अमुक विषय या धर्म की पुस्तको का तो सर्वांग पूर्ण सग्रह हो ही जाय, बल्कि वे पुस्तकालय मे पुस्तकें लेने आने वाले बालक, किशोर, युवा वृद्ध, स्त्री या पुरुष की आवश्यकता और अभिरुचि के अनुकूल के समय २ पर यथा साधन बराबर पुस्तकें खरीदते रहे। उनके जैन धर्मावलबी होने के कारण आरभ मे जैन लोग अधिक आते थे तो उन्होने आरभ मे वे पुस्तकें अधिक खरीदी। फिर वैदिक लोग भी अधिक आने लगे तो उक्त धर्मों और सप्रदायो की पुस्तकें खरीदी और फिर मुसलमान और ईसाई सज्जन भी आने लगे अथवा इन सब धर्मों की पुस्तको मे लोगो की रुचि प्रतीत हुई तो इन धर्मो के धर्म-ग्रन्थ भी उन्होने काफी सख्या मे खरीद लिये। साथ ही वे इस बात को भी जानते थे कि आम तौर पर लोगो की रुचि कथा-कहानी, उपन्यास आदि की ओर अधिक रहती है और एक खास उम्र मे—किशोर अवस्था मे लोगो को इस तरह की पुस्तको का नशा सा रहता है तो उन्होने हजारो की सख्या मे इस प्रकार की पुस्तकें भी पुस्तकालय मे खरीदी, क्योकि वे जानते थे कि इस प्रकार की पुस्तकें चाहे ज्ञान-वृद्धि और तत्वदृष्टि के लिहाज से उपयोगी न हो किन्तु जनता को आकर्षित करने के लिए आवश्यक हैं और एक उम्र मे इनकी भूख सर्व-व्यापक है। इसी प्रकार वे इस बात के भी कायल न थे कि एक पुस्तक की एक प्रति ही काफी है, वे बिना इस बात का विचार किये कि ऐसा करने से पुस्तकालय मे विविध पुस्तकों की सख्या सूची मे कम रहेगी एक पुस्तक की दस-बीस नही बल्कि सौ-सौ और डेढ-डेढ सौ प्रतिया भी खरीद लेते थे और उनका विद्यार्थियो, युवको तथा वृद्धो मे खूब प्रचार करते थे। इस प्रकार मास्टर साहब ने अपने पुस्तकालय के लिए पुस्तकें खरीदने, उनकी सूची रखने आदि मे केवल अपने पाठको की रुचि, आवश्यकता, उनकी नैतिक उन्नति का तथा उन्हे पुस्तकें निकाल कर देने मे अपनी सुविधा और सरलता का ही ध्यान रक्खा था और अपनी सामान्य बुद्धि का ही उपयोग किया था, इसमे पुस्तकालय—विज्ञान और तत्सबन्धी आधुनिक सिद्धातो का उपयोग नही किया। उनके पास उन सब के लिए न समय था और न साधन ही थे।

पुस्तकें देने के सम्बन्ध मे भी उनके नियम और तरीके बिल्कुल सरल व्यवहारिक और इसलिए कुछ नये और अपने ही थे। पुस्तकालय की सदस्यता के लिए कोई प्रवेश-शुल्क, डिपाजिट या मासिक अथवा वार्षिक चदा उन्होने कभी नही रक्खा। उन्होने पुस्तकें देने में न किसी दूसरे की जमानत चाही और न पुस्तकें देने मे एक-दो या दस पाच का या लौटाने मे सप्ताह, पक्ष या माह का कोई नियम या बधन ही रक्खा। नये से नये आदमी को वे उसके निवास स्थान

का पूरा पता लिखकर उसकी आवश्यकता और अपनी सुविधानुसार पुस्तकें दे देते थे। यह सभव था कि वे किसी को पुस्तक देने से बिल्कुल इन्कार कर देते बहुत छोटे बालक जो भी अभी भली-भाति पढने और समझने भी नहीं लगे थे, इस कोटि मे आजाते थे और यह भी होता था कि कोई उनके पास से आठ-दस पुस्तकें तक ले जाते थे–इस कोटि मे वे लोग आते थे जो पुस्तकालय से बहुत दूर-दूसरे गाव या कस्बे के रहने वाले थे और जल्दी जल्दी पुस्तकें लेने नही आ सकते थे।

पुस्तकें लौटाने के सम्बन्ध में जैसा ऊपर कहा जा चुका है समय या अवधि का कोई प्रतिबन्ध नही था। लोग अपनी सुविधा के अनुसार पुस्तकें पढकर वापिस ले आते थे। यदि कुछ पुस्तकें ऐसी होती जिन की माग अधिक होती तो पुस्तकें देते समय ही उन्हें जल्दी वापिस करने की ताकीद कर दी जाती थी, फिर भी बहुत से लोग प्राय पुस्तकें लौटानें मे देरी करते थे या प्रमादवश उन्हे केवल ले जाकर रख लेते थे, न स्वय पढते थे न औरो के उपयोग मे आनें के लिए लौटाते ही थे। ऐसे लोगों के लिए हरेक पुस्तकालय मे चपरासियो की व्यवस्था रहती है अथवा समय की अवधि के बाद लानें वालो पर अर्थ-दण्ड का नियम रहता है लेकिन श्री सन्मति पुस्तकालय मे दोनो ही व्यवस्थाए नही थी। न तो इस पुस्तकालय का कोई चपरासी तकाजा करने आता था और न देरी से लानें वाले पर कोई जुर्माना ही किया जाता था, बल्कि मास्टर साहब स्वय सुबह के एक दो घटे अथवा आवश्यकता पडनें पर सध्या को एकाध घटा लगाते थे और वे लोगो के घरो पर तकाजा करने पहुच जाते थे। यही नही वे स्वय इस भ्रमण मे लोगो को पढने को नई पुस्तकें भी दे आते थे और पुरानी ले भी आते थे। इस प्रकार ज्ञान की इस गगा को लोगो के ठेठ घर तक पहुचा देने का भागीरथ-कार्य करने से भी मास्टर साहब नही चूकते थे।

इस तरह की सतयुगी व्यवस्था मे स्वाभाविक था कि लोग पुस्तकें रख-लेते, हजम कर जाते और उन्हें न लौटाते। हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि गत तीस वर्षों मे कम से कम दस हजार पुस्तकें इस पुस्तकालय से गायब हो गई हैं। यह भी पता चला है कि लोगो ने खास कर विद्यार्थियों ने कभी २ उन चोरी की पुस्तको के बल पर अपने और पुस्कालय भी चलाये हैं। इस सब को जानते और समझते हुए भी मास्टर साहब ने अपने तरीके को बदलने से इन्कार कर दिया। उनका कथन था कि एक चपरासी को रखने मे मुझे कम से कम पाच सौ–छ सौ रुपये वार्षिक का व्यय करना पडेगा, इसके बजाय मैं छ सौ रुपया प्रतिवष की पुस्तकें अधिक खरीदू गा और इस मूल्य की पुस्तकें खो भी जाय तो मैं घाटे में नही रहूगा, क्योकि पुस्तकें तो जहा भी रहेगी, चाहे

वे पैसा देकर खरीदी गई हो या कही जाकर रखदी गई हो, पढने के काम में आवेंगी ही और उन से पढने वाले को लाभ पहुँचेगा ही। इस के अलावा मैं स्वय लोगो के पास पहुचने का, पुस्तकें वापिस लाने का, पुस्तकें लौटाने की भावना जागृत करने का और अपनी जिम्मेदारी समझाने का प्रयत्न करता ही हू। इससे मास्टर साहब की इस उच्च धारणा का कि, जो कुछ है समाज का है—मेरा कुछ नही—पूरा पता लगता है और निश्चय ही तीस वर्ष मे दस हजार पुस्तको का नुकसान—जो रुपयो मे दस हजार से अधिक नही होगा, तीस वर्ष मे पाच सौ रुपये वार्षिक के चपरासी को दी जाने वाली रकम से कम ही होता है, बल्कि यो मानना चाहिये कि मास्टर साहब ने पाच हजार रुपये की बचत ही की और समाज मे अगर जागृति और ईमानदारी की भावना जागृत हो तो उन दस हजार पुस्तको मे से अधिकाश वापिस भी आ सकती हैं और जहा भी वे हैं और रहेगी पढने वालो को बराबर लाभ पहुचाती रहेगी।

हो सकता है कि समाज मे व्यवस्था और अनुशासन के समर्थक इस प्रकार की व्यवस्था या दर असल व्यवस्था रहितता (?) पर नाक भौं सिकोडें लेकिन वास्तव मे मास्टर साहब अपनी सरल और सतयुगी धर्म वृत्ति के कारण उस समाज-सगठन के समर्थक थे जो बाहरी अनुशासन और दण्ड पर नही बल्कि आतरिक अनुशासन अथवा पूर्ण स्वशासन पर आधारित है, जिसे आधुनिक परिभाषा मे अहिंसक अराजकवादी समाज व्यवस्था कहा जा सकता है। इस दृष्टि से मास्टर साहब का यह प्रयोग विशेष रूप से अध्ययन योग्य है।

पुस्तकालय का स्थान भी इस सस्था की भाति ही अजीब था। हल्दियो के रास्ते मे स्थित जैन मन्दिर के बाहरी भाग के एक तिबारे की एक छोटी सी अल्मारी मे उन्होंने कुछ दर्जन पुस्तको से इस पुस्तकालय की स्थापना की थी, वे तीस वर्ष तक इस पुस्तकालय को इसी खुले तिबारे मे चलाते रहे। यह ऐसा स्थान है जिसमे एक भी कमरा नहीं है और जो दो ओर से बिल्कुल खुला है और यह स्थान भी मुश्किल से तीन सौ वर्ग फुट के क्षेत्रफल का होगा इस एक तिबारे मे वे तीस वर्ष तक किताबें देते रहे और जैसे २ किताबें बढती गई इसमे अलमारिया दीवारो मे बनाते रहे, जब दीवार मे अलमारी बनने की गुंजाइश खत्म हो गई तो उन्होंने इसमे लकडी की अलमारिया रखना शुरू किया और अत मे यह सारा तिबारा अलमारियो से इस प्रकार भर गया कि इसमे पचास आदमियो के भी बैठने की गुजाइश नही रही, केवल अलमारियों मे पुस्तको को ढूढ निकालने का काम भी आसान काम नही रहा, क्योकि न केवल अलमारियों को खोलना असुविधा पूर्ण था, बल्कि उन अलमारियो मे पुस्तकें

भी ऐसी ठसाठस एक के ऊपर एक भरी रहती थी कि इच्छित पुस्तक निकालना मास्टर साहब के अलावा किसी दूसरे के लिये, केवल कारेदारद ही नही कारे नामुमकिन ही था। लेकिन मास्टर साहब उसी तिवारे और अलमारियो के उसी झुण्ड मे शाति पूर्वक जमे रहे, उन्होने कभी पुस्तकालय के लिए भवन बनाने व इस काम के लिए धन प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया बल्कि इसके विपरीत अगर उनके साथी या शिष्य इस तरह का सुझाव भी रखते जो वे भवन के बजाय रुपये की उपयोगिता पुस्तकें अधिक खरीदने मे मानते थे और जो कुछ उन्हे प्राप्त होता इसी काम मे लगा देते थे।

मास्टर साहब को पुस्तको से बालकों की भाति स्नेह था, वे उन्हें प्रेम पूर्वक खरीदते, उन पर कागज का गत्ता चढाते, उन्हे सावधानी से रखते और लोगो को पढने देते तो उन्हें सावधानी से रखने की ताकीद करते। उन्होंने अपने जीवन मे हजारो पुस्तकों पर अपने हाथो से गत्ता चढाया होगा। वे दिन मे कम से कम दो तीन घटे बराबर यह काम करते थे। बरसात के मौसम मे जब बादल होते तो आलमारियों मे सील घुस जाने और किताबो के खराब हो जाने की आशका मे उन्हें नही खोलते थे।

सक्षेप मे यह कहना उचित होगा कि मास्टर साहब का लगभग समग्र व्यक्तित्व श्री सन्मति पुस्तकालय मे केन्द्रित हो गया था, उनकी भावनाए और विचार इसके साथ गुथ गये थे। यही उनकी वास्तविक सतान थी और यही उनका सच्चा उत्तराधिकारी। मास्टर साहब आज अपने पूर्व पार्थिक शरीर से मुक्त होकर भी इस पुस्तकालय के कण २ मे व्याप्त हैं। यही उनका सच्चा और सर्वोत्तम स्मारक है। इसी की सुरक्षा और उन्नति के द्वारा जयपुर के नागरिक मास्टर साहब का उनके ऊपर जो गुप्त ऋण हैं उससे उऋण हो सकते हैं तथा उनकी समाजहित की सहज भावना के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित कर सकते हैं।

इस समय श्री सन्मति पुस्तकालय की सूचियो के अनुसार पुस्तको की सख्या १७७७७ हैं। इसमे १६३६ पुस्तकें दिगम्बर जैन धर्म की, ७१० पुस्तकें श्वेताम्बर जैन धर्म की, ३४४६ पुस्तकें वैदिक धर्म तथा अन्य धर्मों की तथा ८६८५ पुस्तकें कथा-कहानी उपन्यास आदि सम्बन्धी हैं। ये पुस्तकें क, ख, ग और घ श्रेणी की हैं इनके अतिरिक्त लगभग चार हजार पुस्तकें एस (S) श्रेणी की हैं जो सभवत मास्टर साहब की अपनी आय मे से खरीद कर पुस्तकालय मे रक्खी गई हैं। इस गिनती में पुस्तको के नामो की सख्या ही शामिल है, पुस्तकों की सख्या शामिल नही है-अधिकतर पुस्तकों की एक से अधिक

प्रतिया है और कुछ की तो जैसा ऊपर कहा जा चुका है सौ-डेढ सौ तक प्रतियाँ हैं। ऐसी स्थिति मे पुस्तको की कुल सख्या पैंतीस हजार से कम नही हैं। इनमे दस हजार पुस्तकें ऐसी भी अनुमानित की जाय जो इन तीस सालों मे पुस्तकालय से खोई जा चुकी हैं, तब भी यहाँ की पुस्तकों की सख्या पच्चीस हजार से कम नही है। इनमे बहुत सी पुस्तकें ऐसी भी हैं जिनके सस्करण समाप्त हो चुके हैं और कुछ तो अलभ्य भी हैं।

पुस्तकालय की वर्तमान व्यवस्था मास्टर साहब द्वारा ही निर्मित एक ट्रस्टी मडल के हाथ मे है जिसके सदस्य १ श्री गेंदीलालजी गगवाल, २. श्री भवरलालजी पाटनी, ३. श्री निर्मलकुमारजी हाँसूका, ४ श्री कमलचदजी सोगानी, ५ श्री प्रकाशजी हैं, इनमे श्री प्रकाशजी का लगभग दो वर्ष पूर्व देहात हो चुका है, श्री गेंदीलालजी गंगवाल प्रबन्ध ट्रस्टी हैं। यह ट्रस्टी मडल अपनी स्वल्पशक्ति और साधनो के अनुसार इस सस्था को यथावत् जीवित रखने मे प्रयत्नशील है। यह सही है कि जब तक मास्टर साहब जैसा सर्व समर्पणशील व्यक्तित्व इस सस्था मे न आवे, तब तक यह पहले की भाति सजीव और सक्रिय नही हो सकती, लेकिन ऐसे व्यक्तित्व के अभाव मे भी यह तो वाछनीय और आवश्यक ही है कि यह सस्था एक व्यवस्थित और आधुनिक पुस्तकालय के रूप मे जयपुर के नागरिको की अधिक सेवा करे, इसमे जनता और सरकार दोनो की सहायता और सहयोग आवश्यक है। सस्था व्यक्ति से ही बनती है, लेकिन व्यक्ति का अभाव हो जाने पर सस्था नष्ट न हो—यह जिम्मेदारी तो समाज और शासन की है ही।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है पुस्तकालय आरम्भ से ही दिगम्बर जैन बडा मन्दिर मे रहा है। लेकिन पुस्तको की सख्या अधिक होने के कारण स्थान की कमी मास्टर साहब के जमाने मे ही तीव्रता से अनुभव होने लगी थी। इस कमी को दूर करने के लिये प्रयत्न भी यदा कदा चलते थे पर नजर मे कोई उपर्युक्त स्थान की व्यवस्था नही हो सकी। गत वर्ष अर्जुनलाल सेठी नगर में २५०० वर्ग गज का एक प्लाट राजस्थान सरकार द्वारा इस लोकोपकारी प्रवृत्ति के लिये निशुल्क प्रदान किया गया है। पुस्तकालय भवन का नक्शा बन चुका है और उसका शिलान्यास आगामी ३१ मई को मास्टर साहब के पुराने तथा प्रिय शिष्य और राजस्थान हाईकोर्ट के वर्तमान मुख्य न्यायाधीश श्री दौलतमल भडारी के द्वारा कराये जाने का निश्चय किया गया है।

संस्मरण

ग्रौर

श्रद्धांजलि

'मोती' और 'लाल' से भी बहुमूल्य और सच्चे अर्थ में 'मास्टर'

(श्री गोविन्दप्रसाद 'श्रीवास्तव')

मास्टर मोतीलालजी सघी निस्सन्देह अपने समय के महापुरुषो में से थे। उनके उच्च विचारो और भावनाओ की छाप ज्यो की त्यों जयपुर के शिक्षित जगत पर विद्यमान है। उनका समस्त जीवन परोपकारमय था। परोपकार ही उनके जीवन का लक्ष्य था। श्री सन्मति पुस्तकालय उनके परोपकारमय जीवन तथा शिक्षा प्रेम की जीती जागती स्मृति है।

उनकी कृतियाँ 'मोती" और "लाल" से भी बहुमूल्य हैं और वे सच्चे अर्थ मे 'मास्टर' (स्वामी) थे। आध्यात्मिक जगत मे मास्टर शब्द का अर्थ वह गुरु है जिसको अपनी इन्द्रियो, मन तथा वाणी पर पूर्ण अधिकार हो। उनके सपर्क से मुझे जो लाभ हुआ उसके लिये मैं सदैव उनका आभार मानता रहूँगा।

मानव का सेवक ही सच्चा ईश्वर-भक्त

(श्री गफ्फारअली)

किसी महान् पुरुप की जीवनी लिखने का उद्देश्य जहा एक तरफ यह होता है कि हम उसके प्रति अपना कर्तव्य पालन करें तथा श्रद्धा प्रकट करें, वहा दूसरी तरफ यह भी होता है कि उस महान् पुरुप की जीवनी वर्तमान व भावी पीढी के लिए शिक्षाप्रद हो सके। किन किन परिस्थितियों मे किस प्रकार मनुष्य को कार्य करना चाहिये, इसका उत्तर हर क्षेत्र के महान् पुरुपो की जीवनी से मिल सकता है और मनुष्य खुद ठोकरें खाने के बजाय दूसरो के अनुभवों से लाभ उठा सकता है।

एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि मे मास्टर मोतीलालजी केवल एक स्कूल मास्टर थे जिन्होंने अपने जीवन का अधिकाश भाग बच्चो को शिक्षा देने मे व्यय किया, पर वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। उन्होने जीवन का एक ऐसा

दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसकी जानकारी वर्तमान परिस्थिति मे अत्यन्त आवश्यक है। सम्भवत: जैन समाज के लोग जिसमें वे पैदा हुए थे यह समझते हो कि वे एक "बलन्द पाया" जैन थे जिन्होंने जैन धर्म के मूल सिद्धान्तो के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत किया था पर मेरा तो यह विश्वास है कि हर धर्म का व्यक्ति जो उनके नजदीक जाता था यह अनुभव करता था कि वे अन्य किसी धर्म की तुलना में उसी के धर्म के अधिक निकट है। यह एक ऐसी विशेषता है जो एक मनुष्य को साधारण व्यक्ति से ऊचा उठा देती है। वास्तव मे महान् व्यक्ति किसी धर्म विशेष का अनुयायी नही होता, वह तो सर्व सामान्य 'धर्म' या मानव धर्म का ही अनुयायी होता है।

श्री मोतीलालजी के प्रेम तथा अथाह उदारता ने उनको सम्प्रदायो के सीमित क्षेत्र से निकाल कर एक ऐसे विशाल क्षेत्र मे पहुँचा दिया जहा वे एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से अन्तर करना पाप समझते थे। जब कभी मैं उनसे मिलता मेरी दृष्टि उनके सम्मान में स्वय झुक जाती थी और मैं मौन होकर उनके सम्मुख खडा रहा करता था। वे मुझे अक्सर कहा करते थे कि खुदा की याद दिल मे रक्खो और नमाज पढा करो। एक दिन वे मुझ से कहने लगे कि "काबे" की सीमा मे किसी प्राणी की जान लेना पाप समझा जाता है, ऐसा क्यो है ? मैं तो चुप रहा, पर वे स्वय बोले—ईश्वर किसी की भी जान लेना पसन्द नही करता। जब कभी वे किसी भी धर्म के मानने वाले से मिलते तो वे उससे कहते थे कि तुम अपने धर्म का पालन करो। मैंने उन्हें कभी जैन धर्म या किसी अन्य धर्म की प्रशसा या बुराई करते नही सुना। उनका यह खयाल था कि सब धर्मों के मूल सिद्धान्त एक से हैं मगर लोग अपने फायदे के लिए मतभेद पैदा करते हैं। इसी दृष्टिकोण का, जो उन्होंने अपने जीवन मे पेश किया, प्रचार भारत की वर्तमान स्थिति मे अत्यन्त आवश्यक है। अगर भारत साम्प्रदायिकता की आग से मुक्त न हो सका तो सम्भव है कि भारत की एकता छिन्न-भिन्न हो जावे और आजादी ने हमारे लिये प्रगति के जो मार्ग खोले हैं वे सब बन्द हो जायें।

मोतीलालजी अपने जीवन मे जिन सिद्धान्तों का पालन व प्रचार करते रहे अगर वे सिद्धान्त भारत मे क्रियात्मक रूप से स्वीकार कर लिये जावें तो भारत भूमि से सम्प्रदायो व धर्मों के झगडो का अन्त हो जाये व हम ससार के अन्य राष्ट्रो के सम्मुख सगर्व सिर ऊचा कर सकें। सत्य व अहिंसा के पालन करने का प्रचार गाधीजी अपने जीवन मे करते रहे मगर मास्टर मोतीलालजी का यह विचार था कि ये दोनो सिद्धान्त प्रत्येक धर्म में वर्तमान हैं। अगर कोई

मास्टर साहब ने जीवन भर बाहरी टीप-टाप से घृणा की और उन्होंने अपनी आय का अधिकांश भाग दरिद्र विद्यार्थियों, अनाथों व विधवाओं पर व्यय किया था और इस तरह लोगों की सहायता करते थे कि सहायता लेने वालों को कभी हीन भावना का बोध न हो। एक हाथ से देते थे तो दूसरे हाथ को खबर भी नहीं होती थी। पेंशन होने पर जब मैंने उनसे यह कहा कि अब तो आपके लिये बड़ी दिक्कत हो जायगी, तो कहने लगे जहां तक कल्पना का प्रश्न है, मेरे सामने बहुत काम है। रहा आय का प्रश्न तो उसके सम्बन्ध में मुझ पर पेंशन का कोई असर नहीं है। मैं प्रायः अपनी आय का आधा भाग पुस्तकालय पर खर्च करता था। अब मैं यह समझूंगा कि पुस्तकालय के लिये मुझे कहीं अन्य स्थान से रुपयों का प्रबन्ध करना है। प्रकट में तो यह सिद्धांत सामान्य मालूम होता है पर इस सिद्धांत के मानने वाले जीवन भर प्रसन्नचित्त रह सकते हैं। अपनी आय से अपना व्यय आधा रखना एक ऐसा सुन्दर सिद्धांत है जिससे मनुष्य की बहुत सी मुसीबतें दूर हो सकती हैं और सब साधारण इस सिद्धांत का पालन कर अपने जीवन को आराम से व्यतीत कर सकते हैं।

बलिहारी गुरुदेव जिन, गोविन्द दिया मिलाय

(श्री भंवरलाल पाटनी)

मास्टर साहब मोतीलालजी राजस्थान की एक विमल विभूति थे। वे ऐसी मिट्टी से बने हुए थे कि उनमे ख्याति प्राप्त करने की तनिक भी भावना न थी। आत्म-श्लाघा और ख्याति-लाभ से ससार के महापुरुष भी बहुत कम बच पाये हैं, पर मास्टर साहब ऐसे महानुभाव थे, जिनको सदा अपने कर्त्तव्य-कर्म से ही काम था, नाम से नहीं। उन्होने सहस्रो दीन और अनाथ छात्रो को सहायता देकर पढाया। वे दीन छात्रो के लिए पुस्तक, फीस आदि का ही प्रबन्ध नही करते थे, अपितु आवश्यकता पडने पर वे उनके लिए भोजन, वस्त्र आदि की भी समुचित व्यवस्था करते थे। ज्ञान-दान को ही वे महान दान समझते थे। वे सम्यक् दृष्टि थे उनकी दृष्टि में जैन और जैनेतर के बीच कोई अन्तर न था। शिक्षा-प्रचार और सन्मार्ग-प्रदर्शन ही उनके जीवन का ध्येय था। समर्थ व्यक्तियो के हृदय को आकर्षित करना, उनसे सहायता प्राप्त करना, फिर उस सहायता को सम्यक् रूपेण असमर्थ छात्रों की सहायतार्थ वितरण करना, यह काम उन जैसे कर्मठ और त्यागी पुरुष का ही था।

श्री सन्मति पुस्तकालय के द्वारा उन्होंने उपन्यासो के ससार में धार्मिक वातावरण फैलाया है। जिन लोगो को धर्म से रुचि न थी, उनको वे उपन्यास के साथ धार्मिक पुस्तक भी देते थे और समय-समय पर वे जाच भी करते रहते थे। मेरे जीवन पर तो मास्टर साहब की पूरी-पूरी छाप है। यदि उन जैसा व्यक्ति पथ-प्रदर्शन न करता तो मैं उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लाभ से वचित ही रहता। मास्टर साहब से मुझे धार्मिक शिक्षा भी पूर्णरूप से प्राप्त हुई। मेरा रोम-रोम मास्टर साहब के प्रति आभारी है। मैंने मास्टर साहब को सदा मनुष्य के रूप मे नही, देवता के रूप मे देखा है और मैं तो कवि के इस दोहे में पूर्ण विश्वास करता हूँ—

गुरु गोविन्द दोनो खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरुदेव जिन, गोविन्द दिया मिलाय॥

महाप्राण मास्टर साहब

(श्री भंवरमल सिंघी)

उपकार को पहचानना और उपकारी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मनुष्य का अपरिहार्य कर्तव्य है, तथापि उपकृत होना भला किसे अच्छा लगता है ! जीवन मे ऐसी परिस्थितिया आए कि आदमी की विवशता उसे किसी के उपकार का मुखापेक्षी बनने को बाध्य करे, इससे बडा दुर्भाग्य मनुष्य-जीवन मे और क्या हो सकता है ? उपकार से अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है, पर वह जीवन के लिए एक भार स्वरूप बन जाता है।

मोतीलालजी मास्टर साहब ने सैकडो—हजारों विद्यार्थियो के लिए जो सहायता की और करवाई, उसे उपकार की सज्ञा देनी हो तो दीजिए, पर उनका उपकार कभी किसी के जीवन मे भार नही बना, जीवन की सहज स्वभाविक आत्मचेतना के विकास मे बाधक नही बना। उपकार की सज्ञा भी आज भले ही हम उनके कार्य को दे दें, परन्तु जिस समय हम उपकृत हुए—मैं अपनी ही बात कहता हूँ—मास्टर साहब के मन मे तनिक भी उपकार-भावना नही देखी और उनका व्यवहार ऐसा होता था कि मा के वात्सल्य को उपकार माने, तो उनके स्नेह को भी उपकार कहें।

उपकारी के पास लोग हाथ फैलाए पहुच जाते हैं—जीवन की विवशता उन्हे ढकेलकर वहा पहुचा देती है, पर मास्टर साहब को मैंने योग्य और होनहार विद्यार्थी की विवशता को दूर करने के लिए स्वय पहुचते देखा है। बीस-पच्चीस वर्ष पहले की बातें याद आती हैं तो आज भी कलेजा धक्-धक् करने लगता है, कुल दस रुपयो की किताबो के अभाव में मा-भारती के कितने होनहार लाल विद्यालय के द्वार तक पहुच पहुच कर रह जाते, अगर मास्टर साहब का सहारा उन्हें न मिला होता ! जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे आज मास्टर साहब का सहारा पा अपने पैरों पर खडे हुए जो हजारों व्यक्ति चमक रहे हैं, वे बुझ गए होते, अगर मास्टर साहब न हुए होते। ये व्यक्ति मास्टर साहब के सजीव अभिनन्दन हैं।

जयपुर के विद्यार्थी-जगत् मे उनकी सेवाओ की ज्योति हमेशा चमकती रहेगी। वे एक महाप्राण जैन थे, अपना समस्त जीवन उन्होने विद्या प्रचार मे लगा दिया था। अकेले व्यक्ति ने सन्मति पुस्तकालय का सारा कार्य

सम्हाल लिया, क्योंकि वृद्धावस्था तक वे एक श्रमिक की तरह पाठको के घर से किताब वापस लाने और किताबों पर पुराने अखबारो के गत्ते चढाने का काम भी घटो तक कर सकते थे। उनकी सी लगन और साधना जिस जीवन मे आजाय, वह सचमुच धन्य होगा ही।

क्या आप विश्वास करेंगे कि वे बीच-बीच मे कालेज मे जाकर प्रिन्सिपल या दूसरे अधिकारी से पूछ लिया करते थे कि फीस न दे सकने के कारण किसी विद्यार्थी का नाम तो नही कट गया है या वह परीक्षा मे सम्मि-लित होने से तो नही वचित रह जायगा ? ऐसे छात्रो के नाम पर जो बकाया होता वह या तो प्रिन्सिपल से कहकर वे माफ करवा देते थे या खुद जमा करा देते थे। बहुत से विद्यार्थियो को शायद आज तक पता नही होगा कि उनकी फीस किसने और कब दी ?

वे स्वय एक अध्यापक थे, विद्यार्थियो की कठिनाइयो से पूर्णतया अवगत थे। न मालूम कितने छात्रो को उन्होने ट्यूशन पर लगा दिया था जिसके बिना वे कभी अपनी पढाई जारी नही रख सकते। कितने विद्यार्थियो को भोजन, वस्त्र और रहने की जगह आदि का प्रबन्ध कराने मे उन्होने मदद की, इसी प्रकार कितनी विधवाओ को दु ख-दैन्यपूर्ण अवस्था मे मदद पहुचा कर उनकी 'जीवन-रक्षा की। इस एक महाप्राण व्यक्ति ने न मालूम अपने योग से कितने और महाप्राण उत्पन्न किए। एक स्कूल की साधारण मास्टरी करने वाला व्यक्ति, जिसका मासिक वेतन शायद ४०), ५०) रहा होगा, इतना सब कार्य कैसे कर सका, इसका समाधान सिवा इसके और क्या हो सकता है कि उसके त्याग और सेवा-वृत्ति ने कितने ही दूसरे लोगो के हृदय मे सेवा-भावना जागृत की और मास्टर साहब के माध्यम से वे भी इस अप्रतिम जीवन-साधना मे सम्मिलित होने के भाग्यवान हुए। मास्टर साहब ने एक दिन एक रुक्का लिखकर मुझे एक सज्जन के पास भेजा और उस रुक्के को देखकर जिनके पास मैं भेजा गया था उन्होने मुझ जैसे एक साधारण विद्यार्थी की मदद करने के अवसर को अपने "शुभ कार्यो का उदय" कहा। मुझे सहायता तो मिली ही, पर दो महाप्राण व्यक्तियो के बीच का जीवन-सूत्र देखने का महद् अवसर भी मिला। इस प्रकार न जाने वे कितने लोगो के 'शुभ कार्यों' मे भी प्रेरक और सहायक बने। 'सहायतार्थ आनेवालो' के सहायक और 'सहायको' के भी सहायक !

मोतीलालजी मास्टर साहब का व्यक्तित्व काल-स्रोत की चपेटों से बचकर मेरे सामने आज भी उसी प्रकार मौजूद है, जैसे बीस वर्ष पहले था।

एक समय का सहायक व्यक्तित्व आज प्रेरक व्यक्ति बन कर मानो जीवन दे रहा है। ऐसे व्यक्तियों की प्रेरणा ही तो जीवन का सबल है। मास्टर साहब ने न मालूम कितने लोगों का इतिहास बनाकर अपना इतिहास लिखा। मैं भी आज अपना इतिहास लिख रहा हूं, पर मास्टर साहब जैसे महाप्राण व्यक्तियों का इतिहास ही तो उसमें प्रेरणा भरता रहा है।

समाज के बीच उनकी प्रेरणा बनी रहे, जीवन-ज्योति देती रहे, मास्टर साहब के प्रति रही हुई श्रद्धा आज झुक-झुक कर यही तो निवेदन कर रही है।

वे सच्ची सेवा के भाव लेकर इस दुनिया मे उतरे थे

(श्री मोलीलाल कासलीवाल)

मास्टर मोतीलाल जी सघी से मेरा परिचय बहुत पुराना है—जब वे महाराजा स्कूल में पढाते थे—तब से ही उनसे मिलना अधिक होता था। उनमे समाज की सेवा का रग घुला मिला था और प्राणीमात्र की सेवा उनका ध्येय था। उनका किसी समाज विशेष से ही कोई सम्बन्ध नही था। किसी समाज के स्त्री पुरुष, बालक, वृद्ध अथवा नैतिक उत्थान हो, यही उनका ध्येय था और मूक सेवा करना परम कर्तव्य समझते थे। इससे उन्होने एक पुस्तकालय मन्दिर भी बड़ा तेरापंथियान मे स्थापित किया और ज्ञान-दान की गगा उन्होने ऐसी बहाई जिसकी मिसाल कम मिलती है। वे स्वय सब लोगो के पास पुस्तकें लेकर पहुचाते थे और उनमे उसके पढने का शौक पैदा करते थे। जो असहाय विद्यार्थीगण अपनी उच्च पढाई मे अर्थाभाव से वचित रहते थे उनको वे हर तरह की सहायता पहुचाते थे। ऐसे सैकड़ो की गिनती मे विद्यार्थी होंगे जिनको उन्होने सहायता देकर उच्च शिक्षा दिलाई थी। विधवाओ की सहायता भी उनके ध्यान से परे नही थी, लेकिन वे इस बात का भी ध्यान रखते थे कि समाज के पैसे का दुरुपयोग तो नही हो रहा है। एक दफा उन्होने अमुक ऐसी विधवा का हाल कहा जिसको वे सहायता देते थे लेकिन जब उनको यह मालूम हुआ कि वह व्यर्थ की सामाजिक कुरीतियो मे रुपया खर्च करने पर उतारू है तो उसको सहायता देना कतई बद कर दिया। मास्टर साहब सच्ची सेवा के भाव लेकर इस दुनिया मे उतरे थे और खेद इसी बात का है कि उनके रास्ते पर चलने वाला कोई नजर नही आता यद्यपि समाज सेवा का दम हर कोई भरता है।

असमर्थ छात्रों के मसीहा

(श्री भवरलाल पोल्याका)

बात सन् १९३४ की है। सस्कृत का अपना थोडा सा अध्ययन समाप्त कर जब मैं दरबार हाई स्कूल की मिडिल कक्षा मे प्रविष्ट हुआ तो मुझे वहां सर्व प्रथम मास्टर साहब के निकट सपर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे स्कूल के तत्कालीन अध्यापको मे अनुमानत सर्वाधिक वय प्राप्त थे। उनका वेष भी अत्यन्त ही सादा था—छात्रो को डाटने की अपेक्षा वे उन्हे प्रेम पूर्वक समझाना अधिक अच्छा समझते थे। स्कूल का उद्दण्ड से उद्दण्ड छात्र भी उनका मान करता था और उनके समक्ष किसी प्रकार की उद्दण्डता करने में हिचकता था। यह सब उनके साधु—स्वभाव का परिणाम था। किसी को कष्ट मे देख कर चुपचाप उसकी सहायता कर देना उनकी प्रकृति थी। केवल आर्थिक कष्ट के कारण ही कोई छात्र अपना अध्ययन जारी न रख सके, यह उन्हें सहन नही होता था— उनके इस महान् गुण का परिचय भी मुझे उसी वर्ष हुआ। तत्कालीन शिक्षा विभाग के डाक्टर श्री अमरनाथ ने उस वर्ष जब स्कूल के छात्रो की नेत्र-परीक्षा की तो उन्होने जिन-जिन छात्रों की नेत्र—ज्योति ठीक नही पाई उनके लिए चश्मा लगाने का निदान किया। उनके इस निदान का इतनी कठोरता से पालन हुआ कि एक ऐसी आज्ञा प्रचारित भी करदी गई कि निश्चित अवधि के अन्दर जो छात्र चश्मा नही लगा लेगा उसको स्कूल से निकाल दिया जायगा। मेरे बराबर की ही सीट पर बैठने वाला एक मेरा सहपाठी अर्थाभाव के कारण ऐसा नही कर सका और प्रधानाध्यापक ने उसको आदेश दे दिया कि वह दूसरे दिन से कक्षा मे नही बैठ सकेगा। बेचारा गरीब छात्र श्रेणी मे आकर गुमसुम होकर बैठ गया। थोडी देर बाद प्रकृतिस्थ होने पर वह मुझसे बोला—भवरलाल जी, कल से मैं स्कूल न आ सकू गा—और ऐसा कहते कहते ही उसकी आखो से टपटप आंसू गिरने लगे। सच मानिये उसकी इस दशा पर मेरा हृदय द्रवित हो उठा, किन्तु चाहते हुए भी मैं उसकी कोई सहायता नही कर सकता था। अपने खुद के चश्मे का प्रबन्ध ही मैं ने जैसे तैसे कठिनाई मे किया था।

याद नही मास्टर साहब को किस प्रकार यह बात ज्ञात होगई—या तो महाजनी पढने वाले किसी छात्र ने उनसे इसका जिक्र कर दिया या उसने स्वय ही मास्टर साहब से कहा हो और मास्टर साहब ने उसी दिन उसको एक

बहुत अच्छा चश्मा दिला दिया—इस प्रकार वह छात्र अपना अध्ययन चालू रख सका। बाद मे उसने मुझे बतलाया था कि उसकी पुस्तको और स्कूल की फीस आदि का प्रबन्ध भी मास्टर साहब ने ही किया था। यह भी मैं बतला दू कि वह छात्र जैन नहीं था।

इस प्रकार मास्टर साहब ने न जाने अपने जीवन मे कितने असमर्थ छात्रों की बिना किसी जातिगत भेद-भाव के सहायता की थी। उनकी सहायता का हाथ बिना किसी पक्षपात के प्रत्येक के लिए उठा रहता था—असमर्थ छात्रों के तो वे मसीहा ही थे। किसी भी प्रकार देश में ज्ञान का प्रकाश फैले, इसका प्रयत्न उन्होंने आजीवन किया–अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे लोगो के घर तक जाकर उनको पढने के लिये पुस्तकें दे आते थे और ले आते थे।

मास्टर साहब स्वय ही एक मूर्तिमान संस्था थे। ज्ञान प्रसार का जितना महान् कार्य उन्होने अकेले ही अपने जीवन में किया, उतना कई सस्थाएं मिल कर भी नहीं कर सकतीं। फिर भी उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त करने की कभी इच्छा नहीं की—जो कुछ उन्होंने किया चुपचाप किया और अपना सहज कर्तव्य समझ कर किया। उनके निधन से दीनो का एक मात्र सहायक, छात्रों का मित्र, जनता का मूक सेवक हमारे बीच से उठ गया। एक ऐसी विभूति हमसे छिन गई जो ससार में यदा कदा ही जन्म लेती है।

निर्माण उनका चिंतन और निर्माण ही उनका आनन्द था

(श्री गोपालदत्त शर्मा)

परमादरणीय स्वर्गीय मास्टर श्री मोतीलाल जी सघी से मैं अपने बाल्य-काल से ही परिचित हू। आपकी खादीधारी वह मूर्ति प्राय: नेत्रो से ओझल नही हो पाती है। वे पूज्य महात्मा गाधी के खादी आन्दोलन के प्रारम्भ करने से पूर्व ही अपनी १८ वर्ष की आयु से ही खादी धारण किया करते थे तथा अन्य कार्यों के उपयोग मे भी लेते थे। वास्तव मे निर्माण जिसका बचपन हो, निर्माण जिसका चिन्तन हो, निर्माण जिसका आनन्द और विनोद हो, वह भविष्य की प्रेरणा का आदर्श क्यो न स्थापित कर अपने महान

यक्तित्व की चित्तवृत्ति के द्वारा जनता मे कर्तव्य-निष्ठता की वृत्ति डाल अपने समय का पथ-प्रदर्शक होगा !

आप यद्यपि जाति से जैन थे किन्तु आप मे धार्मिक सहिष्णुता बडी विलक्षण थी। आप हिन्दू, मुस्लिम या हरिजन आदि का विचार अपने हृदय मे कम ही रखते थे। आपने पूज्य बापू के हरिजन आन्दोलन के पूर्व ही रैगरो की कोठी चौकडी घाट दरवाजा मे एक पाठशाला खोली थी, जिसमे उनके शिष्य ही रैगर व कौलियो के बालको को अध्ययन कराया करते थे और मास्टर साहब स्वय वहा जाकर उनका निरीक्षण किया करते थे।

मास्टर साहब अनाथ एव अशक्त व्यक्तियो के लिये उनकी रुग्णावस्था मे श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक फार्मेसी से औषध ले जाकर उनके घर स्वय पहुचाते थे। वे जाति-पाति के भेद भाव से परे थे और यही कारण है कि उन्होने कितने ही अशक्त मुसलमानो के घर मुझको साथ ले जाकर रोग-निरीक्षण करवाया तथा औषध ले जाकर स्वय ने रोगियो के घर पहुचाई।

वे अनेक बार रोग के सम्बध मे मेरे बताये हुये पथ्य के लिए पैसा अपने स्वय के पास से देकर रोगियो की सेवा करते थे।

धन्य है उस सतत जन सेवक को—जिसकी महानता अपरिचित जनो के चितन पर रग चढ़ा सकती है, तथा औरो को सहयोग का पाठ पढ़ा सकती है।

औषध दान के लिए वे स्थानीय औषधालयो मे रुपये दे दिया करते थे और चाहते थे कि इनकी औषधिया बनवा कर वहा से दीन रोगियो को वितरण हो जाया करें।

शिक्षा-प्रेम स्वर्गीय मास्टर साहब मे अपनी पराकाष्ठा मे दृष्टिगोचर होता है। यह सर्व विदित है कि वे छात्रवृत्ति हित—आर्थिक सहायता देते थे। यही नही वरन् अन्न, वस्त्र, परीक्षा शुल्क आदि दे, शिक्षा-प्रेम की भावना का उत्थान कर राह दिखाते थे, तथा परोपकारिता एव भावनाशीलता का स्मारक खडा करते थे। मेरे पास आयुर्वेद अध्ययन करने वाले अनेक छात्रो को उनकी परीक्षा शुल्क का रुपया आदरणीय मास्टर साहब ने दिया था तथा अजमेर परीक्षा देने जाने के लिए उनको मार्ग-व्यय भी दिया था। मास्टर साहब जनता के मूक सेवक थे। वे सेवा दिखाने के बिलकुल विरुद्ध थे। सतत जन सेवा की प्रवृत्ति वाले मास्टर साहब छात्रो को देने स्वय घर जाते थे और उनकी रुचि को जानने का प्रयत्न करते थे। उनके अध्ययन कर चुकने पश्चात्

स्वय पुस्तक लेने भी छात्रो के घर जाते थे। छात्रो की सहायता के अतिरिक्त आपने विद्यालयो की सहायता भी मूक रूप से की थी। सचमुच वे एक असाधारण व्यक्ति थे, जिन्होने मानव समाज की ठोस सेवा कर उसे चिर ऋणी बना दिया है।

मास्टर साहब वास्तविक आदर्श थे। उनके कतिपय उपदेशो को मैं निम्न प्रकार व्यक्त करता हू —

१—इच्छाओ को अनावश्यक नही वढाना चाहिये और आवश्यकतानुसार कार्य करते रहना चाहिये। यह था उनके जीवन का वास्तविक मौलिक सिद्धान्त।

१—प्राणी मात्र से प्रेम करो। यदि कोई व्यक्ति अकारण असन्तुष्ट हो तो पूर्वाभिमुख होकर ईश प्रार्थना करने के बाद उस प्राणी से भी क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए। उनका मानना था कि ऐसा करने पर विरुद्ध व्यक्ति की आत्मा का आकर्पण हो जाता है और विरोध के परिहार का यह सरल उपाय है। यह था उनके चिन्तन-जगत का महिमामय प्रशस्ते यथार्थ ज्ञान।

३—प्राणी मात्र की सेवा करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। यह था कर्त्तव्यनिष्ठा का महान आदर्श जिस पर वे स्वय चले थे।

पीर पराई जो हरै, दिल का जाने दरद।
मार सकै मारै नहीं, उसका नाम मरद॥

यह दोहा आपका ही कहा हुआ है तथा इसी प्रकार समय समय पर अपनी नोट बुक से वैराग्य के भजन करते थे।

ऐसे स्पृहाशून्य, सच्चे देश भक्त व सच्चे कर्मनिष्ठ आदर्श व्यक्ति के शुद्ध आत्मवोध द्वारा प्राप्त की हुई वे भावनायें, जो सामान्य जनता के हृदय पर अपना आसन अकित किये हुए हैं सर्वदा शान्ति तथा सुख की दात्री हैं। अत ऐसे महान व्यक्ति की चित्तवृत्तियो को साहित्यिक रूप देना अपरिचित जनता के समीप आदर्श रखना है तथा पर दु ख कातरता के सिद्धान्त का नाद करना है। ईश्वर उस महान विभूति और मूक सेवक की आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा जनता की आवश्यकताओ को समय-समय पर ऐसे ही महान व्यक्ति की सेवाओ के द्वारा पूरी करें, यही मेरे हृदय की पुकार है।

गृहस्थ में साधु-जीवन के प्रतीक

(राजवैद्य प० श्रीनदकिशोर शर्मा)

श्रद्धेय स्वर्गीय श्री मोतीलालजी सघी के सम्बन्ध मे कुछ बताना एक प्रकार से गम्भीर सागर के अन्तस्तल का स्पर्श करने के समान साहस है। जैन धर्म के साक्षात्-स्वरूप के अनुकूल उनके जीवन का प्रवाह रहा है। गृहस्थ मे साधु-जीवन के दिव्य दर्शन के वह प्रतीक थे। उनके सहज सौजन्य का प्रभाव निर्वाध रूप से जयपुर के सब ही नागरिकों पर अविरल पड़ा था। छात्रो के जीवन मे जिस कोमलता और सहानुभूति की अमिट छाप उनके द्वारा लगी है, वैसा उदाहरण ढूढे भी नही मिल सकता।

किसी वर्ग या जाति विशेष का उन्हें पक्षपात नही था। 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' की अमिट ज्योति उनके हृदय मे विराजमान थी। सन्मति पुस्तकालय के बहाने जयपुर के नागरिको के चरित्र गठन मे जो सेवाएँ उनकी थी, उन्हे भुलाया नही जा सकता। सत्कार, सम्मान अथवा प्रतिष्ठा की कामना से वे दूर रहते थे।

उन मूक सेवक, साधुचरित, नि स्पृह महात्मा की पुण्य स्मृति मे मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हू।

वे सेवाव्रती थे

[श्री चैनसुखदास रावका]

श्री मास्टर मोतीलाल जी सघी का जीवन-वृत सेवा था। वे अपनी मृत्यु के अतिम क्षरण तक मानव-सेवा के पुनीत कार्य मे लगे रहे। प्रत्येक प्राणी मरण-धर्मा हैं, किन्तु नि सन्देह वे मनुष्य कभी नही मरते जो अपने लिए नही, पर असहायो, निराश्रितो, दीनो और दु खियो के लिए जीते हैं। मास्टर साहब का चाहे ऐहिक देह अब नही रहा, किन्तु उनकी स्मृति सदा अमर बनी रहेगी। उनका नाम उन लोगो के नाम की तालिका मे लिखा जायगा जो कभी मरते ही नही।

मास्टर साहब वस्तुत सन्त थे। सरकारी स्कूल से विश्राम प्राप्त करने के बाद उन्होने अपने सारे जीवन को लोक सेवा मे लगा दिया था। विना किसी प्रकार की ख्याति और प्रतिष्ठा की आकाक्षा के अनासक्त भाव से वे हर किसी की सहायता करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। विद्यार्थियो और दु खी अवलाओ की मदद के लिए वे धनियो के द्वार खटखटाते और अपने पवित्र व्यक्तित्व के प्रभाव से उनकी दान वृत्ति जाग्रत कर उनसे पैसा लाते। उन्होने स्वय निष्किचन होकर भी सहस्रो को आर्थिक सहायता से उपकृत किया है। ऐसे लोगो की सख्या कम नही है जो असहाय अवस्था मे उनसे उपकृत हुए और आज गौरव एव प्रतिष्ठा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। विद्यार्थियो के लिए तो वे मानो कल्प वृक्ष ही थे। उनके पास से कभी कोई निराश लौट कर नही आता था। वे अनेक तरह से उनकी मदद करते थे। पुस्तक नही है तो पुस्तको का प्रवन्ध करते। परीक्षा-शुल्क नही है तो उसकी तजवीज विठाते। जो प्रयत्न करने पर भी किसी स्कूल मे प्रवेश नही पा सके हैं उन्हे कही न कही प्रवेश कराते। ये सव वे साम्प्रदायिकता, जातीयता और प्रातीयता की भावना से बहुत दूर रह कर करते थे। **उनकी सहायता की पात्रता के लिए अन्य किसी शर्त की जरूरत नहीं थी, केवल एक ही शर्त आवश्यक थी कि वह योग्य और वस्तुत असहाय हो।**

उनकी स्मृति को सदा ताजा रखने वाला उनका सन्मति पुस्तकालय है। यह पुस्तकालय स्वय उन्ही की सृष्टि है। जयपुर के विशाल सार्वजनिक पुस्तकालय के समकक्ष नही तो जयपुर मे उसके बाद इसी पुस्तकालय का नाम लिया जा सकता है। इसमे करीव पच्चीस हजार पुस्तकें हैं। इस पुस्कालय के द्वारा मास्टर साहव ने जो जनता की सेवा की है, उसकी तुलना शायद ही कही मिले। वे स्वय पुस्तक लेकर लोगो के घर जाते और उन्हे पढने के लिए देते। पहली पढी हुई पुस्तक ले आते और दूसरी दे आते। वहुत अर्से तक यही उनका नित्य क्रम रहा। पुस्तकालय मे शिक्षा सस्थाओ के पाठ्यक्रम की पुस्तको के कई सेट वे रखते और इस तरह असहाय छात्रो की सहायता करते। सचमुच इस पुस्तकालय से जयपुर की जनता की उल्लेखनीय सेवा हुई है। 'नहि ज्ञानात् पर श्रेय' 'नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते,—ये उनके जीवन के मूल मत्र थे।

मास्टर साहव बडे दयालु थे। दूसरो को दुखी देखना उन्हे तनिक भी पसन्द नही था। उनकी यह स्वभाव-सिद्ध वृत्ति उन्हें सदा परोपकार के लिए प्रेरित करती रही। वे कभी-कभी दुखियो की कष्ट—कथा सुनकर रो पडते थे।

एक बार वे मेरे पास आए और कहने लगे---ये दो भजन मैं आपको सुनाना चाहता हूं, सुन लीजिये । मैं आदर के साथ उन भजनों को सुनता हुआ उस समय क्या देखता हू कि भजन गाते गाते उनकी आखें डबडबा आई, गला रुध गया और दो आंसू दरी पर टपक पड़े। उन वेदना पूर्ण भजनों मे कोई दु:खी कवि भगवान को अपनी कष्ट-कथा सुना रहा था। कवि ने सचमुच-अपनी दयनीय अवस्था का पूरा चित्र खींचा था। मास्टर साहब का भावुक हृदय उसे न सह सका और रो पडा। उनकी उस स्थिति ने मुझे बहुत प्रभावित किया । दु ख है कि मैं उन दोनो भजनो की नकल नही कर सका नही तो यहा उद्दृत कर देता ।

जयपुर के सभी छोटे-बडे लोगो पर मास्टर साहब का प्रभाव था और वे इस प्रभाव का उपयोग दीन दु खी एव असहाय लोगो के उपकार करने मे करते थे। इस समय देश को मास्टर साहब जैसे मूक सेवको की जरूरत है। पर दुःख यही है कि आज चारो ओर नेता ही नेता नजर आते हैं यथार्थ सेवक तो कहीं कोई विरले ही मिलते हैं। सब भवन के शिखर बनना चाहते हैं---लेकिन सारे भवन का अपने ऊपर बोझ झेलने वाले एव नींव के पाषाण बनने वाले लोगो का मिलना वास्तव मे दुर्लभ है। हमे मास्टर साहब के पथ का अनुसरण करना चाहिये ।

कहां वह परोपकार, कहां वह ज्ञान-प्रसार और कहां यह केवल श्रद्धांजलि !

(श्री देवी नारायण गुप्ता)

स्वर्गीय मास्टर साहब की स्वार्थ विहीन मित्रता का जो आदि से अन्त तक मेरे स्वर्गीय पिता श्री दामोदरदासजी के साथ रही, वर्णन करना मेरे लिए असम्भव प्रतीत होता है। इसमे जरा भी अत्युक्ति नही कि मास्टर साहब ने मेरे पिताजी के साथ सत्याश मे मैत्री भाव निभाते हुए हम लोगो के भाग्य का निर्माण किया और मेरे कुल मे जितने भी पढ़े लिखे व्यक्ति हैं उनको पढाने का श्रेय बहुत कुछ मास्टर साहब को ही है।

अनुमानत २०–२१ वर्ष की आयु मे मास्टर साहब और मेरे पिताजी ने अपना अध्ययन काल समाप्त कर जनता मे ज्ञान-प्रसार का कार्य लिया था।

मास्टर साहब की अनुरक्ति रूपी सुगन्ध अपनी उत्तमता महका रही है। जीवन से समवाय की ऐसी ऐक्यावस्था की विभूति को श्रद्धा की अजलि के अन्तर्गत संतक्त नहीं किया जा सकता। अनुरक्ति रूपी भव चक्र श्रद्धा रूपी अजलि की परिधि मे पूर्ण नहीं समझा जा सकता है। अत उस मानव-प्रेमी समदर्शी सदाशय को श्रद्धाजलि अर्पित कर हम अपने को भार विहीन नहीं कर सकते। कहा वह श्रद्धा ! कहा उनका वह परोपकार !! कहां वह ज्ञान प्रसार और कहां केवल यह श्रद्धाजलि !!!

मास्टर साहब जैसे निस्पृह, मूक और सच्चे समाज सेवक का व्यक्तित्व सामान्य जनता के हृदय पर आसन जमाये हुए है। यह वर्णन किये जाने वाला विषय नही, केवल अनुभव की वस्तु है, जिसका उपयोग कर जनता सदैव उन्नत होगी।

उनके दर्शन से मैं अपने को कृतकृत्य मानता था

(श्री हीरालाल शास्त्री)

स्वर्गीय मास्टर मोतीलाल से मेरा विशेष व्यक्तिगत सम्पर्क नही था। पर मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा रखता था। एक बार मैं उनके पास कुछ पुस्तकें लेने को गया था और दूसरी बार मैं उनके पास जीवन कुटीर के लिए चन्दा मागने के लिये पहुचा था। दोनो ही अवसरों पर उनका जो व्यवहार था, उसका मुझ पर सुन्दर प्रभाव पडा था। जब कभी वे रास्ते में आते जाते मिल जाते थे तो उनके दर्शन करके मैं अपने आपको कृतकृत्य मानता था। उनके स्वर्गवास के अवसर पर जो शोकसभा हुई थी, उसमे मैंने भी भाग लिया था और अपने हृदय के उद्‌गार श्रद्धाजलि के रूप मे प्रगट किये थे। थोडी आमदनी मे अपना काम चलाना, सादा और सेवामय जीवन व्यतीत करना, परोपकार का काम निष्कपट भाव से अपने निजी काम के तौर पर करना—वह सब कुछ स्वय मास्टर साहब के जीवन से सीखा जा सकता है। मैं फिर एक बार अपनी श्रद्धाजलि प्रकट करता हू।

सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नहीं

(श्री सूरजमल सिंघी)

यद्यपि आज वे हमारे बीच नही है, तथापि उनके सदुपदेश आज भी हमे बुरे कार्य की ओर अग्रसर होने मे बचाते है। उन की तीन बातें याद रखने योग्य थीं, जिनको वे हम लोगो को बारबार सुनाया करते थे—(१) उच्च भावना (२) सात्विक जीवन-निर्वाह (३) धार्मिक मरण। इनमे सांसारिक जीवन का रहस्य गर्भित है। मास्टर साहब का वह दृश्य जबकि वे एक बुढिया की मक्का की गठरी कधे पर धरकर पीतलियो के चौक तक पहुंचा आए थे, मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी मुझको न दी थी—अब भी नेत्रो के सामने सजग है। उनका मुसलिम व हरिजन भाइयो के प्रति प्रेम जिसमे खिचे वे बार-बार पुस्तकालय से नीचे आते थे, अब भी उन जैसे सहृदय, सच्चे तथा मूक सेवक की तलाश मे है। परशरामद्वारे वाला वह मीणा भाई, जिसने उनके सत्सग मे रह कर रामायण, भगवद्गीता आदि शास्त्रो को पढने व समझने की योग्यता प्राप्त करली थी, अब भी उनके उस दोहे को, जिसे वे उसे प्रेम से सुनाते थे, हमें सुना कर मास्टर साहब की याद को तरो-ताजा कर देता है —

सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नही।
यातैं भये कगाल, गाठ खोल देखी नही।।

अगले जन्म के लिए भी कुछ जोड़ कर रख रहे हो ?

(श्री रामनिवास अग्रवाल)

पूज्य मास्टर साहब के विषय मे लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है, परन्तु उनके निकट सम्पर्क मे मुझे कई वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सन् १६२४ से सन् १६३५ तक अपने विद्यार्थी जीवन मे हमेशा करीब-करीब उनके पास रहा। उनका अगाध प्रेम अवर्णनीय है। विद्यार्थियो की रुपये

पैसे से, पुस्तकों से तथा विद्यादान देकर सेवा करना उनके जीवन का ध्येय था—घर-घर जाकर आत्मोन्नति की पुस्तकें देना तथा फिर वापिस लाना, कितना कठिन कार्य है, वह उन्होने जीवन भर किया। उनका सत्य प्रेम अहिंसा की वृत्ति तथा निस्वार्थ सेवा भावना अवर्णनीय है। जयपुर के हजारो विद्यार्थियो के जीवन को बनाना मास्टर साहब का ही काम था। वे सच्चे शब्दों मे महात्मा तथा ऋषि थे। जब कभी बाद मे बाजार मे उनके दर्शन होते, यही पूछते—भाई अगले जन्म के लिए भी कुछ जोड कर रख रहे हो या नही, या दिन रात रुपये पैसे कमाने मे ही रहोगे ? ये शब्द मुझ को बडी प्रेरणा देते रहते थे। उनके विषय मे मुझ जैसा व्यक्ति, जिसका जीवन ही उनकी शिक्षा का फल है, बहुत कुछ लिखने के लिए लालायित है परन्तु स्थानाभाव से अधिक लिखना सम्भव नही। मेरी भगवान से प्रार्थना हैं कि ऐसे निष्कपट महात्मा बार-२ ससार मे अवतीर्ण होकर त्रयताप सन्तप्त जनो को अपने उपदेशामृत से शान्ति देते रहे।

वे एक महान् पुरुष थे

(श्री राधेश्याम झा)

मास्टर साहब के विषय मे जहा तक लिखा जाय अल्प है। वे एक महान् पुरुष तथा विलक्षण मूर्ति थे—आजन्म अपने लक्ष्य-पथ पर चलकर उन्होने सब का कल्याण किया। और भी नगरो मे मैंने धार्मिक कथाओ का प्रचार किया किन्तु ऐसे महान पुरुष का कम ही दर्शन हुआ। उनका जीवन मे शिक्षित नर नारियो से ही नही बल्कि प्राणी मात्र से प्रेम रहा, और देश सेवा मे तन मन धन सब कुछ न्यौछावर करते हुए सब के हृदय मे प्रेममूर्त्ति बन गये। छात्र-छात्राओ और गरीबो मे तो चिर काल के लिए उनका अमर कीर्त्ति-दीपक जगमगा रहा है। भोजन, वस्त्र, किताबो से सहायता पाये हुए, आज भी उन्ही की कृपा से अच्छे पद प्राप्त, उनकी दयालुता के स्मारक रूप प्रेमाश्रु बहा रहे हैं, कतिपयलोग।

'धनाद्धर्मं, ततं सुखम्' के अनुसार उन्होने श्री सन्मति पुस्तकालय में लोगो के उपकार के लिये सभी धर्मों के धार्मिक ग्रन्थो का सग्रह किया। उपनिषद्, पुराण का सग्रह तो उन्होंने अत्युत्तम किया—जबकि आज भी इस देश मे दुर्भाग्य से कई पुराणो का मिलना दुर्लभ हो गया है।

श्रद्धेय दयालु मास्टर साहब मे मेरा काफी सम्पर्क रहा—तथा-कई ग्र थो मे सहायता मिली। उनके लिए आजन्म आभारी रहूगा—तथा भगवान् उन्हे जिस लोक मे हो, सुख शाति प्रदान करे और यहा उनके स्मारक सन्मति पुस्तकालय की कीर्त्ति लोगो मे छाई रहे।

[१]

मातु विद्या के पुजारी खेद है अब हैं नहीं,
उनका ये 'सन्मति पुस्तकालय' वाणि-धारा बह रही ॥
जीवन मे दानी बन के जिसने मारग सुधारा है सही
देता मैं श्रद्धाञ्जली भर पुष्प माला ले जुही ॥

[२]

सेवक रहे हर प्राणी के, स्मारक रहेंगे छात्र से।
नाम 'मोतीलालजी' पूरण किये धन प्रान से ॥
पुण्य गौरव को वढाया सत्यपथ अरु ज्ञान से।
अर्पित है 'राधेश्याम' की श्रद्धाञ्जली भर मान से ॥

उनका उच्च तथा शांत व्यक्तित्व !

(श्री श्यामविहारी लाल सक्सेना)

जयपुर नगर मे इस युग का किंचित् ही कोई शिक्षित व्यक्ति होगा, जो मास्टर मोतीलालजी से किसी न किसी भाति परिचित न हो। मेरा परिचय समाज के उस महान् एव आदर्श व्यक्ति से सन् १९२५ मे हुआ था और मैं उनके शुचि सम्पर्क मे तभी से आया जब चादपोल हाई स्कूल मे जो अब दरबार हाई स्कूल के नाम से विख्यात है, मैं बून्दी से परिवर्तित होकर नवम् श्रेणी मे प्रविष्ट हुआ था। मुझे पूज्य मास्टर साहब से पाठशाला मे शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य तो प्राप्त नही हुआ, क्योकि मास्टर साहब नीचे की कक्षाओ को पढाते थे, किन्तु फिर भी उनसे मेरा यह सम्बन्ध जो कि एक अध्यापक तथा विद्यार्थी का होता है, बीस वर्ष तक रहा। स्कूल मे प्रविष्ट होने के कुछ समय उपरान्त ही से मैं उनके निकट सम्पर्क मे आया और प्राय उनके पुस्तकालय मे जाने लगा। वे मुझे विशेषकर धार्मिक ज्ञान देते थे और यदि कभी मैं किसी कारणवश उनके पास नही जा पाता तो वे स्वय मेरे घर पर आ जाया करते थे।

मास्टर साहब वास्तव मे त्याग की मूर्ति थे। उनके जीवन का सब से बडा उद्देश्य जनसाधारण की सेवा था। वे धन लोलुप तथा स्वार्थी न थे, प्रत्युत जो अल्प वेतन उन्हें मिलता था, उसी मे सन्तुष्ट रहते थे। उनका समस्त जीवन, खान-पान तथा रहन-सहन बिलकुल साधारण था तथा आज के युग की कृत्रिमता से, फैशन तथा दिखावे से उनको बडी घृणा होती थी। पाठशाला के समय को छोडकर वे अपना सारा समय जन साधारण की सेवा मे व्यतीत किया करते थे। लोगो के घर जाकर वे स्वय सहायता एकत्रित करते थे और प्राप्त धन से, जन हितार्थ खोले हुए पुस्तकालय को वृद्धि प्रदान करते थे। यह एक मात्र उनके परिश्रम तथा निस्वार्थ सेवा का ही परिणाम था कि 'श्री सन्मति पुस्तकालय' एक बहुत बडा पुस्तकालय बन गया तथा जिसमे भिन्न-भिन्न विषयो पर सहस्रों पुस्तकें एकत्रित हो गई, जो आज ही नही किन्तु अनेक शताब्दियो तक जन समुदाय को ज्ञान की अमिट राशि प्रदान करके उनके त्याग तथा नाम को सदैव अमर रक्खेगी। उन्होने वास्तव मे अपना समस्त जीवन सरस्वती की आराधना मे तथा समाज को अज्ञानता के अन्धकार से निकाल कर ज्ञान से आलोकित करने मे व्यतीत किया।

उन्होने प्राचीन भारतीय सस्कृति एव धर्म को पुनर्जीवित करने का भरसक प्रयत्न किया। वे जैन धर्म के ज्ञाता तथा पण्डित थे और नियमानुसार साधुवृत्ति का जीवन व्यतीत करते थे किन्तु वे दूसरे धर्मों की अवहेलना अथवा घृणा नही करते थे बल्कि वे सब धर्मों का आदर करते थे। फलस्वरूप उनके पुस्तकालय मे सभी प्रकार के तथा सभी धर्मों के ग्रन्थ उपस्थित थे तथा वे सभी का बडी रुचि से अध्ययन किया करते थे।

मास्टर साहब की सहानुभूति विद्यार्थियो के साथ विशेषकर उल्लेखनीय थी, वह निर्धन तथा असहाय विद्यार्थियो को आर्थिक तथा अन्य कई भाति की सहायता करने मे सदैव तत्पर रहते थे। जयपुर ही नही, प्रत्युत बाहर भी राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के भी सहस्रो विद्यार्थियो को मास्टर साहब ने सहायता दी है। कई योग्य एव निर्धन विद्यार्थियो को तो मास्टर साहब ने उच्च टेक्निकल शिक्षा के लिए बाहर भेज कर शिक्षित कराया। मास्टर साहब का त्याग और ध्येय इतना ऊचा था कि वे प्रत्येक स्थान पर सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। उनके मुख मण्डल पर उच्च तथा शात व्यक्तित्व की ऐसी अनुपम आभा विद्यमान थी, जिसके फलस्वरूप किसी मे इतना साहस न होता था कि उनकी बात टाल सके।

स्कूल से पैन्शन हो जाने के पश्चात् वे अपना सारा समय पुस्तकालय मे जन सेवा मे लगाया करते थे। कुछ समय पश्चात् उनका स्वास्थ्य बिगडता

गया किन्तु फिर भी उस महान् आत्मा ने अपना कार्य स्थगित नही किया, प्रत्युत पूर्व की भाति निरन्तर लगे रहे और सन्मति पुस्तकालय के रूप मे अपनी अमर स्मृति छोड गये। इसमे कोई सन्देह नही कि उनकी पुण्य आत्मा ने अवश्य ही निर्वाण प्राप्त किया होगा।

उनका जीवन वास्तव मे एक आदर्श था जिससे प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा लेनी चाहिये।

श्री मोतीलालजी के जीवन के कुछ पहलू

(श्री नन्दलाल निगम)

मास्टर मोतीलालजी उन इने गिने व्यक्तियो में से थे जिन्होंने दूसरो की सेवा करने मे अपना जीवन अर्पण कर दिया। उन्होने एक पवित्र सात्विक जीवन व्यतीत किया। उनके सिद्धात वहुत ऊचे थे तथा उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य पीडित मनुष्यो विशेषत विद्यार्थियो की सहायता करना था।

मेरा मिलना मास्टर साहव से १९१७ मे हुआ। उस समय वे शिवपोल मिडिल स्कूल मे, जिसको अब दरवार हाई स्कूल कहते हैं, अध्यापक थे और मैं प्रधान-अध्यापक नियुक्त किया गया था। हम दोनो मे शीघ्र ही मित्रता हो गई और वह दिनोदिन घनिष्ठ होती गई तथा वह मास्टर साहव के अन्तिम समय तक स्थापित रही। यद्यपि थोडे ही काल के पश्चात दरबार हाई स्कूल से मेरी वदली हो गई परन्तु वर्षों तक यह क्रम रहा कि मैं और वह प्रतिदिन एक दूसरे से मिलते थे।

जिस वस्तु ने मुझे श्री मोतीलालजी की ओर आकर्षित किया वह उनकी सत्य की खोज थी जिसमे वे तन मन से लीन थे। इसके लिए उनका सवसे पहला कदम एक पुस्तकालय की स्थापना करना था। पुस्तकालय के लिए रुपये की आवश्यकता थी। उन्हे सैंकडो द्वार खटखटाने पडे तथा चन्दा इकट्ठा करना पडा। कठिनाइया अवश्य हुई, परन्तु अन्त मे उन्हें सफलता प्राप्त हुई। आरम्भ मे उन्होने अधिकतर धार्मिक पुस्तकें मगाई तथा ससार के सभी प्रसिद्ध धर्मों– जैन, हिन्दू, ईसाई, इस्लाम व वौद्ध धर्मों – की पुस्तकें इकट्ठी की। सैंकडो पुस्तकें उन्होने स्वय पढी और इसी कारण जैन धर्म के अतिरिक्त उनकी जानकारी दूसरे धर्मो की भी वहुत अधिक थी। मैं और वे घण्टो धार्मिक

विपयो पर वहस किया करते थे तथा प्रत्येक धर्म की छानवीन करते थे। साथ ही साथ जब कोई महात्मा व साधु-सन्यासी, चाहे वह जैन मत का हो अथवा हिन्दू मत का, जयपुर मे आता और हमे उसका पता लगता तो उससे मिलने हम अवश्य जाते तथा उसके सत्सग से लाभ उठाते। मैं बहुधा सुस्ती भी कर जाता था परन्तु मास्टर साहब ऐसे अवसरो को कभी छोडते नही थे। यही कारण था कि उनका धार्मिक ज्ञान प्रतिदिन बढता गया व उनकी गिनती उन मनुष्यों मे होने लगी जो प्रत्येक धर्म के मनुष्यो को रुचि के अनुसार शिक्षा दे सकते थे, उनके सशयो को दूर कर सकते थे तथा सीधा मार्ग दिखा सकते थे।

ससार मे जो नास्तिकता की हवा फैली हुई है, उसको दूर करना उन्होंने अपना प्रमुख उद्देश्य बना लिया था, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने यह महसूस किया कि स्वय लोगो के पास जाकर उनसे मिलना व वाद विवाद से उनको धर्म की ओर झुकाना बहुत कठिन कार्य है और इससे बहुत कम लोगो को लाभ हो सकता है, इस कारण उन्होंने वह मार्ग अपनाया जिससे उनका नाम अमर हो गया। वह मार्ग स्वय लोगो के घर जाकर उनको धर्म की पुस्तकें देना व उनसे आग्रह करना था कि उनको पढकर शीघ्र ही वापस दें जिससे वे नये लोगो को दी जा सकें। अनजान मनुष्य को भी केवल उसका पता पूछ कर वे किताब दे देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि यदि वे पचास मनुष्यो के घर स्वय जाते तो सहस्रो मनुष्य पुस्तकालय मे उनके पास किताबें लेने आते थे। इसका एक परिणाम अवश्य हुआ कि पुस्तको की एक बहुत बडी सख्या गायब हो गई, क्योकि बहुत से व्यक्ति ऐसे निकले जिन्होने पुस्तकें वापस नही की, परन्तु इसकी उन्होने कभी परवा नही की और अपना क्रम जारी रखा।

दूसरा बडा काम जिसकी ओर उन्होंने कदम उठाया—वह निर्धन विद्यार्थियो की आर्थिक सहायता करना था। इसके लिए भी वे स्वय योग्य न थे, क्योकि उनका इतना वेतन कम था कि वह उनके निर्वाह के लिए भी पर्याप्त न था, परन्तु उन्होने हिम्मत न हारी। द्वार-द्वार पर इसके लिए भिक्षा मागी व रुपया एकत्रित किया तथा हजारो गरीब विद्यार्थियों की पुस्तको, कपडो व कुछ मासिक रकम से सहायता की। खास शहर जयपुर मे इस समय भी बीसो ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जो बहुत ऊचे पद पर हैं व जिन्होंने इसी जरिये से शिक्षा प्राप्त की थी।

मास्टर साहब अपने धर्म मे पक्के थे, उसको श्रेष्ठ समझते थे, परन्तु उन्होने कभी दूसरे धर्म की निन्दा नही की तथा अन्य धर्मावलम्बी सैंकडो

विद्यार्थियो व मनुष्यो से, जो उनसे मिलते थे और धार्मिक विषयो पर वातचीत करते थे, उनमे कभी यह नही कहा कि जैन धर्म सव धर्मों से श्रेष्ठ है, वल्कि वे यह कहते थे कि सत्य सव जगह पर है। मार्ग मे भिन्नता हो सकती है, आवश्यकता इम वात की है कि थोडा मा ज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति अभ्यास मे लग जाय और उसमे दृढ रहे।

पेन्शन लेने के पश्चात् उन्होने करीव अपना सारा समय इन दोनो कामो मे व्यतीत किया। वहुत से युवक विद्यार्थी उनके इन कामो मे सहायक हुए। उनकी आज्ञा के अनुसार वडी मेहनत मे काम करने लगे, जिसमे मास्टर माहव को वहुत उत्साह हुआ व उनको आशा होने लगी कि वे इन दोनो कामो को विशाल रूप मे कर सकेंगे। परन्तु इसमे उनको निराशा हुई, क्योकि कार्य-कर्त्ताओ की सख्या शीघ्र ही कम होती गई और साथ ही साथ उनकी शारीरिक शक्ति भी घटती गई। जव वे अधिक चलने फिरने मे असमर्थ हो गए तो उन्होने अपना अधिक समय जैन धर्म की साधनाओ मे व्यतीत किया और मेरा विश्वास है कि शरीरान्त होने से पहले वे एक वहुत ऊ ची स्थिति पर पहुच चुके थे। मुझे आशा है कि हमारे नवयुवक उनके जीवन से शिक्षा प्राप्त करेंगे और उनको अपना आदर्श वनायेंगे।

मास्टर साहब के दो संस्मरण

(श्री सौभाग्यचन्द्र हाडा)

सन् १९४८ मे प्रकाशित 'आज का जयपुर' मे जव जयपुर के प्रतिष्ठित नागरिको, सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओ एव यहा की अग्रगण्य सस्थाओ का विवरण दिया जाने वाला था तो मास्टर साहव से भी उन के जीवन सम्वन्धी कुछ वातें उसमे देने की अनेक वार प्रार्थना की गई किन्तु हमेशा उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि मै वडा आदमी नही हू।

वाद मे मुझ से मेरे मित्रो तथा विशेष कर प० चैनसुखदास जी न्याय-तीर्थ द्वारा वडे दवाव मे कहा गया कि मै मास्टर साहव की सक्षिप्त जीवनी अवश्य दू।

इसके लिये मैंने मास्टर साहव से अप्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन के प्रारम्भिक काल व वाद की वातें जानने की उत्सुकता प्रकट की। मास्टर साहव का उत्तर जो मुझे आजन्म याद रहेगा यह था—सौभाग जी, यह पुस्तक छप

जाने दो पीछे बात करेंगे। आज हम नाम के पीछे मरने वालो के लिए इसमे कितनी गूढ बात छिपी है, स्पष्ट है, आत्म त्याग का ऐसा दूसरा उदाहरण ढूढने से भी न मिलेगा।

अन्त मे मैंने जो कुछ बातें मुझको मालूम थी दी अवश्य, किन्तु मास्टर साहब से छिपा कर और उनकी मर्जी के विरुद्ध।

रविवार, १६ जनवरी, १९४९ को (उनके स्वर्गवास के ठीक एक दिन पहले) उनकी एक फोटो प्राप्त की जा सके, इसलिये मैं श्री ईश्वरलाल बागडा को घर पर उनका फोटो लेने को लाया। जब ईश्वर लाल जी फोटो खीचने के लिये सामने खडे हुये तो वे मुझ से पूछने लगे कि यह कौन है और हाथो से यो २ क्या कर रहा है। मैंने झूठ मूठ ही कहा कि मन्दिर मे जो कवरलाल जी आते हैं वे मिलने आये हैं और आप से हाथ जोड रहे हैं। मास्टर साहब ने शीघ्र हाथ जोड लिये और इशारे से कहा कि वे जायें और खडे न रहें। जैसे तैसे फोटो ले ली गई किन्तु मास्टर साहब ने आजीवन कोई फोटो राज्य-सेवा से विदाई समारोह के अवसर के अलावा कभी नही खिचवाई।

मैंने मास्टर साहब से अपने ६ वर्ष के निकट सहयोग से अनेक बातें सीखी हैं और मैं अपने जीवन मे यदि कुछ कर सका तो वह उनकी प्रेरणा का ही परिणाम होगा। मेरा अध्यापन का व्यवसाय चुनना भी उनकी इच्छा की पूर्ति ही है।

गणितज्ञ होकर भी सरल-स्वभावी और सहृदय!

(श्री माणिक्य चन्द्र जैन)

स्वर्गीय मास्टर साहब मोतीलालजी उन इने गिने महानुभावो मे से थे, जिनके हृदय मे विश्वबन्धुत्व और विश्वकल्याण की मदाकिनी सदैव तरगित रहती है। 'सादा जीवन और उच्च विचार'—इस सिद्धान्त की तो वे साक्षात् प्रतिमा ही थे। सन् १९२४-२५ के सत्र मे स्वर्गीय मु० रामलालजी भार्गव ने सन्मति पुस्तकालय मे पूज्य मास्टर साहब के दर्शन कराये। मैंने देखा कि एक गणित-अध्यापक इतना सरल स्वभावी और सहृदय व्यक्ति! उनकी मीठी वाणी, पुरानी वेश भूषा और सौम्य आकृति ने मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। 'बेटा'—कहकर उन्होंने मुझे सम्बोधन किया, मुझ से मेरी आर्थिक स्थिति के

विषय मे पूछताछ की। मेरे प्रति उनके हृदय मे दया के भाव उदित हुए। उन्होने उसी क्षण आज्ञा दे दी कि मैं नियमित रूप से उनकी व्यवस्था मे अध्ययन करने लगू। मेरा झुकाव दिनोदिन उनकी ओर बढता गया। श्रद्धा जागृत हुई। मैं उनको अपना सरक्षक और मार्ग दर्शक समझने लगा।

मेरी मान्यता है कि गणितज्ञ और दार्शनिक शुष्क और कठोर होते हैं। आदर्श की ओर उनका ध्यान रहता है, यथार्थ को वे भूल जाते हैं, पर पूज्य मास्टर साहब गणितज्ञ और दार्शनिक होते हुए भी आदर्श और यथार्थ का पूर्ण सामजस्य चाहने वाले व्यक्ति थे। सरलता और उदारता उनके हृदय की उल्लेखनीय विशेषतायें थी। पौराणिक और दार्शनिक ग्रन्थो के धार्मिक एव गभीर अध्ययन के पश्चात मास्टर साहब इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जीवन के लिए परिश्रम, प्रेम और परोपकार की प्रवृत्ति अत्यावश्यक है। मनुष्य को सरल स्वभाव तथा दयालु होना चाहिए। समाज से जितना लाभ हमको मिलता है, उससे अधिक हमे समाज की सेवा करनी चाहिये। सदैव निर्भय और प्रसन्न रहना चाहिए। यदि हम अपने 'अहम्' को मिटा देंगे तो हमे अपने मरने का भी डर रहेगा। मनुष्य को आवश्यकता से अधिक धन सचित नही करना चाहिए। न्याय-नीति से द्रव्य उपार्जन और सयत जीवन के द्वारा ही मनुष्य शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है।

मास्टर साहब भारतीय सस्कृति के पक्षपाती थे। मादक द्रव्यो के सेवन के वे घोर विरोधी थे। वे कहा करते थे कि मादक द्रव्यो का सेवन दुराचार करने और अन्त करण की आवाज को दबाने के लिए किया जाता है। उनके सेवन से अन्त करण मर जाता है। उनका कहना था कि त्याग के बिना धार्मिक जीवन सभव ही नही है, और त्याग की पहली सीढी इन्द्रिय-निग्रह और तप है।

'मनुष्य जीवन पाया है तो कुछ कर गुजारो'

(श्री केवलचन्द ठोलिया)

ससार मे मनुष्य आते हैं और चले जाते हैं, किन्तु कोई-कोई व्यक्ति अपनी छाप सदा के लिये छोड जाते हैं। वे नही रहते, पर उनकी याद अवश्य रहती है। मास्टर मोतीलालजी भी ऐसे ही मानव थे।

मास्टर साहब अपने ढग के एक ही व्यक्ति थे। वे बहुत बडे दार्शनिक लेखक व वक्ता नही थे किन्तु उनका जीवन स्वय एक बहुत बडा ग्रन्थ बन

गया था। अपरिग्रह, सादगी, सत्य और अहिंसा उनके जीवन मे झलकने लग गई थी। गृहस्थी मे रहते हुए भी उन्होने त्याग और सेवामय जीवन व्यतीत किया। उनकी हमेशा यह उत्कट इच्छा रहती थी कि प्रत्येक मनुष्य सच्चा इन्सान बनकर रहे। बच्चो के साथ उनका वात्सल्य भाव उल्लेखनीय था। वे जिस किसी व्यक्ति के सम्पर्क मे आते थे उसको यही सन्देश सुनाते थे—मनुष्य जीवन खोने के लिये नही है, इस शरीर पर जो नाशवान है इतना समय खोते हो, कुछ समय आत्म चिन्तन मे भी लगाया करो। मनुष्य जीवन पाया है तो कुछ कर गुजरो। यह धन दौलत तुम्हारा साथ नही देंगे। शुभ कर्म करो। आलस्य मे जीवन व्यतीत मत करो। अपने से जो कुछ 'मनुष्यता के नाम पर सेवा बन सके,' वह अवश्य करो। उनके यह शब्द आज भी मेरे जीवन मे स्फूर्ति का सचार करते रहते हैं।

वे धर्म को सुख का सोपान मानते थे। उनका विश्वास था कि सभी धर्म अच्छे हैं। भिन्न २ धर्मावलंबियो को उनके धर्मानुकूल ही पुस्तकें पढने के लिये दिया करते थे। दार्शनिक गुत्थियो मे उलझना वे पसन्द नही करते थे। वे जात-पात के भेद-भाव को भी नही मानते थे। हरिजनो से घृणा करना व उनको पतित समझना, वे पाप समझते थे। वे उनकी अवस्था ठीक करना चाहते थे किन्तु समाज मे किसी तरह का विद्रोह करके नही। उनका विश्वास था कि यदि हरिजन पढ लिख जायेंगे और उनका जीवन स्तर ऊचा उठ जायगा तो अस्पृश्यता अपने आप समाप्त हो जायगी। इसीलिये वे किसी भी तरह समय निकाल कर हरिजनो के बच्चो को शिक्षा देने के लिए जाया करते थे।

प्राय मनुष्य सेवा का बाना अपने नाम के लिये पहिनते हैं। ऐसे व्यक्ति कार्य कम करते हैं और प्रचार अधिक, लेकिन मास्टर साहब को अपने नाम का कोई खयाल नहीं था, वे तो निस्वार्थ भाव से सदा सेवा के लिए ही सेवा करना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि कोई उनके कार्यों की प्रशसा करे या प्रचार करे। इसी कारण उन्होने आजीवन अपने सम्बन्ध मे कोई लेख लिखने की कभी अनुमति नहीं दी और एकाध अवसर को छोड़ कर कभी उन्होने अपना फोटो तक नहीं खींचने दिया।

शिक्षा की अपूर्व लगन

(श्री सुल्तानसिह जैन)

जयपुर नगर मे ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो मास्टर साहव स्वर्गीय श्री मोतीलालजी सघी मे परिचित न हो। शिक्षित समाज पर तो चाहे जैन हो अथवा अजैन, मास्टर साहव के शिक्षा प्रेम की छाप लगी हुई है। उन्होने अपना सारा जीवन विशेपतया राज-कार्य से मुक्त होने के पश्चात लगभग बीस वर्ष का समय इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति मे लगाया। रात-दिन, सोते-जागते, खाते-पीते, उनको यही लगन रहती थी कि समाज का कोई बालक अशिक्षित न रहे, कोई जैनी ऐसा न हो जो नियमित रूप से किसी जैन ग्रन्थ का स्वाध्याय न करता हो। उनका यह नियम था कि वृद्ध अवस्था मे शक्ति न होने पर भी पुस्तकें वगल मे दवाकर वे स्वय लोगो के घरो पर जाते और वडी नम्रता मे उनको नित्य स्वाध्याय करने की प्रेरणा करते। उनका स्थापित किया हुआ श्री सन्मति पुस्तकालय उनके शिक्षा प्रेम का एक प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है। मुझे स्वय मास्टर साहव से स्कूल मे शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य तो प्राप्त नही हुआ परन्तु मैं सदैव उनको पिता तुल्य समझता था और गुरु से भी अधिक आदर की दृष्टि से देखता था। एकदफा उन्होने मुझे श्री आदिनाथ स्तोत्र ग्रन्थ सस्कृत मूल और भाषानुवाद सहित ऐसे प्रेम और आनन्द के साथ अध्ययन कराया कि आज तक उनके समझाने की शैली मेरे हृदय पर अकित है।

उनका हृदय वडा कोमल था। ऐसे दीन विद्यार्थी को देखकर जो आर्थिक सकट के कारण अपनी पढाई चालू नही रख सकता हो उनका हृदय व्याकुल हो जाता था। उसकी सहायता करना अथवा कराना मास्टर साहव अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। आज बहुत से ऐसे सज्जन जयपुर मे मौजूद हैं जिन्होंने केवल मास्टर साहव की सहायता और परामर्श के कारण उच्च कोटि की शिक्षा और डिग्रिया प्राप्त की हैं। धन्य है वह महान आत्मा जिसके प्रयत्न के फलस्वरूप आज समाज मे ऐसे रत्न दिखाई देते हैं।

मास्टर मोतीलालजी की जनसेवा

(श्री नृसिंहदास बाबाजी)

सन् १६२२ ई० मे जब मैं स्व० श्री अर्जुनलालजी सेठी के पास अजमेर मे आया तो उन्होने मुझे अपने सभी इष्ट मित्रो एव घनिष्ट सम्पर्कियो से मिलाया। स्व० सेठी जी मुझे तुरन्त ही जयपुर लेकर आए। यहा उन्होने जिन विशिष्ट और प्रतिष्ठित व्यक्तियो से मुझे परिचित कराया उनमे से स्व० मास्टर मोतीलालजी सघी का नाम प्रथम पक्ति में आता है।

स्व० सघी जी बाद मे मुझे अपने घर चौमू ले गए और उन्होने मुझे खादी के विषय मे जानकारी दी। तत्कालीन जयपुर राज्य मे खादी प्रचार का निर्णय और श्री गणेश उनकी सलाह और सहयोग से ही हुआ। मास्टर जी के जीवन का मुझ पर बहुत प्रभाव पडा था। वे वास्तव मे एक साधक थे। वे आत्म सयमी एव दृढ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने बाकायदा साधु-दीक्षा तो नहीं ली थी पर वे साधु जीवन ही बिताते थे।

सन्मति पुस्तकालय की स्थापना कर उसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन ही समर्पित कर दिया। वे सभी विवादो से मुक्त ऐसा जीवन बिताते थे जो न केवल जैन समाज के लिए अपितु मानव समाज के लिए अनुकरणीय है। जयपुर और राजस्थान के विद्यार्थियो के लिए तो विशेषकर उनके जीवन कार्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

निस्पृह तथा मूक सेवा की कहानी

(श्री प्रकाशवती सिन्हा)

नि सन्देह श्री मोतीलाल जी सघी कर्त्तव्यनिष्ठ एव परोपकारी व्यक्ति थे। उनका जीवन देश, जाति और समाज के निमित्त था। आज भी उनका व्यक्तित्व तथा आदर्श जीवन जन समाज के लिये आदर्श का मार्ग प्रदर्शित कर रहा है। श्री सन्मति पुस्तकालय उनकी नि स्पृह तथा मूक सेवा की कहानी अनेको शिक्षा प्रेमी विद्यार्थी, महिला, नागरिक तथा जन समुदाय आदि से कह रहा है। ऐसे सेवा भावी एवं जन-सुधारक के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुये अमर एव महान आत्मा के प्रति मैं अपना भक्ति भाव प्रकट करती हू।

मानव समाज के मूक सेवक मास्टर मोतीलालजी

(श्री दुलीचंद साह)

मास्टर साहब वास्तव मे ज्ञान के नि स्वार्थ पुजारी थे। उनका एक मात्र ध्येय यही था कि किसी प्रकार सच्चे ज्ञान का प्रत्येक मानव मे प्रसार हो ताकि वह अपने आपको तृष्णा और मोह के गहरे गढे मे से निकाल कर सतोप रूपी सुख की सास ले सके। वे किसी एक के नही, वरन् सबके थे, साम्प्रदायिक होते हुए भी साम्प्रदायिकता के मैल से अलग थे। जब वे स्कूल मे पढाते थे तब वे अपने पैतृक प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे। सभव है पिता को अपने पुत्र की आवश्यकताओ का ध्यान न रहे, पर मास्टर साहब अपने प्रत्येक विद्यार्थी की तरफ सजग थे। वे आज के शिक्षक के समान लापरवाह नही थे कि —

The hungry sheep look up and are not fed.

मुझको याद है जब हम मास्टर साहब के पास पढा करते थे तो वे विद्यार्थियो को अपने पास से पैन्सिल व कागज दिया करते और ध्यान रखते कि हरेक बालक नित्य का कार्य कर लेता है या नहीं। यह सेवाभाव मास्टर साहब मे प्रारम्भ से ही था। उनके प्रयत्न से सैकडो असमर्थ व असहाय विद्यार्थी उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने मे सफल हो सके। मास्टर साहब की इस नि स्वार्थ वृत्ति को देख कर कई सच्चे दानी महोदय उनके द्वारा ज्ञान दान मे पैसा लगा कर अपने द्रव्य का सदुपयोग करते और मास्टर साहब का बडा उपकार मानते थे।

मास्टर साहब की प्रेरणा से घर २ मे ज्ञान का प्रचार हुआ। सहस्त्रो स्त्री-पुरुष स्वाध्याय प्रेमी बने। मास्टर साहब घर २ पहुचते और पुस्तकें पढने का आग्रह करते और उनके घरो पर पुस्तकें पहुचाते तथा लाया करते थे। उनके कार्य मे आज का सा दिखावा नही था, न ख्याति ही के भाव थे। वे श्रम प्रिय थे और इस तरह उनका प्रत्येक क्षण ज्ञान के प्रसार मे बीतता था।

मास्टर साहब जिस प्रकार ज्ञान के उपासक थे वैसे ही वे श्रद्धा और चरित्र मे भी पीछे नही थे। वे पक्के श्रद्धालु व सच्चरित्र श्रावक थे। श्रद्धा, विवेक व सदाचार की वे साक्षात् मूर्ति थे। सादा जीवन व सादापन उनके जीवन के चिर सगी थे। वे यद्यपि अग्रेजी स्कूल के अध्यापक थे लेकिन

वही उनकी प्राचीन ढग की अगरखी-पगडी उनके गुरुत्व को, गौरव को सदा सुशोभित करती रही थी। वे सच्चे त्यागी थे। जिस प्रकार ज्ञान प्रसार के कार्य मे उनके दिखावा नही था उसी प्रकार उनका समय सामायिक, आत्म चिंतन व आत्म शोधन ही मे लगा रहता था।

जयपुर में महामना टोडरमलजी, जयचदजी, सदासुखजी, दौलत रामजी, दीपचदजी जैसे महान् नर रत्न हो गये हैं जिन्होने ज्ञान के अगाध वारिधि को मथ २ कर अनेक मोती व लाल उत्पन्न किये लेकिन मास्टर साहब ने उन सबको अपनी सन्मति-दूकान मे रखकर मानव समाज को बिना किसी कीमत के जो लाभ पहुचाया है उसके लिये हम मास्टर साहब के चिर कृतज्ञ रहेगे।

अनाथ विद्यार्थियो के साथी

(श्री अमरचन्द जैन)

शाम का समय था। मैं उस वक्त अष्टम श्रेणी मे अध्ययन करता था। अचानक उस रोज एक सफेद पोशाकधारी महानुभाव ने पिताजी के नाम से आवाज दी। मैंने उनसे कहा कि पिताजी तो यहा पर नही है। आपको क्या काम है सो मेरे को बता दीजिये। इस पर महानुभाव ने नम्रता से कहा कि मुझे एक पुस्तक लेनी है। मैंने कहा कि आप अपना नाम बता दीजिये और साथ मे यह भी बता दीजिये कि पुस्तक कहाँ भेजी जाय। इस पर उन्होंने अपना नाम मास्टर मोतीलाल सघी बताया और पुस्तक पहुचाने के लिए श्री सन्मति पुस्तकालय का पता दिया। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आप ही श्री मास्टर मोतीलालजी सघी सन्मति पुस्तकालय के सचालक हैं। मुझे उन्होने यह भी कहा कि यदि तुमको पुस्तक अध्ययन एव मनोरञ्जन के लिये लेनी हो तो मेरे पास आजाया करो। इस प्रकार मेरा प्रथम परिचय मास्टर साहब से हुआ।

इसके पश्चात् पुस्तको के आदान-प्रदान के लिए पुस्तकालय एव मास्टर साहब के सम्पर्क मे आया। धीरे धीरे मुझे मास्टर साहब की उदारता, सत्यता, देशभक्ति एव स्वार्थ त्याग आदि गुणो का परिचय मिला। मास्टर साहब उस वृद्धावस्था मे भी खाली हाथ बैठना पसन्द नही करते थे। वे हमेशा कुछ

न कुछ पुस्तकालय का काम ही करते थे। उनकी इस कार्यक्षमता को देखकर मैं यह सोचता हू कि उनमे एक आधुनिक नवयुवक से भी अधिक कार्यक्षमता थी।

मास्टर साहब के विचार भी बहुत ऊचे दर्जे के थे। वे निम्नलिखित आशय ज्यादातर हर नवयुवक को कहा करते थे कि यदि हम अच्छी पुस्तकें पढेंगे तो अच्छे बनेंगे और बुरी तो बुरे। और इसलिये वे मानव जीवन के कल्याण के लिए जहा तक हो सकता था जनता के विभिन्न वर्गों से प्रार्थना किया करते थे कि वे अपनी खातिर नही वरन् मेरी खातिर गन्दी पुस्तको का अध्ययन न करें।

उनमे शिक्षा प्रसार की भावना भी बहुत अधिक थी। वे अनाथ एव असहाय विद्यार्थियो को आर्थिक एव मानसिक जहा तक सम्भव था सहायता किया करते थे। यहा तक देखा गया है कि वे अनाथ विद्यार्थियो को अपने साथ ले जाकर विद्यालय मे छोड आया करते थे। कहा तक लिखा जाय, मास्टर साहब देश के तथा समाज के अमूल्य रत्न थे। उनके स्वर्गवास ने हमारे समाज को कितनी क्षति पहुंचाई है, इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना असम्भव ही है।

हम कोई कर्म न करे जो ज्ञान मार्ग का अवरोध करें।

(श्री गोरधननाथ शर्मा)

मास्टर साहब मेरे ज्येष्ठभ्राता स्वर्गवासी पण्डित राजेन्द्रनाथजी एम० ए० के सहपाठी थे—और मुझे भी अपने बाल्यकाल मे कई वर्ष मास्टर साहब से शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वे एक मेधावी और उच्च आध्यात्मिक महापुरुष थे और सरकारी स्कूल में अङ्कगणित के अध्यापक थे। वैसे वे सभी विषयो में पारगत थे किन्तु स्कूल मे मिडिल तक उन्हें गणित पढानी पडती थी।

गणित जैसा कठिन और अरुचिकर विषय भी वे इतनी उत्कृष्ट शैली से पढाते थे कि विद्यार्थी को अत्यन्त रुचिकर होता। उन्होने गणित के ऐसे नये और अद्भुत गुरू भी बनाये थे जिनसे बहुत से कठिन प्रश्न सहज मे हल हो जाया करते थे। विद्यार्थियों के प्रति बिना भेद बुद्धि के इतना स्नेह और प्रेम था जिसका उदाहरण मिलना कठिन है।

मास्टर साहब स्कूल जाते समय दो बस्ते अपने साथ घर से ले जाते थे जिनमे कई प्रति गणित की पुस्तकें, पैन्सिलें स्लेटें आदि होती थी। हर क्लास मे जिस विद्यार्थी को इनमे से जिस वस्तु की आवश्यकता होती वे दे दिया करते थे। स्कूल मे जब छुट्टियें रहतीं आप अपनी क्लासो के बालको को स्कूल मे बुलाते और पठन कार्य चालू रहता।

उनका घर एक निशुल्क पाठशाला थी। रात्रि मे नौ बजे तक और दिन मे शाला के समय के बाद वे आने वाले बालकों को बड़े प्यार से दत्त-चित्त होकर पढ़ाया करते मानो परिश्रम ही उनका जीवन था। उन्हें क्लान्त होते कभी देखा ही नहीं। मैंने न कभी उनको रुग्ण देखा और न निरुत्साहित।

शीतकाल मे वे कानो और मस्तक पर एक गुलूबन्द लपेटे रहते और इसके लिए कई बार कहा करते कि मेरे बाल्यकाल की नासमझी से कानो व मस्तक को शीत से बचाने के उद्देश्य से गुलूबन्द लपेटने की बुरी आदत पड गई है अतः तुम ऐसी आदत कभी मत डालो। यदि कोई बालक कान लपेटे होता तो उसके कानों को तुरन्त उपरोक्त बात कहकर खुलवा देते।

वे अहिंसा के स्वरूप थे, जूते मे कोई नाल बन्धा लेता तो वे बडे ही मधुर शब्दो मे उसे समझाते और मन, वचन काय द्वारा अहिंसक बनना मनुष्य मात्र का प्रथम कर्तव्य बताया करते।

विद्यार्थी जीवन नि शेष होने के बाद जब कभी मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता मैं चरणस्पर्श के लिये ज्योही नत मस्तक होता आप हट जाते और प्रेमविभोर होकर मेरा मस्तक हृदय से लगा लेते और सक्षेप मे यह मन्तव्य प्रकट करते कि अभिमान जीव का परम शत्रु है, यह मनुष्य को मनुष्यता से शीघ्र च्युत कर देता है। अत तुम्हें इससे सावधान रहकर दूसरे के प्रति ऐसे आचरण नही करने चाहियें जिनसे उसका पतन हो, उसमें अभिमान जागृत हो।

ज्ञान बहुत दूर की वस्तु है। इसकी प्राप्ति मे हमारे कर्म बाधक हैं, इसलिए जो कर्म मनसा वाचा कर्मणा किये जाय उनको सूक्ष्म दृष्टि द्वारा पहिले जाच लेना चाहिये कि कहीं ऐसा कर्म तो हम नहीं करने जा रहे हैं जो ज्ञान मार्ग का अवरोध करता हो—यह आपका उपदेश था।

उनका अनुकरणीय व्यक्तित्व

(श्री ताराचन्द गंगवाल)

मास्टर सघी मोतीलालजी से मेरा प्रथम परिचय शायद सन् १९१२ में हुआ और सन् १९१३ से १९१८ तक तो मैं उनका शिष्य ही रहा—मेरे समय मे वे मिडिल क्लास तक गणित ही पढ़ाते थे, पर पहिले वे अग्रेजी वगैरह और विषय भी पढाते बताये।

गणित पढाने मे उस समय के अध्यापकों में मास्टर साहव का विशेष नाम था। गणित की प्राइवेट ट्यूशन के लिये मास्टर साहव की विशेष माग रहा करती थी। फिर भी मास्टर साहव में उस जमाने से ही इतना सतोष था कि उन्होंने प्रतिदिन १–२ घण्टे अपने घर पर विद्यार्थियो को नि शुल्क पढाने को नियत कर रक्खे थे। घर पर आने वालों की सख्या काफी होती थी जिनमे बहुत से विद्यार्थी दूसरे स्कूलो के भी हुआ करते थे और इनमे कई तो मैट्रिक आदि ऊचे दर्जों की पढाई के लिए भी आते थे।

मास्टर साहव की धर्मपत्नी का देहान्त मेरे सम्पर्क में आने के बहुत पहले ही हो चुका था। उस जमाने मे वृद्ध विवाह काफी प्रचलित थे। मास्टर साहव की अवस्था तो उस समय बहुत ही कम थी, उनके लिये तो दूसरा विवाह करना साधारण ही वात होती, पर मास्टर साहब के सिद्धांत बहुत ही दृढ थे। वे दूसरी शादी करने पर उनके मित्रो के वारबार आग्रह करने पर भी राजी नहीं हुए। वैसे तो उनके 'सुधारक' मित्रों मे ऐसे भी थे जिन्होने दूसरी ही नही तीसरी वार भी शादी की थी।

मास्टर साहव का सम्बन्ध उस जमाने के नेता स्वर्गीय प० अर्जुनलाल जी सेठी से भी बहुत घनिष्ट था। मास्टर साहव भी पहले तो 'समिति' नाम की सस्था के सदस्य रहे पर निर्भीकता से विचार प्रकट करने के कारण या अन्दरूनी झझटों से जल्दी ही उससे अलग हो गये। मास्टर साहब सदा से ठोस कार्य करने वालों मे से थे—दिखावे से उनको क्या वास्ता ?

उस समय के समाज सुधारको मे भी मास्टर साहव अग्रगण्य थे। अपनी लडकी की शादी की पद्धति मे भी जो आज से ४०–४५ वर्ष से भी पहले हुई थी कई सुधार किये थे लडके की सुधार पूर्ण शादी की तो मुझको खुद को याद पड़ती है। मेहतरानियो के जो उस जमाने मे किसी भी विशेष

घटना के होते ही तुरन्त नया गीत जोड दिया करती थी, 'सरावग्यां मे नाता हो गया रे' शीर्षक गीत ने इस अवसर पर जयपुर दिगम्बर जैन समाज में काफी हलचल मचादी थी।

मास्टर साहब का पढाने का तरीका बडा ही रोचक व प्रभावशाली था। वे खुद तो पढ़ाने मे मग्न होते ही थे, पर कोई विद्यार्थी भी उनकी कक्षा मे अन्यमनस्क नही रह सकता था। क्लास मे सवाल न करने का कोई भी बहाना करना नामुमकिन था क्योंकि लिखने के लिये पैंसिल न होने पर पैंसिलो तक का स्टाक उनके अपने बस्ते में काफी रहा करता था और उसके टूट जाने पर उनको बनाने के लिये चाकू भी, अंक गणित की किताब का जो उस जमाने मे काफी मोटी होती थी, बोझ ढोने से लडके काफी जी चुराते थे पर तगडी मार पडने के डर से मजबूरन क्लास मे रोज ले जाना पडता था। पीटने मे भी मास्टर साहब मेरे समय मे तो कम से कम सर्व प्रथम ही थे। शायद ही कोई उनका शिष्य उस जमाने मे ऐसा बचा हो जिसके कान न खेंचे गये हों या जिस के घूसे, मुक्के, चाटे न पडे हों। मैं तो एक दफा की मार की याद कभी नही भूल सकता जब इम्तिहान मे १०० मे से ३५ नम्बर आने पर खानी पडी थी। सुना कि पिछले सालो मे तो मास्टर साहब ने मारना छोड दिया था।

पुस्तकालय का बीज तो मास्टर साहब मे मेरे पढना प्रारम्भ करने के पहले ही अकुरित हो चुका था—उनके पास कोर्स के अलावा सामान्य पुस्तको का काफी स्टाक था जो वे आग्रह करके विद्यार्थियों को घर पर पढने के लिये दिया करते थे। उस वक्त तो उनका ध्येय अग्रेजी की लियाकत सुधारना ही था। धीरे २ यह अकुर 'श्री सन्मति पुस्तकालय' के रूप मे बढ गया। किताबो मे विशेष कर निर्धन विद्यार्थियो को पढाने के लिये कोर्स की भी किताबो के कई सेंट रहा करते थे। विद्यार्थियो को इम्तिहान की फीस और दूसरे प्रकार मे रुपयों की सहायता देने के लिये विशेष रूप से प्रख्यात थे। लेकिन कहां से रुपया बटोर कर यह कठिन कार्य वे कर पाते थे। इसकी जानकारी तो उन्ही के साथ चली गई।

वैसे तो उपन्यासो से मास्टर साहब को चिढ ही थी पर एक बार वे 'अनाथ बालक' कही से ले आये—मुझे आज भी याद है उनका कुछ अश क्लास मे सुनाते जाते थे और आखो से आसुओ की धारा बहती जाती थी।

मास्टर साहब अंतःकरण से जैन धर्म मे दृढ विश्वास रखते थे जो दूसरो की निगाह मे शायद धर्मान्धता तक पहुच गया हो, पर उनमे द्वेष की मात्रा तो रच मात्र नही थी। कई विद्यार्थियो को तो वे धर्म अत्यन्त आग्रह के साथ पढाते थे जो टालना कठिन था। दूसरे दिन फिर याद करके सुनाना पडता था, इसलिये याद करना आवश्यक हो जाता था। कुछ समय के लिये इस तरह फसने वालो मे मैं भी था।

नियम के पक्के तो वे अत तक रहे। दो वार से ज्यादा वे भोजन कभी नही करते थे। दवा भी लेनी होती तो भोजन के साथ ही लेते। कितनी भी तकलीफ हो भोजन के समय के अलावा अत तक दवा लेने को राजी नही हुए। एलोपैथी मे वेशक विश्वास था, पर पिछले दिनो मे हिंसा के खयाल से डाक्टरी पढने को विद्यार्थियो को उत्साहित करना छोड दिया था।

फोटो खिचवाने से मास्टर साहब को अत्यन्त नफरत थी। अगर किसी ने जबरदस्ती फोटो खेंचने की कोशिश भी की तो खफा होते थे और मु ह ढक लेते थे। किसी भी प्रकार का विज्ञापन अथवा प्रदर्शन उन्हें कतई पसन्द नहीं था।

एक मिनिट भी समय व्यर्थ खोना उन्हे नापसन्द था। पुस्तकालय की कितावो के कवर उनके खराव न होने के लिये अवसर वैठे वैठे चढाया करते थे और आने जाने वालो के साथ वात भी करते रहते थे। अगर कोई वात करने वाला नही हुआ तो मन ही मन भजन गुनगुनाते रहते थे।

मेरी तो यह धारणा है कि मास्टर साहव जैसी विभूतिया ससार मे कभी कभी ही जन्म लेती हैं। उनका व्यक्तित्व वास्तव मे अनुकरणीय है।

पुण्यवान परमार्थी मास्टरजी

(श्री पूर्णचन्द्र जैन)

उस दिन प्रात स्मरणीय मास्टर मोतीलालजी सिंघी के स्मृति दिवस के सम्वन्ध मे आयोजित एक सभा मे मुझ से भी श्रद्धाजलि के दो शब्द कहने के लिए समार्पित का आदेश मिला। बोलना कुछ कठिन नही था और उठकर बोला भी। किन्तु हृदय गद्‌गद् रहा और मस्तिष्क में एक के बाद दूसरा चित्र अकित होकर पुरानी स्मृतियो को ताजा करता गया।

उनकी स्मृति में प्रकाशित किये जाने वाले ग्रन्थ के लिए दो पक्तियां लिखने के लिए बैठता हूँ तो वही स्थिति हो जाती है। श्रद्धा के दो अकिंचन फूल वाणी द्वारा प्रस्तुत करू या लेखनी द्वारा अर्पित, मास्टरजी की पावन याद शरीर को उनके समीप ले जाकर तन्मय कर देती है और श्रद्धा अर्पण का कार्य विस्मृत हो जाता है।

लगता है कि यह लिखने, बोलने और धरती पर यो चलने की जो कुछ क्षमता मुझ में है उसका कोई एक जन्मदाता और पोषक हो सकता है तो वह मास्टर मोतीलालजी ही थे। उनका अत्यधिक उपकृत हू या कि आज जो कुछ हूँ उसका सम्पूर्ण श्रेय मास्टरजी को है, इतना भी कहने में वह सब समाविष्ट नही हो सकता जो कुछ उनके बारे में कहा जा सकता है और मेरे जैसे व्यक्ति द्वारा कहा जाना चाहिये। असल मे पार्थिव वाणी और लेखनी मा के वात्सल्य और धात्री वसुंधरा के निस्वार्थ भरण पोषण भाव को क्या कभी व्यक्त कर सकती है ? [माता पिता के प्रति सन्तान उपकृत होने की क्या बात कहे और उस उपकार से उऋण होने की वह क्या धृष्ट कल्पना करे ? मेरे लिए मास्टरजी मा और धात्री वसुंधरा से कुछ कम नहीं बल्कि ज्यादा ही थे।

एक जीता जागता चित्र सामने आता है। गौर वर्ण का, सौम्य भरी हुई मुखाकृति वाला, वेश भूषा और चाल ढाल के बारे मे उदासीन, एक व्यक्ति मन ही मन भजन गुनगुनाता धीमी शान्ति गति से चला आरहा है। बगल मे किताबों का एक बस्ता है, हाथ मे कुछ नये पुराने अखबार है। अपने प्रिय चुनिन्दा भजन व पदो के हस्तलिखित सग्रह की कई जिल्द बन्धी कापियो मे से एक कापी भी साथ है। मोटी खद्दर की धोती, मोटे ही वस्त्र का कुरता या अचकन, सिर पर पगडी, कभी नगे सिर, और सर्दी मे कभी रुई का टोपा सिर पर लगा, धीरे धीरे वह व्यक्ति चला आ रहा है। विद्यार्थी सामने आया। उसे रोका और पूछना शुरु किया, " क्यो भाई, पढते हो, पढाई कैसी चल रही है, अबके इम्तिहान मे नम्बर कैसे आये और भी कुछ किताबें देखते हो? धर्म सदाचार की पुस्तकें भी देखा करो, माता पिता अच्छे हैं, तुम्हारे उस साथी को नही देखा' इत्यादि"। उस व्यक्ति का स्नेह और अपनापन, अच्छे रास्ते पर चलने और अच्छे रास्ते पर लाने की उत्कृष्ट भावना, हर शब्द मे और कदम मे देख लीजिए। विद्यार्थी किसी जाति का हो, किसी उम्र का और किसी भी धर्म या मजहब को मानने वाला, उसके पढने लायक किताब वह व्यक्ति उसे बताता है और उसी के धर्म की अच्छी समझने लायक पुस्तक उसे वह व्यक्ति देता है। यह व्यक्ति हैं मास्टर मोतीलालजी।

मास्टर मोतीलालजी 'चौमू वाने' नाम से प्रसिद्ध थे और एक सामान्य राजकीय स्कूल के साधारण मास्टर मात्र वे थे। तनख्वाह उस जमाने की वही मामूली पचास साठ रुपये होगी, फिर भी हर प्रकार की अच्छी पुस्तकों के संग्रह, उन्हें आबाल वृद्ध व्यक्तियों को पढ़ने देने व विद्यार्थियों को हर तरह की मदद पहुंचाने की उनकी साध असीम थी। पहले घर ही पर पुस्तकें रखीं। घर घर जाकर पुस्तकें दीं और घर घर में वापिस लाये। मन्दिर में स्थान मिल गया तो वहां पुस्तकालय जमाया और उसमें पुस्तकें को रजिस्टर में दर्ज करने, उस पर गत्ता चढ़ाने, उसे जावक रजिस्टर में लिख कर देने, पढ़ने वालों के नाम का खाता तैयार करने आदि का काम वे ही निरन्तर करते। स्कूल के अध्यापन कार्य के साथ यह साधना और ज्ञान-दान बराबर चलता रहा। चारों ओर मंडराने वाले शिष्य-समुदाय और पाठकवर्ग में से कुछ से मदद उन्होंने भले ही ली हो, किन्तु नौकर रखने व टीपटाप और विज्ञापन में एक पैसा खर्च नहीं किया।

उस विद्यार्थी-समुदाय और व्यक्ति-समूह की संख्या का आज कोई अनुमान नहीं लगा सकता जिसने मास्टर मोतीलालजी की मूक साधना, निस्वार्थ सेवा और निरभिमान की गई सहायता से जीवन में सफलता प्राप्त की। सहायता देने वाले ने उनके प्रत्यक्ष या परोक्ष तत्संबंधी आदेश से अपने आपको कृतज्ञ अनुभव किया और सहायता पाने वालों को कैसा जीवन-दान मिला यह तो वह ही अनुभव कर सकता था जिसने सहायता पाई। ट्यूशनें दिलवाकर, पुस्तकादि साधन देकर, माता पिता की किसी निराशा या कठिनाई के कारण विद्यार्थी का शिक्षा-क्रम टूटता है तो वह दूर करके, परीक्षा के दिनों में अतिरिक्त समय व शक्ति पढ़ाने में लगाकर, अनेक भांति से उन्होंने साधनहीन, निस्सहाय हजारों ही विद्यार्थियों को पांव पर खड़ा होने योग्य बना दिया और प्रतिभा कहीं मिट्टी में मिल जाती उसे चमक उठने का अवसर दिया। शिक्षा और जो ज्ञान-प्रसार के इस कार्य के साथ चरित्र-निर्माण और अपने अपने धर्म के प्रति दृढ़ता रखने व उसे समझने की रुचि उत्पन्न करने का भी वे बराबर ध्यान रखते थे। मन्दिर में मुसलमान नहीं आ सकता था तो उसके लिए वे नई पुस्तकें स्वयं मंदिर के बाहर आकर देते, पहले की पुस्तकें वापिस ले आते और उसकी पढ़ाई, उसके घर की हालत, उसकी पुस्तकों सम्बन्धी रुचि आदि के बारे में बातचीत करते।

किस प्रसंग को याद किया जाय और किस किस का यहां उल्लेख किया जाय! वह गाथा अनन्त है और उसे शब्दों की सीमा में बांधना असम्भव है। उनसे और उनके द्वारा सहारा पाकर चल खड़े होने वाले और जीने वाले उस समय के हजारों विद्यार्थी आज वयस्क होकर उनकी जीवित स्मृति बन गये हैं। चिर-कृतज्ञता की श्रद्धांजलि वे जीवन पर्यन्त अर्पित करते

रहेंगे। मेरी यह श्रद्धांजलि भी उस पुण्यवान् परमार्थी के चरणो को स्पर्श करने वाली जल राशि मे एक बिन्दु रूप सम्मिलित होगी इस विचार से मैं धन्य हूं।

वे गृहस्थ होकर भी साधु से अधिक थे

(श्री राजमल छाबड़ा)

स्वर्गीय सघी मोतीलालजी मास्टर वास्तव मे सच्चे मोती थे। प्रारम्भ मे मेरा निकट परिचय मास्टर साहब से मुख्यतया मेरी घरेलू परिस्थितियो के कारण हुआ था। मेरे दत्तक माता-पिता बिलकुल पुराने विचारो के व्यक्ति थे। आठवें, गोरणी, मृत्यु भोजन, लेन देन और जेवर इत्यादि के लिए उनके पास पैसे की कोई कमी नही थी, लेकिन मैट्रिक पास करने के पश्चात उन्होंने मेरी शिक्षा के लिए व्यय करना निरर्थक समझा था। यदि मास्टर साहब से मेरा सम्पर्क न हुआ होता तो मैं हरगिज भी बी० ए० की परीक्षा पास नही कर सकता था।

मैं हर समय मास्टर साहब को सेवा के व ज्ञान प्रसार के कार्यों मे ही लगा हुआ देखता था। वे स्वयं घूमते फिरते पुस्तकालय थे। लोगो के घरों पर जाकर पुस्तकें इकट्ठी कर लाते थे और दे भी आते थे। जहा तक मेरी जानकारी है उन्होंने पुस्तकालय के लिए कभी भी विशेष रूप से धन सग्रह करने का प्रयत्न नही किया लेकिन फिर भी उनके पास पुस्तकें खरीदते रहने तथा विद्यार्थियो को आर्थिक सहायता देने पर भी मैंने कभी उनके पास रुपये की कठिनाई नही देखी। सेवा करने मे उनके पास जात-पात का भेद नही था। जयपुर के हर समाज का व्यक्ति उनका सम्मान करता था और बिना किसी रसीद के रुपये भेट करता था। वैसे तो सैंकडो क्या हजारो व्यक्ति मास्टर साहब के प्रति आभारी हैं लेकिन मैं तो इतना कृतज्ञ हूँ कि जिसका वर्णन करने के लिए मैं असमर्थ हू।

मास्टर साहब गृहस्थी थे लेकिन गृहस्थी होते हुए भी निर्मोही थे और ऐसे साधु या मुनि से अच्छे थे जिसका कि उल्लेख रत्न करड श्रावका चार के निम्नलिखित ३३ वें काव्य में उल्लेख है'—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्
अनगारी गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः।

मास्टर साहब विद्यार्थियो के लिये संसार में पैदा हुए थे।

(श्री विद्याप्रकाश काला)

मास्टर साहब की शीलयुक्त तथा कर्ण प्रिय वाणी भूले भटके छात्रो को सच्चे मार्ग मे लगाने के लिए जादू का काम करती थी। उनकी शक्ति का बडा रहस्य इसी वात मे छिपा हुआ था कि उन्होंने अनेक बिगडे हुए छात्रों को ऊपर उठाया और उन्हे एक लक्ष्य प्रदान किया।

मास्टर साहब गरीव-अमीर सभी विद्यार्थियों के लिए थे। गरीवों को सहायता दिलवाना तथा अमीर विगडे हुए छात्रो को रास्ते लगाना, यही उनका नित्य का काम था। एक शब्द मे उनके जीवन का सार विद्यार्थियों को साधक तथा सदुपयोगी वनाना था। जैसा कि प्राय सुकरात के लिए कहा जाता है कि वह 'तर्क' के लिए जन्मे थे या नैपोलियन के लिए कि वे 'विजय' के लिए ससार मे आए थे, उसी प्रकार मास्टर साहव ससार मे विद्यार्थियों के लिए ही पैदा हुए थे।

मैं कई दफा मास्टर साहब से मिला हू। मैंने अपनी पढाई स्कूल में प्रारम्भ की थी—उस समय मेरी मास्टर साहव से पहली भेंट हुई थी। स्कूल मे भर्ती होना था। मास्टर साहव ने हैड मास्टर से मेरी सिफारिश की और मुझे स्कूल मे भर्ती करवा दिया।

स्कूल की छुट्टी के वाद मुझे उनसे आदेश मिला कि मैं नित्य उनके घर पर तीन वजे हाजिर होऊं। मैं जाने लगा। मुझे उन्होने आवश्यक पुस्तकें अपने पुस्तकालय से दी और अन्य छात्रो के साथ जिस विषय मे मैं कमजोर था—उस विषय की कमजोरी दूर करने के लिए उन्होंने मेरे लिए प्रवन्ध किया।

कुछ वर्षों वाद मैं उनसे फिर मिला। मैं इस समय एम० ए० पास कर चुका था। मेरे इस समय एक असाधारण फोडा हो रहा था। मेरे पूज्य पिताजी मास्टर पाचूलालजी ने मुझे सुझाव दिया था कि मैं मास्टर साहव से मिल लू। किसी कारणवश वे मेयो अस्पताल मे ही रहते थे। मास्टर साहव ने मेरी हालत देखी और उसी समय आपरेशन रूम मे लेजाकर अपने सामने मेरा आपरेशन करवाया तथा मुझे घर तक पहुचाने का प्रवन्ध किया।

इसके बाद एक सामाजिक समारोह के अवसर पर उनसे मेरी फिर भेंट हुई। इस समय मैं सीकर मे इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल के पद पर कार्य कर रहा था। वे मुझ से ऐसे मिले मानो एक पिता अपने पुत्र से कई दिनो बाद मिलता है। बहुत देर बातो के पश्चात् उन्होंने मुझे धार्मिक पुस्तको के स्वाध्याय करते रहने का आदेश दिया तथा 'सोहम्' मत्र को अवकाश के समय जपते रहने के लिए मजबूर किया।

मास्टर साहब मे इतनी अधिक चारित्रिक विशेषताए और शक्ति के स्रोत विद्यमान थे कि उनका वर्णन किस प्रकार किया जाय यह कठिन है। वे शुरू से ही स्वाध्याय प्रेमी थे और धार्मिक ग्रन्थो को बडे प्रेम और श्रद्धा से पढा करते थे। उन्हे प्राचीन कवियो के भजनो का बडा शौक था। पडित दौलत-रामजी, भूधरदासजी, भागचदजी आदि के सैकडो भजन उन्होने कठस्थ कर लिए थे।

सच तो यह है कि मास्टर साहब एक सच्चे और बडे शिक्षक थे। वे लोगो को शिक्षित करना अपना फर्ज समझते थे। उन्होने बहुत से असहाय छात्रो को ऊची परीक्षायें पास करवाई तथा भूले भटके साथियो को मार्ग बताया। इसका नतीजा यह है कि मास्टर साहब मर चुके हैं फिर भी वे आज जीवित हैं।

पावन स्मृति

(श्री सिद्धराज ढढ्ढा)

श्रद्धेय मास्टर साहब की याद आते ही बचपन के जीवन का एक अध्याय ही मानो आंखो के सामने आजाता है। उन दिनों मैं स्कूल जाता था। मास्टर साहब मोतीलालजी जिस स्कूल मे पढाते थे उसमे तो सीधे इनसे पढने का सौभाग्य मुझे नही मिला, पर वे अपने पुस्तकालय से लडको को पढने के लिए किताबें दिया करते थे इसलिए मैं भी उनके पास पहुचने लगा। जब मै किताब लेने उनके यहा पुस्तकालय मे पहुचा तो वे जो मैं मांगता उसके अलावा अपनी ओर से कुछ और भी किताबें सदाचार, धर्म या नीति सम्बन्धी सामने रखते और अमुक पुस्तक पढने का आग्रह भी करते। उनका यह नियम सा बन गया था कि वे कुछ किताबें अपने बगल मे लेकर निकलते और जो बच्चे या बडे उनके सम्पर्क मे आये हुए होते उनके घर पहुचकर नई किताबें देते, पुरानी बटोरते और दो

चार बात सीख की कह कर आगे चल देते। उनकी इस 'सरस्वती यात्रा' का प्रवाह पावन गंगा की तरह निरन्तर बहता हुआ मैंने देखा और कितने बालक उस पवित्र धारा के सम्पर्क मे आकर प्रभावित हुए होंगे ! मेरे मन पर तो मास्टर साहब की सरलता, सादगी और धर्म प्रियता की गहरी छाप पडी थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उनके प्रति मेरे मन मे बहुत आदर था और ज्यो२ बडा होकर मे दुनिया को समझने लगा त्यो २ तो यह आदर-भावना दिन व दिन बढती गई। आज भी उस पावन व्यक्ति की तस्वीर जब स्मृति की आखो के सामने आती है तो मन ही मन सिर आदर से झुक जाता है।

काश हमारे समाज मे ऐसे 'शिक्षक' ज्यादा होते। वे सचमुच एक आदर्श 'शिक्षक' थे। उन्हे जो वेतन मिलता होगा उसमे अपना गुजर करके वाकी का सारा समय और शक्ति वे इस तरह सद्ज्ञान और सदाचार के प्रचार मे लगाते थे और अपनी निष्ठा से बालको को प्रभावित करते थे, वे चाहते तो आज के अध्यापकों की तरह वे भी अपने समय का एक २ मिनिट 'ट्यूशन' करने मे लगाकर थोडा पैसा और पैदा कर सकते थे, पर उन्होने सतोष को अपना लिया था और इसीलिये अध्यापकी का वेतन तो वे छ सात घटे की नौकरी का ही पाते होंगे पर अपना सारा फाजिल समय इसी काम मे निस्वार्थ बुद्धि से लगा देते थे।

लडकपन की जो थोडी सी स्मृतियां अब भी ताजा है उनमे आदरणीय मोतीलालजी 'मास्टर साहब' की याद और उनकी सरलता व प्रेम की वह मूर्ति आज भी ज्यों की त्यो आखो के सामने आ जाती है। उनकी इस पावन याद मे शतश प्रणाम !

पितृ-स्वरूप मास्टर साहब

(श्री प्रवीणचन्द्र जैन)

सन् १९२४-२५ से पहले की बात है। तब मैं उपाध्याय श्रेणी में पढता था। मैं सुना करता था कि दडे पर एक पुस्तकालय है, वहाँ मास्टर साहब लोगो को पढ़ने के लिए मुफ्त पुस्तकें देते हैं। मुझे कहानियो और उपन्यास की पुस्तकें पढने का शौक था। एक दो साथियो के साथ मास्टर साहब के पास पहुचा। केवल धोती पहने हुये सौम्यमूर्ति मास्टर साहब के सामने दो बड़े २ रजिस्टर रखे हुए थे। बीस पच्चीस आदमी पुस्तकें लेने-देने के लिए

मास्टर साहब के मुह की ओर देख रहे थे। वे ही पुस्तकें जमा करते दूसरी पुस्तकें देते। कौनसी पुस्तक पढने की है कौनसी नही यह सलाह देते। एक व्यक्ति के साथ लगभग दस मिनट तो लग ही जाते थे। इसलिए पुस्तकें लेने वालो को काफी प्रतीक्षा करनी पडती थी, पर इन प्रतीक्षा के क्षणो मे जो कुछ सुनते और देखते थे वह अपने आप मे ऐसे लाभ की चीज थी जिसे छोडना उन लोगों को अच्छा नहीं लगता था।

पुस्तकें लेने वालों मे अधिकतर विद्यार्थी होते थे जिन मे से अधिकांश को वे व्यक्तिगत रूप से जानते थे। अमुक विद्यार्थी कौनसी कक्षा मे पढ़ रहा है। उसका समय जिस जिस तरह बीतता है। उसको पाठ्य पुस्तकें मिली हैं कि नही। परीक्षा की फीस की उसने क्या व्यवस्था की है। भोजन और कपडे की क्या व्यवस्था की है। यदि सामने का व्यक्ति जैनेतर हुआ तो उससे पूछते तुमने गीता या उपनिषदो की पुस्तकें हिन्दी मे देखी हैं कि नही। वे यह भी सहज स्नेह से बताते कि अमुक धर्मग्रन्थ या दर्शन की पुस्तक का अमुक सस्करण अभी हाल ही मे पुस्तकालय मे खरीदा गया है, वह पढने योग्य है। जैन होता तो उसे जनधर्म की उपयोगी पुस्तकें आग्रहपूर्वक बताते। जीवन का उद्देश्य त्यागमय होना चाहिये, ग्रह या परिग्रह वाली बात को अच्छी नहीं बताते थे। जो चीज अपने उपयोग मे नहीं आती हो उसे दूसरे जरूरतमन्द लोगो को दे देना चाहिए। इस तरह की बातें उनसे करते रहते।

मैं यह सब देख रहा था। उनकी नजर मुझ पर गई। पूछा तुम कैसे आये हो। मैंने साथी की ओर इशारा करके कहा इनके साथ आया हूं। इन्होने बताया कि आप बिना जमानत लिए अच्छी अच्छी पुस्तकें पढने को देते हैं। मुझे भी कहानी उपन्यास की पुस्तकें दीजिए। फिर मुझसे उन्होने यह जाना कि मैं सस्कृत पढता हूं तब तो वे बडे प्रसन्न हुए और कहने लगे अपना समय कहानी उपन्यास मे क्यो लगाते हो। मैं तुम्हे अच्छे जीवनचरित्र दूगा। वे उठे और सामने की अलमारी के पहले खण्ड मे पीछे की तरफ से ३-४ पुस्तको मे से दो पुस्तकें निकाल कर उन्होंने मुझे दी। वे पुस्तकें मुझे रुचिकर नही मालूम दी तो उन्होंने कहा कि दो चार दिन अपने पास रखो और जब थोडा समय मिले तो इन्हे पढना। फिर मेरे पास आना। इस तरह फिर कई बार मैं उनके पास जाता आता रहा। कभी मेरे मनकी पुस्तक मिल जाती, कभी नही।

(२)

उपाध्याय की परीक्षा पास करने के बाद मैं शास्त्री की परीक्षा देना चाहता था। उन दिनो दि० जैन समाज मे पार्टीबन्दी बडे जोर से चल रही

थी। सुधारक और स्थिति पालक दोनो मुझे अपनी ओर खीचना चाहते थे। मुझे मिथ्या आग्रहो से और बनावट से प्रारम्भ से ही घृणा रही है। सुधार प्रेमी लोगो के वातावरण मे रहने से मेरे ऊपर दूसरे पक्ष वालो की कोप दृष्टि पडी। दि० जैन पाठशाला (आज का दि० सस्कृत कॉलेज) मे उच्च अध्यापक की व्यवस्था नही थी और मेरे लिए व्यवस्थापक महोदय कोई विशेष प्रवन्ध भी नही करना चाहते थे। तब मैंने यह चाहा कि सरकारी सस्कृत कॉलेज मे पढू। तत्कालीन शिक्षा-विभागाध्यक्ष और शिक्षा-सचिव दोनो से प्रोत्साहन पाकर मैंने वहा पढने के लिए आवेदन-पत्र दिया, पर सस्कृत कॉलेज के अध्यापको ने मेरे जैन होने के कारण मेरा वहा प्रवेश पाने का अधिकार नही समझा। सरकार ने उनका पक्ष लिया और मेरे सामने ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि मैं सस्कृत पढना छोड दू। इसी बीच मेरा सम्पर्क मेरे पिताजी के निकट परिचित श्री मोहनलाल जी पापडीवाल से हुआ। भाई मोहनलाल जी जीवन-निर्माण कार्य मे प्रारम्भ से ही रुचि लेते रहे हैं। जब उन्हे पता लगा कि मैं पढना छोड रहा हू तो वे मुझे मास्टर साहब के पास ले गए। मास्टर साहब ने सारी बात सुन कर मुस्कराते हुए कहा—घबराने की क्या जरूरत है, तुम्हारे पढने की अच्छी व्यवस्था कर दू गा, तुम पुस्तकालय में आकर पढा करो। उन्होंने पू० प० दामोदर जी आचार्य से जो वहा महाराजा कालेज या हाई स्कूलो के सस्कृत के छात्रो को प्राइवेट पढाया करते थे कहा कि वे मुझे दो घटे रोज अलग पढाया करें। इसके बाद उन्होने मेरी सहायता कई तरह से की और मैं शास्त्री परीक्षा मे बैठा और सफल हुआ।

(३)

शास्त्री परीक्षा पास कर लेने पर मैंने फिर चाहा कि सस्कृत कॉलेज में पढ कर मैं आचार्य परीक्षा भी दे डालू। घोर प्रयत्न किया। इस प्रयत्न मे मास्टर साहब ने काफी योग दिया। मेरे साथ वे कई अधिकारियो से और समाज के गणमान्य लोगो से भी मिले। पर जब कट्टरता की दीवार जरा भी नही हिल सकी तो मैंने आचार्य परीक्षा देने का विचार छोड दिया। मैंने मास्टर साहब से कहा कि मैं अब मैट्रिक परीक्षा देना चाहता हू और इस तरफ अपने शिक्षा-क्रम को मोड देकर आगे पढना चाहता हू। उन्होने इस विचार का स्वागत किया और तब मैंने मैट्रिक और इसके बाद इटरमीजियेट की परीक्षा पास की। मेरी आर्थिक अवस्था अच्छी नही थी, इसलिए मैं दरबार हाई स्कूल मे हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गया। मास्टर साहब भी तब उसी हाई स्कूल मे पढाते थे। इस तरह से चार साल तक मुझे उनके सहयोगी साथी बन कर काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनो मेरे

विचार उनके विचारो से मेल नही खाते थे। खान-पान के सम्बन्ध मे जाति बिरादरी का बधन मुझे कभी प्रिय नही रहा। मैं अपने विद्यार्थियों के साथ उनके इच्छापूर्ण आग्रहवश भोजन करने में नही हिचकता था। मास्टर साहब को यह बात पसन्द नही थी। वे मुझसे तो कुछ नहीं कहते थे, पर उन छात्रों को बुलाकर उन्हें इस तरह के खानपान मे बुराई बताते थे और प्रायश्चित भी करवाते थे। जब मुझे मालूम होता तो मुझे बुरा लगता था। मैं उन छात्रो की कमजोरी पर उन्हें समझाता था। उनकी स्थिति विचित्र होती थी। एक दो बार मैंने मास्टर साहब से विनयपूर्वक कहा कि यदि मेरे किसी आचरण से उन्हे बुरा लगता हो तो वे मुझे समझाएं, मैं दुराग्रह नही करूंगा, तो वे मुझ से यही कह कर टाल देते थे कि छात्रो को सयम से रहना सिखाना चाहिए। जब मैं जोर देकर कभी कहता कि साथ खाने-पीने में कौनसी बुराई है, उसी समय जब कि वे दूसरे लोगों के साथ एक थाली में बैठकर खाते पीते हो, तो वे मुझ से यही कह देते थे कि तुम तो अधर्मियो की सी बातें करते हो।

मैंने एम० ए० पास किया, इसके बाद पी-एच० डी० की तैयारी में लगा, तो एक दिन उन्होने कहा कि अब क्या करने का विचार है। मैंने अपना विचार बताया। वे कहने लगे जिस तरह पैसे का संग्रह बुरा है उसी तरह ज्ञान का केवल सग्रह भी बुरा है। अब तुम्हें सग्रह को छोडकर वितरण मे लगना चाहिए। अपने धर्म को देखना चाहिए। उनको इस बात का मुझ पर असर हुआ और मेरा वह प्रयत्न शिथिल पड गया। एक बार उन्होने मुझ से पूछा कि मेरा धर्म के सम्बन्ध मे क्या विचार है। सम्भवत. मेरे स्वतन्त्र विचारो और उनके फलस्वरूप आचरणो को पसन्द न करके उन्होने मुझ से यह प्रश्न किया था। मैंने कहा आप इसका स्पष्ट उत्तर चाहते हैं या बनावटी? उन्होने विश्वास दिलाया कि वे मेरे स्पष्ट उत्तर मे अधिक प्रसन्न होंगे। तब मैंने कहा कि मुझे मानवधर्म या इन्सानियत प्रिय है, इसके विपरीत मैं किसी भी बात को श्रद्धापूर्वक नही मान सकता। फिर उन्होंने पूछा कि तुम जैन धर्म को नही मानते हो क्या? मैंने कहा मुझे जैन धर्म से ही नही किसी भी धर्म से मोह नही है। जैन धर्म की अच्छी बातें मुझे उसी तरह मान्य हैं जैसे दूसरे धर्मों की अच्छी बातें। इस पर उन्होंने कहा कि बस अब मैं तुम्हें धर्म के सम्बन्ध में कभी कोई बात नही कहूगा। तुम अपनी राह चलने मे स्वतन्त्र हो। इसके बाद हम लोग मिलते रहे—कई बार बहुत से प्रसगो मे, पर कभी धर्म के विषय पर कोई बात नही हुई।
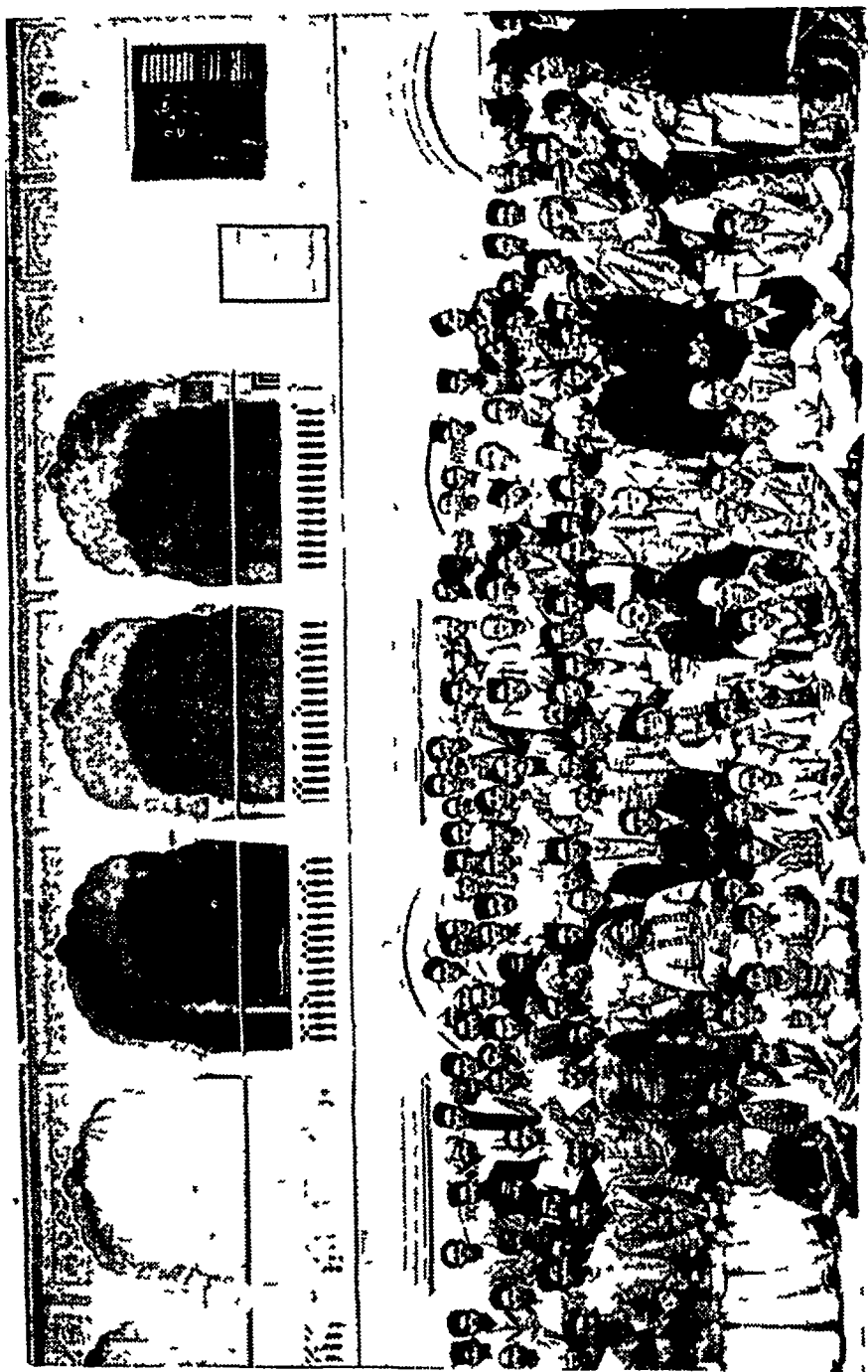
विदाई समारोह के अवसर पर (यही मास्टर साहब का एक मात्र चित्र है जो उन्होंने स्वय खिंचवाया था)

(४)

जब मास्टर साहब ने राज्य सेवा से विश्राम लिया तो हम लोगो ने उनके उपयुक्त ही विदा का आयोजन करना चाहा। सोचा कि इस आयोजन मे मास्टर साहब के वर्तमान तथा पुराने छात्रो का योग होना चाहिये। मास्टर साहब से जब यह कहा गया कि वे अपने पुराने छात्रो के नाम बताने मे हमारी मदद करें तो उन्होने स्पष्ट कह दिया कि इस बारे मे वे कुछ भी मदद नही कर सकेंगे। उन्होने यह भी कहा कि उनको अपने छात्रो से मिलने मे तभी खुशी होगी जब कि आजकल की पार्टियो की तरह उसमे रुपये का अपव्यय नही किया जाएगा। मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि वे जैसा चाहेगे वैसा ही होगा। उनके छात्रो का सहयोग पाने मे कई तरह के अनुभव हुए। खैर, लेकिन कोई ढाई वर्ष बाद हम लोग मास्टर साहब को विदापत्र और थैली भेंट कर पाए। थैली के सारे रुपये को मास्टर साहब ने तुरन्त ही साधनहीन छात्रो के उपयोग मे लगाने की घोषणा करदी। जीवन भर मे मास्टर साहब ने कभी अपना फोटो नही खिचवाया। इस अवसर पर सब लोगो की इच्छा थी कि उनका छात्रो के साथ फोटो अवश्य लिया जाना चाहिये। यह जिम्मेदारी मुझ पर पडी। मैंने जब बार-बार अनुरोध किया तो उन्होने इस शर्त पर फोटो मे शामिल होने की स्वीकृति दी कि उनका फोटो पुस्तकालय मे नही लगाया जायगा। जीवन मे उनका यही एक मात्र फोटो उनकी जानकारी और स्वीकृति से लिया गया था।

छात्रो को सबोधन करने का जब अवसर आया तो वे कुछ कह न सके। गद्गद से हो गए और हाथ जोडकर खडे रहे। उनका सदेश लिखित था। वह पढा गया। खेद है, वह सदेश सुरक्षित नही रखा जा सका। उन्होने उस सदेश मे छात्रो से यही आशा की कि वे परोपकारी बनें, जिस तरह दूसरो के सहयोग और सहायता से उनका जीवन बना है, उसी तरह उनके सहयोग और सहायता से दूसरों का जीवन बने। जीवन-निर्माण का यह क्रम चलता रहे। त्यागी और परोपकारी इस विभूति से और किसी सदेश की आशा भी नहीं की जा सकती थी।

(५)

मेरे जीवन मे मास्टर साहब की दयालुता और सहानुभूति का बहुत बडा योग है। इसलिए मास्टर साहब के सस्मरण मेरे जीवन के सस्मरण ही हो सकते हैं। मैं उनके बारे मे लिखते समय अपने आपको अलग नही करना चाहता, इसीलिए मैंने बार-बार आग्रह होने पर भी कुछ लिखने की बात को बराबर टाला,

पर आखिरी आग्रह को नही टाल सका, इसलिए कुछ बातें मैंने लिख दी है। मास्टर साहब मेरे लिए पितृ-स्वरूप थे। मैं उनसे डरता था। उनकी बात को टालना मेरे लिए मुश्किल था। उनकी धर्म और आचरण सम्बन्धी एक दो बातों से हीमेरे विचार नहीं मिलते थे। उनके बारे मे आज भी मुझे आग्रह है। उन्होंने मुझे उस आग्रह के रखने की स्वतत्रता दे दी थी, इसलिए वह आग्रह बराबर निभता आरहा है। मास्टर साहब के प्रति श्रद्धाजलि जब जब भी अवसर मिला है, मैंने अपने आसुओ से भेंट की है। यह लेख तो केवल आत्म-जीवनी सा है, जिसमे आत्म-दर्शन मात्र है। वे क्या थे यह बताना मेरे लिए कठिन है। उनकी साधना, तपस्या और त्याग सभी कुछ उनके सरल सौजन्य से मिले हुए थे। जिस तरह उन्होंने मेरे जीवन-निर्माण मे योग दिया है उस तरह, शायद उससे भी अधिक शक्ति और साधन जुटा कर उन्होने अन्य हजारो डगमगाते व्यक्तियों को, विशेषकर छात्रो को दृढता से आगे बढने का साहस दिया होगा। ऐसे मूक आचरण वाले लोग शताब्दियो मे विरले होते हैं। जयपुर और जयपुर निवासी दोनो उनका सम्पर्क पाकर धन्य हुए।

उन्होंने मुझे अपनी छत्र-छाया में रख लिया

(श्री रूपचन्द जैन)

मेरे पिताजी मुझे ११ वर्ष की अवस्था में एक अनाथ अवस्था मे छोड कर परलोक सिधारे थे। चार विधवाओं व एक छोटे भाई के परिवार का भार भी साथ ही छोडकर गये थे। आर्थिक स्थिति ऐसी भीषण थी कि मास्टर साहब जैसे व्यक्ति का समागम न होता तो शायद ही यह कुटुम्ब जीवित रह सकता। पिताजी की मृत्यु के चौथे रोज मास्टर साहब हमे सात्वना देने के लिए घर पधारे और करीब दो घण्टे मेरी ८० वर्ष की वृद्धा दादी से बातचीत करके उसके सन्तप्त हृदय को शान्ति दी। उन्होने उनके हृदय मे यह पूर्ण रूप से अङ्कित कर दिया कि हमारे बुरे दिन थोडे ही समय मे फिर जायेंगे। उन्होने उसी दिन से मुझे अपनी छत्रछाया मे रख लिया। मेरी छोटी अवस्था होने के कारण मुझे प्रात काल घर से ले जाकर स्कूल पहुचाना और वहां अध्यापकों के सुपुर्द करके आना यह उनका दैनिक कार्यक्रम बन गया। यह क्रम करीब तीन महीने तक जारी रहा। साथ मे मुझ जैसे और भी कई विद्यार्थियो को वे स्कूलो मे पहुचाते थे। स्कूल मे आने के बाद भी मेरे जैसे कई

जीवन की सफलता के लिये नैतिक उन्नति आवश्यक

(श्री राधेश्याम अग्रवाल)

स्वर्गीय मास्टर साहब श्री मोतीप्रसाद शर्मा समाज के उन महान् सदस्य आत्माओं में से एक थे जिन्होंने देश, समाज, जाति एवं मानव कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पित कर दिया था। उनका जीवन एक आदर्शमय जीवन था। उनके मानव जाति के कल्याण के लिए ही एक विशेष स्थान था और इसीलिये उन्होंने अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिए उस मार्ग को ग्रहण किया, जिसके द्वारा मानव जाति के कल्याण की सम्भावना है। यही कारण था कि उन्होंने अपना जीवन एक शिक्षक रूप में प्रारम्भ किया।

शिक्षक होना एक तो वैसे ही संसार के उन महान् साधनों में से है जिनसे मानव का कल्याण हो सकता है और फिर मास्टर साहब जैसे उच्च विचार वालों का शिक्षक होना स्वर्ण में सुगन्ध का काम करता है और इसी-लिये उनकी शिक्षण पद्धति एक विशेष प्रकार की थी। वे विद्यार्थी वर्ग को सदा पुस्तकों के ज्ञान के लिए ही प्रोत्साहित नहीं करते थे वरन् वे उनसे इस बात की आशा करते थे कि विद्यार्थी वर्ग पुस्तकों के ज्ञान के साथ ही जीवन

को उच्च बनाने के साधनो का ज्ञान प्राप्त करें और इसलिये आपने नैतिकता एवं आध्यात्मिकता पर विशेष जोर दिया।

माननीय मास्टर साहब ने इसी उत्तम कार्य मे अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया था। मेरा सम्पर्क उनसे मेरे बचपन से ही था और प्राय मैं उनका उनके अपूर्व कार्य के लिए निरन्तर स्मरण करता रहता हूँ। वे केवल अपने शिष्यो के सम्पर्क मे ही न आते थे बल्कि अन्य विद्यार्थियो से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। जहा कही भी उनके शिष्यो एव अन्य विद्यार्थियो से उनका मिलना होता, वे उनसे यही कहा करते थे कि जीवन को सफल बनाने के लिए नैतिक एव आध्यात्मिक उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। विद्यार्थियो पर उनके मधुर शब्दो का यहा तक प्रभाव पडता था कि कई नैतिकता से गिरे हुए विद्यार्थी भी थोडे ही काल में अपने आपको ऊचा उठाने मे सामर्थ्यवान होते थे।

मास्टर साहब धर्म से जैन थे किन्तु उनके हृदय मे धार्मिक सकुचितता नही थी। उन्हें अन्य धर्मों से भी उतना ही प्रेम था। जहाँ कही भी उनको तथ्य मिलता, वही से उसे ग्रहण करने की चेष्टा करते थे। सन्मति पुस्तकालय इसका सजीव प्रमाण है जहाँ पर उन्होने सब धर्मों की पुस्तको का सग्रह किया। उनका प्रश्न जो भी जिस धर्म का अनुयायी हो उससे यही रहता था कि तुमने आगे के लिए भी कुछ सग्रह किया है या नही।

सबके सहायक

(श्री सूर्यकान्त शर्मा)

सन् १९३६ के आसपास की बात है—मैं एक मित्र के साथ कुछ पुस्तको के लिए चिरस्मरणीय महानुभाव के पास उपस्थित हुआ। मुझको भय था कि मैं जमानत किससे दिलाऊगा—लेकिन वहा तो निवेदन करते ही काम बन गया। मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। कुछ समय बाद जब कि मैंने निरन्तर आवागमन से पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया तब एक दिन सकोच छोडकर यह पूछ ही लिया कि इस तरह बिना जानकारी के इतनी कीमत की पुस्तको का देना तो उचित नही है। तब आपने बडे प्रेम से बताया कि मुझको विद्यार्थियो से ऐसी आशा नही है कि वे चोर बनने की कोशिश मे होगे। यदि कोई पुस्तक गायब भी कर लेंगे तो भविष्य मे इस पुस्तकालय से वचित हो जावेंगे तथा बाद मे बडे होने पर अवश्य उनको विचार आवेगा। मैं यह सुनकर दग रह गया। निश्चय ही ऐसी विभूतियो से ही भारत की उन्नति हो सकती है।

गरीब विद्यार्थियो के सच्चे पिता

(श्री भवरलाल साह)

मास्टर साहब केवल एक पुस्तकालय के सस्थापक ही न थे, बल्कि जयपुर नगर के एक बहुत बडे मूक सेवक भी थे। उनका जीवन बडा उच्च एव सादा था। उनका हर एक पर ही अपनापन दिखलाई देता था। कोई यह नही कह सकता था कि किसी पर कम, किसी पर ज्यादा है। मुस्कान हमेशा उनके चेहरे पर चमकती रहती थी। शायद ही कोई रास्ता या गली बची हो जहा उनकी पुस्तकें नही पहुचती होगी। हमारी चौकडी की बकाया पुस्तकें लाने का कार्य कभी २ वे मुझे देते थे, जिसे मैं सहर्ष स्वीकार कर पुस्तकें वापिस लाता था। वे गरीब विद्यार्थियो के सच्चे पिता थे। उन्हें वे हर तरह से मदद पहुचाते थे, यहा तक कि इम्तिहान की फीस भी वे अपने पास से भर देते थे। आज हमे उनके स्थान का कोई पूरक नजर नहीं आता। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे और हमे उन जैसी सेवा-भावना।

साधु स्वभाव एवं परोपकारी

(श्री रघुनाथसिह)

स्वर्गवासी श्री मोतीलालजी एक बडे उच्च श्रेणी के परोपकारी व्यक्ति थे। जिन्होने सन्मति लाईब्रेरी के जरिये अपना समय जनता की सेवा मे बिताया। वे बडे सज्जन तथा पक्षपातरहित व्यक्ति थे। मेरी उनसे बहुत अरसे से वाकफियत थी। ऐसे निष्पक्ष साधु स्वभाव मनुष्य परोपकारी होते हैं। उनकी आत्मा को ईश्वर शाति प्रदान करें।

उनके पद चिन्हों पर चलने का बल उदित हो

(श्री तेजकरण डडिया)

मैं छठी श्रेणी मे पढता था और बहुत कमजोर था विशेष कर गणित मे, जिसके प्रति मेरी बडी अरुचि थी। परीक्षा का समय निकट था और पास होने की आशा नही थी। उन दिनो छठी श्रेणी की परीक्षा भी शिक्षा विभाग के परीक्षा बोर्ड द्वारा अपर प्राइमरी की परीक्षा के नाम से होती थी। श्री महावीर जी का मेला निकट था और परिवार के सब लोग मेले मे जारहे थे। इससे पहिले मैंने यह मेला कभी नही देखा था। जी मे आया फेल तो होना ही है क्यों न फिर मेले के सिर। परन्तु पिताजी नही मानते थे। अत मे मास्टर साहब से इस सम्बन्ध मे राय ली गई। उन्होने कहा मेले जिन्दगी भर देखते रहोगे, जीवन का एक वर्ष खराब होने पर फिर नहीं मिलेगा। मैंने साहस बटोरकर कहा 'पास होने की तो कोई आशा है नही, केवल आशा प्रार्थना पर हो सकती है'। उन्होंने कहा प्रार्थना यहां भी कर सकते हो और याद रखो—परमात्मा उनकी सहायता करता है जो स्वय की सहायता करते हैं। मुझे अपनी कमजोरी बताओ मैं उसे दूर करा दूगा'। मेरे लिए एक अध्यापक का प्रबध किया गया। मैंने भरसक परिश्रम किया परन्तु गणित का भय बना ही रहा। मास्टर साहब स्वय गणित के अध्यापक थे। परीक्षा के निकट उन्होंने अपने स्कूल के विद्यार्थियो को दो एक दिन के लिए विशेष रूप से पढ़ने के लिए बुलाया था। मुझे भी इनसे लाभ उठाने का सौभाग्य दिया गया। वर्षों तक परिश्रम से कई कापियो को रगने पर भी जो सैद्धातिक गुत्थिया मेरे मन मे उलझी पडी थी वे एक एक करके यहा सुलझने लगी। मुझे यहा नया प्रकाश मिला, आशा का सचार हुआ और कुछ कर सकने पर विश्वास। मैंने उसी वर्ष अपर प्राइमरी की परीक्षा पास की और वह भी गणित मे विशेष योग्यता के साथ। यह मेरे जीवन को बदलने वाला बिन्दु था, इसके पश्चात् मैंने कभी गणित मे कमजोरी का अनुभव नही किया।

जब कभी मास्टर साहब से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता था वह यह कहा करते थे—'दुनिया के इतने काम करते हो कुछ आत्मा का भी किया करो' एक बार इसी प्रकार की चर्चा चल रही थी कि एक सज्जन ने कहा कि वे अमुक अमुक पाठ किए बिना भोजन नही करते। उन्हें उत्तर मिला 'केवल इससे

आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता, तोता रटाई से कोई लाभ नहीं, आत्मा के कल्याण के लिए आवश्यकता है अध्ययन, मनन और पवित्र आचरण की।

बालक, युवा एव प्रौढ, सभी मास्टर साहब के पुस्तकालय से लाभ उठाते थे। पुस्तको का चुनाव, विशेषकर बालको और महिलाओ के लिए, मास्टर साहब स्वय किया करते थे। पुस्तको की सहायता आवश्यकता प्रतीत होने पर मास्टर साहब स्वय कर देते थे। एक बार मुझे अपनी पढाई सम्बन्धी एक पुस्तक की आवश्यकता पडी जो उस समय पुस्तकालय मे नही थी। दो तीन दिन के बाद मास्टर साहब मेरे घर पर स्वय आकर मेरी अनुपस्थिति मे वह पुस्तक पिताजी को दे गए।

श्री महावीर दिगम्बर जैन शिक्षा परिषद् के मास्टर साहब सदस्य थे। सदस्यता शुल्क का केवल १)रु० मासिक ही दिया करते थे परन्तु १) रु० मासिक इसके साथ गुप्त दान के तौर पर और दिया करते थे। वे स्वय इस रकम को जमा कराने मास के प्रथम सप्ताह मे स्कूल मे आया करते थे। वे कहते थे चदा देना मेरा काम है, तुमको या तुम्हारे आदमी को इसके लिए कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। यह मेरे लिए लाछन है कि चदा लिखने के बाद उसे नियमित समय पर न पहुचा सकू। जिस समय मुझे चदा नहीं देना होगा उससे पूर्व मैं स्वय इसकी सूचना भेज दूंगा।

पूज्य मास्टर साहब के निधन से हमने एक अमूल्य निधि को खो दिया। वे साधारण अध्यापक होते हुए भी एक आदर्श शिक्षक थे। वे बालको के मार्ग-दर्शक और चरित्र-निर्माता थे। वे बालको के भावी विकास के लिए एक दृढ आधार थे और इस प्रकार वे राष्ट्र के सच्चे निर्माता थे। वे अहकार की भावना से मुक्त रह कर त्याग और दान का अपना सामाजिक कर्तव्य समझते थे। ऐसे महान आत्मा के पद चिन्हो पर चल कर कोई भी व्यक्ति अपना जीवन सफल कर सकता है। भगवान से प्रार्थना है कि हममे उनके पद चिन्हो पर चलने का आत्मबल उदित हो।

उनमें देवत्व की आभा झलकने लग गई थी

(श्री वद्रीनारायण शर्मा)

मैं साहित्यरत्न की पुस्तको की तलाश मे भटकता हुआ इस नररत्न के सम्पर्क मे आगया था। परिचय होने के कुछ ही दिन पश्चात् मुझे मास्टर साहब के व्यक्तित्व मे कुछ आकर्पण सा प्रतीत होने लगा। एक दिन की वात है—मैंने देखा कि मास्टर साहब कुछ पूरिया अपने हाथ मे लिये हुए बैठे हैं और एक भिक्षुक उनके सामने बैठा हुआ कागज की पत्तल पर आम के आचार के साथ पूरिया खा रहा है। मास्टर साहब उस भिक्षुक को मेहमान की तरह सत्कार देकर पूरिया खिला रहे थे। यह घटना साधारण थी, किन्तु इस घटना मे मास्टर जी की मानवता स्पष्ट हो रही थी। जव भिक्षुक चला गया तो मैंने मास्टर जी को सम्वोधित करके कहा,—"आपके हृदय मे दया वहुत है मास्टर साहब।"

"यह कैसे ?" उन्होने पूछा।

"इस भिक्षुक के प्रति आपका व्यवहार देखकर तो मुझे आश्चर्य हुए विना नही रहा।"

"क्यो ?"

"आप कितना आदर कर रहे थे उस व्यक्ति का !"

"गरीब का आदर करना ही मनुष्य का ध्येय होना चाहिये। गरीब और अमीर दोनो मे एक ही आत्मा है फिर गरीव से घृणा क्यों ?"

"किन्तु एक वात है मास्टर साहव, इस दया से केवल भिक्षुको की सख्या वढती है। समाज का हट्टाकट्टा वर्ग मुफ्त की खाने का आदी हो जाता है। मेरे विचार से दान देना वुरा नही है किन्तु पात्र का विचार अवश्य रखना चाहिये।"

"इस सम्बन्ध मे मैं सतर्क हू। आपने ध्यान नही दिया यह व्यक्ति अत्यन्त वृद्ध एव लकवे मे आया हुआ था। मैं ऐसे वैसे व्यक्तियो को भिक्षा नही देता। वात सच तो यह है कि भिखारियो के प्रति मेरी सद्भावनायें कम हैं।"

"ऐसी वात है ?" मैंने आश्चर्य मिश्रित भाव से पूछा।

" हा, क्योकि इनमे सन्तोप एव सच्चापन वहुत ही कम होता है। एक दिन की वात है कि एक भिक्षुक मुझे मार्ग मे मिल गया। उसने कहा मैं दो दिन से भूखा हू। मुझे दया आगई। मैं कुछ पराठे वनाकर यहा पुस्तकालय मे ले आया और कुछ आचार का प्रवन्ध भी कर लिया। ६-७ पराठे थे। दो तो वह खा चुका था और शेप पराठे उसके समीप ही रखे थे। मुझे किसी कार्यवश नीचे जाना पडा और वह भिक्षुक यहा से वचे हुये पराठे लेकर चम्पत हो गया। मुझे उसकी इस प्रवृत्ति पर वहुत दुख हुआ। तव से मैंने यह नियम सा वना लिया है कि जव कभी किसी भिखारी को कुछ खिलाना अपने हाथ से खिलाना। आज भी मैं वैसा ही कर रहा था।

"मैंने समझा था कि आप भिखारियो को पालते हैं ?"

' ऐसी वात नही है। आपको शायद मालूम नही होगा कि पहले मैं कवूतरो को ज्वार डालता था, किन्तु एक दिन विचार हुआ कि इस प्रकार से ज्वार डालने से कोई शाश्वत उपकार नही होता। मैं कुछ दिनो पश्चात् इस निर्णय पर पहुचा कि कुछ उपयोगी पुस्तको का सग्रह किया जाय। वस, मैंने उस ज्वार के पैसे वचाकर कुछ पुस्तक खरीदना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप सन्मति पुस्तकालय वन गया।"

"यह कार्य तो वहुत ही परिश्रम एव सावना का है मास्टर साहव।"

"जैसा भी है आपके सामने है किन्तु मानव की मनोवृत्ति का आप इससे अन्दाजा लगाइये कि हम नि शुल्क पुस्तकें पढने के लिये देते हैं फिर भी वे ... कर जाना चाहते हैं। वहुत सी पुस्तकें तो वास्तव ... गये कुछ मनुष्य। अव तो मैं यह नियम वनाने ... पुस्तकें ले जाना चाहे वह १०) डिपोजिट ... । वन्द करदे तो उन रुपयो को वापस निक-

... र्पिक फीस ही क्यो नही लगा देते ?"

... अनुकूल नही पडती। अव तो मैं वृद्ध हो ... जाकर घर वैठे लोगो को पढने के लिये

दे आता था और एक सप्ताह के बाद वापस ले आता था। कार्य करने से होता है, भैयाजी। अच्छा, आपके लिये कौनसी पुस्तकें निकाल दू।" मास्टर साहब ने पूछा। मैंने कुछ पुस्तको के नाम बताये और मास्टर साहब ने उन पुस्तको को निकाल कर मुझे देदी। मैं जब पुस्तकें लेकर वहा से लौटा तो मुझे मार्ग में अनेक बार मास्टर साहब की बातो का ध्यान आया था। आज भी मैं सोचता हूं—मास्टर साहब की बातो मे कितना तथ्य था तथा ये बातें उनके चरित्र की उज्जवलता तथा कर्मठता की द्योतक थीं।

यह बात तो हुई मास्टर साहब के स्वभाव, कार्य एव वार्तालाप की, किन्तु एक बात जो मास्टर साहब मे देखने को मिली वह है मितव्ययता। मास्टर साहब वास्तविक अर्थ मे मितव्ययी थे। मास्टर साहब की मृत्यु के पश्चात् प० श्री प्रकाशजी शास्त्री ने एक दिन मुझे कुछ नई कैंचिया [शायद दो अथवा तीन थीं] निकाल कर दिखाते हुये कहा—मास्टर मोतीलालजी की मितव्ययता का पता आप इस बात से लगा सकते हैं कि ये कैंचिया न जाने कितने समय से इस आलमारी मे रखी हैं किन्तु मास्टर साहब ने मृत्यु पर्यन्त इनको नही निकाला, क्योंकि पुरानी कैंची थोडा बहुत काम अवश्य देती थी। प० श्रीप्रकाशजी शास्त्री ने मेरा ध्यान पुस्तकालय मे लगे बिजली के लट्टू की तरफ आकर्षित करके कहा—हालाकि यहा बिजली का लट्टू लग सकता था किन्तु मास्टर साहब लालटेन से ही काम निकाल लेते थे। लट्टू तो अब हम लोगो ने उनकी मृत्यु के पश्चात् अब लगाया है क्योंकि हम लालटेन के प्रकाश मे कार्य करने में कुछ कठिनता अनुभव करते हैं।

मास्टर साहब भावुक थे किन्तु उनकी भावुकता भी सृजनात्मक थी। वे मितव्ययी थे, किन्तु उनकी मितव्ययता भी विवेक पूर्वक थी। वे दृढ निश्चयी थे, कर्मठ थे, परोपकारी थे, गुरु थे, और थे मानव के सच्चे साथी और पथ प्रदर्शक। वे अपने जीवन काल में ही मानवता के स्तर से भी बहुत कुछ ऊचे उठ गये थे। उनमे देवत्व की आभा झलकने लग गई थी। मैं नम्रतापूर्वक उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

वे मर कर भी अमर हैं

(श्री इन्द्रलाल शास्त्री)

अगर मर कर भी अमर रहने वाले पुरुषो की गणना की जावे तो उसमे मास्टर मोतीलालजी चोमू वालो का नाम भी बडे गर्व से लिया जा सकता है। मास्टर साहव जब जयपुर राजकीय स्कूल मे अध्यापक थे, मैं तभी से जानता हू। वे अपने अध्यापन कार्य मे सदैव अपनी कर्तव्यपरायणता का निर्वाह करते रहे। उन्होने कभी यह नही समझा कि किसी भी तरह समय को पूरा करके वेतन ले लिया जाय। वे स्कूल के अतिरिक्त समय मे भी छात्रो को नि शुल्क अध्ययन कराया करते थे। जो असहाय विद्यार्थी होते थे उनकी पुस्तक, भोजन, वस्त्रादि की सहायता भी अपनी प्रेरणा द्वारा कही से करवा दिया करते थे। वास्तव मे वे उसी कोटि के अध्यापक थे जैसे कि प्राचीनकाल मे गुरु के रूप मे नि स्वार्थ शिक्षा-दीक्षा प्रदान करनेवाले महात्मा हुआ करते थे।

मास्टर साहव का जीवन विल्कुल सादा, परोपकारी और नि स्वार्थ था। सरकारी स्कूल मे अध्यापक कार्य छोडने के वाद भी वे सदैव ज्ञान प्रचार मे ही लगे रहे और मरते दम तक उन्होने यही काम किया। असहाय छात्रो को सहायता दिला कर ज्ञान प्राप्त कराना उनका प्रधान कार्य रहा, तो घर घर जाकर स्वाध्यायार्थ पुस्तकें देना भी उनकी प्रधान प्रवृत्ति थी। वे स्वाध्यायार्थ पुस्तकें देकर जव वापस लाते तो पूछते कि इस पुस्तक मे क्या २ वात पढी और फिर दूसरी पुस्तक दे देते। वे पुस्तकें घर देने को भी जाते थे और वापस लेने को भी स्वय ही चले जाते थे। ऐसा निरभिमानी ज्ञान प्रचारक और लगन वाला दूसरा व्यक्ति मैंने अपनी आयु मे नही देखा।

वे घर जाकर अपने पुत्र के पास भोजन कर आते थे। वाकी सदैव अपने पुस्तकालय मे ही सारा समय व्यतीत करते थे। घर मे वे जल मे कमलवत् अलिप्त से ही रहते थे। वस, उनका एक ही ध्येय था कि वडों-बूढ़ो, बालको, युवको—सव मे ज्ञान का प्रचार करना और वे अपने उस सकल्पित उद्देश्य मे सफल हुये, इसीलिए कहना होता है कि वे मरकर भी अमर ही हैं।

मास्टर साहब के कुछ संस्मरण

(श्री ज्ञानचन्द्र चौरडिया)

१९३५-३६ की बात है। मैं सुबोध स्कूल मे छठी कक्षा मे उत्तीर्ण हुआ। सुबोध स्कूल मे आगे अध्ययन की सुविधा न होने के कारण मुझे सातवी कक्षा मे भरती होने के लिये दूसरे स्कूल मे भरती होना था। छठी कक्षा मे मेरा ऐच्छिक विषय विज्ञान था। मेरे पिताजी मास्टरजी से भली भाति परिचित थे। वे मुझे वाणिज्य विषय दिलाना चाहते थे, उसका मुख्य कारण मास्टर साहब का इस विषय का दरबार हाई स्कूल मे अध्यापक होना था। मेरे पिताजी मुझे मास्टर साहब के पास लेगये और उनसे वाणिज्य कक्षा मे भरती करने के लिये कहा। उन्होने प्रत्युत्तर मे पिताजी से कहा, "ज्ञान को सस्कृत विषय दिला दो।" मै स्वय विज्ञान अथवा वाणिज्य विषय लेना चाहता था। मास्टर साहब ने मुझे समझाया कि जैन ग्रन्थो के अध्ययन मे सस्कृत आवश्यक है—सस्कृत का विषय ही लो। वाणिज्य विषय की तुम्हें आवश्यकता नही क्योकि तुम स्वय बनिये हो। मास्टर साहब सस्कृत के अध्ययन को कितना आवश्यक मानते थे—इसका यह परिचायक है।

अब मैं मास्टर साहब से भलीभाति परिचित हो गया था। वे मुझे बार-बार पुस्तकें पढ़ने व अध्ययन करने की प्रेरणा व प्रोत्साहन देते रहते। मैं मास्टर साहब द्वारा सचालित सन्मति पुस्तकालय मे पुस्तकें लेने जाता रहता था। मास्टर साहब मुझे उपन्यास व कहानी किस्से की किताबो को पढने की मनाई करते रहते और जब वे स्वय होते तो मुझे उपन्यास नही लेजाने देते। वे सदा मुझे जैन धर्म सम्बन्धी तथा साहित्यिक पुस्तकें ही दिया करते और जो पुस्तक मुझे देते उसके बारे में मुझ से पूरी जानकारी प्राप्त करते कि मैंने पुस्तको को पढा या नही।

मास्टर साहब मे कितना विद्या प्रेम था और कैसे सस्कार वे अपने शिष्यो पर डालते थे !

मास्टर साहब में सतो के सत्सग की बडी लगन थी। उन्हें पता होना चाहिये कि कोई सत पधारे हैं—फिर मास्टर साहब उनके व्याख्यान मे न हो, उनके पास न गये हो—यह कैसे हो सकता था ? सतो का व्याख्यान तो वे सुनते ही थे, हाथ मे उनके पास एक सजिल्द नोट बुक रहती थी जिसमे वे सतो द्वारा कहे हुए सुन्दर व श्रेष्ठ विचारो, कवित्तो आदि का सकलन कर लिया करते थे।

मैं भी जैन मुनियो के दर्शन व व्याख्यान मे जाया करता था। यदि किसी दिन कारणवश नही जा पाता तो मास्टर साहब फौरन टोकते थे कि क्यो नही आये और मुझे अपनी कापी मे से उनके उपदेश की महत्वपूर्ण बातें बताते थे।

मास्टर साहब मे कितनी गुणग्राहकता, सरलता व प्रेम था—इसका यह द्योतक है।

परोपकारी जीवन

(श्री मोहनलाल काला)

पूज्य श्री मास्टर मोतीलालजी मे विद्याध्ययन करने का सौभाग्य मुझे भी मिला था। मास्टरजी का जीवन एक आदर्श जीवन था। उन्होने अपने जीवन को परोपकारार्थ ही अर्पण कर रखा था। वे अपनी आय का एक बहुत मामूली हिस्सा अपने खर्चे के लिए रख कर बाकी बची हुई आय गरीब छात्रो की पुस्तकों आदि मे लगाया करते थे। यही नहीं, उन्होने असहाय विद्यार्थियों को दूसरे लोगो से लाकर छात्रवृत्तिया दीं व विद्याध्ययन कराया। इसकी एक खूबी यह थी कि न तो देने वालो को यह मालूम होता था कि मैं किसको दे रहा हू। और न छात्र को यह मालूम होता था कि मुझको किससे सहायता मिल रही है। वे अपना विशेष समय सन्मति पुस्तकालय में लगाते थे और पुस्तकालय का हर मनुष्य उपयोग कर सके, इसलिए वे घरो पर जाकर लोगो को पुस्तकें देते और वापस लाते थे, अथवा लोगो को पुस्तकें पढने के लिए बाध्य करते थे। उन जैसे महानुभाव की क्षति से समाज का असहनीय नुकसान हुआ है।

उनमें देवत्व की आभा झलकने लग गई थी

(श्री बद्रीनारायण शर्मा)

मैं साहित्यरत्न की पुस्तको की तलाश मे भटकता हुआ इस नररत्न के सम्पर्क मे आगया था। परिचय होने के कुछ ही दिन पश्चात् मुझे मास्टर साहव के व्यक्तित्व मे कुछ आकर्षण सा प्रतीत होने लगा। एक दिन की बात है—मैंने देखा कि मास्टर साहव कुछ पूरिया अपने हाथ मे लिये हुए बैठे हैं और एक भिक्षुक उनके सामने बैठा हुआ कागज की पत्तल पर आम के आचार के साथ पूरिया खा रहा है। मास्टर साहव उस भिक्षुक को मेहमान की तरह सत्कार देकर पूरिया खिला रहे थे। यह घटना साधारण थी, किन्तु इस घटना मे मास्टर जी की मानवता स्पष्ट हो रही थी। जब भिक्षुक चला गया तो मैंने मास्टर जी को सम्वोधित करके कहा,—"आपके हृदय मे दया वहुत है मास्टर साहव।"

"यह कैसे ?" उन्होने पूछा।

"इस भिक्षुक के प्रति आपका व्यवहार देखकर तो मुझे आश्चर्य हुए विना नही रहा।"

"क्यो ?"

"आप कितना आदर कर रहे थे उस व्यक्ति का !"

"गरीव का आदर करना ही मनुष्य का ध्येय होना चाहिये। गरीब और अमीर दोनो मे एक ही आत्मा है फिर गरीव से घृणा क्यो ?"

"किन्तु एक बात है मास्टर साहव, इस दया से केवल भिक्षुको की सख्या वढती है। समाज का हट्टाकट्टा वर्ग मुफ्त की खाने का आदी हो जाता है। मेरे विचार से दान देना बुरा नही है किन्तु पात्र का विचार अवश्य रखना चाहिये।"

"इस सम्बन्ध मे मैं सतर्क हू। आपने ध्यान नही दिया यह व्यक्ति अत्यन्त वृद्ध एव लकवे मे आया हुआ था। मैं ऐसे वैसे व्यक्तियो को भिक्षा नही देता। बात सच तो यह है कि भिखारियो के प्रति मेरी सद्भावनायें कम हैं।"

"ऐसी बात है ?" मैंने आश्चर्य मिश्रित भाव से पूछा।

मैं भी जैन मुनियो के दर्शन व व्याख्यान मे जाया करता था। यदि किसी दिन कारणवश नही जा पाता तो मास्टर साहब फौरन टोकते थे कि क्यो नही आये और मुझे अपनी कापी मे से उनके उपदेश की महत्वपूर्ण बाते बताते थे।

मास्टर साहब मे कितनी गुणग्राहकता, सरलता व प्रेम था—इसका यह द्योतक है।

परोपकारी जीवन

(श्री मोहनलाल काला)

पूज्य श्री मास्टर मोतीलालजी से विद्याध्ययन करने का सौभाग्य मुझे भी मिला था। मास्टरजी का जीवन एक आदर्श जीवन था। उन्होंने अपने जीवन को परोपकारार्थ ही अर्पण कर रखा था। वे अपनी आय का एक बहुत मामूली हिस्सा अपने खर्चे के लिए रख कर बाकी बची हुई आय गरीब छात्रो की पुस्तकों आदि मे लगाया करते थे। यही नही, उन्होने असहाय विद्यार्थियो को दूसरे लोगो से लाकर छात्रवृत्तिया दी व विद्याध्ययन कराया। इनकी एक खूबी यह थी कि न तो देने वालो को यह मालूम होता था कि मैं किसको दे रहा हू। और न छात्र को यह मालूम होता था कि मुझको किससे सहायता मिल रही है। वे अपना विशेष समय सन्मति पुस्तकालय मे लगाते थे और पुस्तकालय का हर मनुष्य उपयोग कर सके, इसलिए वे घरो पर जाकर लोगो को पुस्तकें देते और वापस लाते थे, अथवा लोगो को पुस्तकें पढने के लिए बाध्य करते थे। उन जैसे महानुभाव की क्षति से समाज का असहनीय नुकसान हुआ है।

स्वर्गवासी श्री मोतीलालजी मास्टर

(श्री जयदेवसिंह)

जयपुर नगर के शिक्षित समुदाय का कोई विरला ही व्यक्ति ऐसा होगा कि जो इस परोपकारी, उदार और शिक्षा के प्रसार के प्रेमी इस महान् आत्मा के हालात से परिचित न हो। सैंकडो नही हजारो नागरिक जो इस समय इस नगर के प्रमुख कार्यकर्ता हैं मास्टर साहब से शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं और अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाने मे सफल हुए हैं।

मेरा स्वय पहले पहल मास्टर साहब से सभा सोसाइटियो मे अब से लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व मिलना हुआ और दिन दिन मेरी और उनकी मैत्री बढती गई। मास्टर साहब ने अपने स्वभाव और प्रकृति के अनुसार मुझे कई बार ऐसा शुभ अवसर दिया जिससे किसी होनहार योग्य दीन विद्यार्थी की मैं कुछ आर्थिक सहायता कर सका अथवा दूसरो से करा सका। उनमे से दजनो व्यक्ति अब बडी अच्छी दशा मे हैं और मास्टर साहब की सहायता और परामर्श के गुण गा रहे हैं।

मास्टर साहब ने लोगो मे अच्छी पुस्तको के पढाने लिए सन्मति पुस्तकालय स्थापित किया जिसमे हर प्रकार के उत्तम २ ग्रन्थ हैं। मास्टर साहब स्वय लोगो के घर जा कर किताब दे आते और स्वय ही उसके पास से पुस्तकें ले भी आते थे।

देशभक्ति की लगन भी मास्टर साहब मे पर्याप्त मात्रा मे थी, खादी पहनते थे और उसका प्रचार करते थे।

मैं मास्टर साहब के काम करने की शैली की बहुत सराहना करता रहता हू। बिना किसी आडम्बर और दिखावे के वह ठोस काम, विद्या की वृद्धि और अविद्या के नाश का, कर रहे थे जो दूसरो के लिए उदाहरण का काम दे सकता है।

ऐसे महान् व्यक्ति की इस नगर के लोग जितनी भी प्रशसा करें कम है। मुझे लगता है कि उनके स्वर्गवास द्वारा रिक्त स्थान शीघ्र ही नही भरा जा सकेगा। जो कुछ उन्होने नवयुवको के चरित्र बल को बढाने के लिए तथा धार्मिक तत्वो की जानकारी प्राप्त कराने और उसी के अनुकूल दिनचर्या बनाने मे किया है, उसके कारण वे सदा याद किए जावेंगे।

अनेक जन्मों के पुण्य कर्मो का विशाल संचय उनमें था ।

(श्री माधोलाल माथुर)

सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा का परम धन्यवाद है कि अपनी वाणी पवित्र करने के लिये सत श्रेष्ठ श्री मोतीलालजी जैन के सम्बन्ध मे दो शब्द प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ। बाल्यावस्था ही से उनका जीवन पवित्र और निष्कलक रहा। दरवार हाई स्कूल जयपुर मे अध्यापक का कार्य उत्तमता से सम्पन्न करते हुए सन् १९३७ ई० तक वे अपने छात्रो मे धार्मिक सस्कार का भी सचार करते रहे, तत्पश्चात वारह वर्ष तक पैन्शन पाई। उनका चरित्र जैसा परोपकारमय था वैसा किसी विरले का ही होगा। खाते-पहनते अपने से विशेष आवश्यकता वाले की खोज करके उसको पहिले खिलाना, पहनाना उनका स्वाभाविक नित्य कर्म था। सैंकडो ही विद्यार्थियो को विद्यादान का प्रवन्ध करके और सैंकडो ही रोगियों की तन, धन, और औषधि से सेवा करके जीवन का सुधार कर दिया। उनका परोपकार किसी देश अथवा जाति तक सीमित नही था वल्कि उनके विशाल हृदय मे विश्व-कल्याण का स्रोत सर्वदा प्रवाहित रहता था। उन्होंने जो पुस्तकालय चालीस हजार पुस्तको का जयपुर में स्थापित किया है, वह सव प्रकार की अनूठी पुस्तको का सग्रह है और हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब ही धार्मिक मतो की उत्तम २ पुस्तकें यहा लभ्य हैं। उनके दर्शन मात्र से यह प्रतीत होता था कि उनमें कई जन्मों के पुण्य कर्मों का विशाल सचय था। मुझ दीन पर जो उनका स्नेह तथा कृपा दृष्टि थी उसको स्मरण करके हृदय से यही अभिलाषा उठती हैं कि आपकी आत्मा अनन्त शान्ति को प्राप्त हो और अपनी दिव्य शक्ति द्वारा अनेक जीवो को सर्वदा शान्ति प्रदान करती रहे।

जातीयता के मद से कोसों दूर

(श्री सनतकुमार बिलाला)

स्वर्गीय मास्टर साहब मोतीलालजी सघी का नाम जयपुर का कौन व्यक्ति है जो नही जानता? उनका लगाया हुआ श्री सन्मति पुस्तकालय का पौधा आज भी जयपुर समाज मे वट वृक्ष की तरह फैल कर ज्ञान का प्रसार कर रहा है। उन्होंने अपने जीवन मे उक्त सस्था को उन्नति के शिखर पर पहुचाने का पवित्र ध्येय रक्खा और वे उसमें पूर्ण रूप से सफल हुए।

स्वर्गीय मास्टर साहब सचमुच में विद्यार्थियो के प्राण थे। उनके नैतिक स्तर को ऊचा उठाने के लिये उनके हृदय मे बहुत दर्द था और इसके लिये वे भरसक प्रयत्न करते रहे। इस दिशा मे कार्य करते हुए वे कभी निराश नही हुए। उनका विश्वास था कि मेरे कहने का यदि शताश भी किसी विद्यार्थी नवयुवक पर असर हुआ तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी।

उनके पढाये हुए सज्जन जयपुर मे ही नही अपितु इतर स्थानों मे भी अनेक प्रतिष्ठित पदो पर कार्य कर रहे हैं। वे सब लोग मास्टर साहब मे पूर्ण श्रद्धा रखते थे। जब कभी उनका किसी कार्यवश उनके यहाँ पदार्पण हो जाता था वे लोग अपने आप को कृत-कृत्य समझते थे।

वे जातीयता के मद से कोसों दूर थे। किसी भी जाति के असमर्थ छात्र को यदि अध्ययन के लिये पुस्तको की आवश्यकता पडती तो वह नि सकोच होकर मास्टर साहब के पास पहुच जाता था और वे तुरन्त उसकी सहायता कर दिया करते थे।

आध्यात्मिक भजनों के सग्रह का भी उनको बहुत शौक था। जहा कही उन्हें इस प्रकार के भजन देखने को मिलते वे तुरन्त अपनी कापी में नोट कर लिया करते थे और उन भजनों का मजा कभी २ हम लोगों को भी चखा दिया करते।

स्वर्गीय मास्टर साहब सादगी के प्रतिबिम्ब थे और नियम से खादी का ही उपयोग किया करते थे। उनका चेहरा इतना सौम्य था कि क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी उनके सन्मुख आने पर शांत हो जाता था। अनेक बार इन पक्तियो के लेखक को भी श्रीमान् मास्टर साहब से साक्षात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनके गुणो का भी उस पर पर्याप्त असर हुआ जिसके लिये वह स्वर्गीय आत्मा

का अत्यन्त ऋणी है। ऐसे महान् व्यक्ति का ससार से उठ जाना सचमुच मे हमारे लिये बडे दु ख की बात है। यदि वास्तव मे हमे उनकी स्वर्गीय आत्मा को शाति पहुचाना है तो उनकी स्थापित की हुई श्री सन्मति पुस्तकालय सस्था की उन्नति मे पूर्ण रूप से सहयोग देना चाहिये।

जो भी उनसे मिला प्रभावित हुए बिना नहीं रहा

(श्री नन्दलाल जैन)

उदात्त चेता, विद्या व्यसनी, सर्वदा कर्मानुष्ठान मे सलग्न, धर्म प्राण, छात्र हितैषी मास्टर मोतीलालजी का आदर्श जीवन हमारे मन मे देवत्व का भान कराता है। जनता को जनार्दन के रूप मे मानकर उसकी सेवा मे परायण रहना ही उनका नित्य नियम था। अभिमान तो उनमें नाममात्र भी न था। उनसे जो भी मिला वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सका। विद्यार्थियो के लिये तो सर्वस्व थे। उनका सन्मति पुस्तकालय उनके विद्याप्रेम का प्रतीक है। वृद्धावस्था मे भी वे अहर्निश कार्य सलग्न ही रहते थे। उनकी सदाशयता, विज्ञापन रहित कार्यपरता निश्चय ही अनुकरणीय है और यही उनकी वास्तविक स्तुति अथवा श्रद्धाजलि है।

स्वाध्याय, शिक्षण और परोपकार की साक्षात् मूर्ति

(श्री रामकृष्ण गुप्त)

मास्टर साहब एक असाधारण व्यक्ति थे। सरल व सीधा स्वभाव था। आडम्बर विहीन महापुरुष, सदा पर उपकार मे ही लगे रहते थे। स्कूल से विश्रामवृत्ति मिलने पर जब देखें तभी वे पुस्तकालय मे बैठे हुए या तो पाठको को पुस्तकें दे रहे या ले रहें हैं या प्रवचन चल रहा है या पुस्तको पर गत्ता चढाया जा रहा है। इतना वृद्ध व्यक्ति अपने शरीर के लिए कुछ न करे,

जो कुछ करे जनता के लिए, क्या यह साधारण बात हैं ? और तो और, मास्टरजी सध्या का भोजन भी १०-१५ मिनट मे ही सूर्य अस्त होते होते करके पीछे शौच को जाते थे ताकि जनता की सेवा में कमी न पड जाय।

मास्टरजी अपनी वृत्ति मे से आधी तो पुस्तकालय अथवा विद्यार्थियों के काम मे लगाते थे पर इस कार्य के लिए भीख मागने मे आपको सकोच जरा भी न था। किसी ने आज मासिक चन्दा न दिया तो कल उसके पास जाने में भी उनको हिचक न होती थी तथा देने वालो के लिए वे सदा बडे सम्मान के शब्द काम मे लाते थे।

इसके अतिरिक्त मास्टरजी स्वय तो स्वाध्याय, शिक्षण, परोपकार की साक्षात् मूर्ति थे ही पर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो दो चार घण्टे उनके पास बैठा हो और उनके चरित्र की छाप उस पर न पडी हो ?

मास्टरजी ने पुस्तकालय के द्वारा शिक्षा प्रसार के साथ-साथ अनेक योग्य विद्यार्थियो को अन्य ऊचे दर्जे की शिक्षा बाहर भेजकर दिलवाई तथा सही मार्ग दर्शन कराया। उस महापुरुष का उपदेश था कि राम-राम कहने से राम नहीं मिलने वाला है जब तक कि राम के गुणों को हम अपने में नहीं उतारलें। मास्टरजी ने ऐसा ही कर दिखाया। अपने धर्म (दिगम्बर जैन) के पूर्ण रूप से अनुयायी होने पर भी उन्हें अन्य धर्मों के महापुरुषो के जीवन से मिलने वाली शिक्षा को प्राप्त करने मे सदा प्रसन्नता रहती थी।

मुझे तो याद नहीं कि कभी उन्होने भाषण दिया हो, केवल पारस्परिक वार्तालाप के अतिरिक्त, पर उनकी सौम्य मूर्ति ही मौन व्याख्यान बन उपस्थित महानुभावों के हृदय मे प्रवेश कर जाती थी।

जो पवित्र मार्ग दर्शन उस महान् पुरुष ने जनता को दिया है उसके लिए हम कुछ भी कहने सुनने मे असमर्थ हैं, केवल ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वे उस महान् आत्मा को अमर शान्ति प्रदान करें।

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचरहिं ते-नर न घनेरें"।

(श्री मिलापचन्द जैन)

स्वर्गीय मास्टर साहब मोतीलालजी सघी उन श्रद्धेय महापुरुषो मे से थे जो जीवन का महत्व केवल मच पर खडे होकर वडे-वडे व्याख्यान देने मे नही अपितु जीवन को विशुद्ध तथा निर्मल वनाकर जनता जनार्दन के सन्मुख महान् आदर्श उपस्थित करने मे समझने थे। वस्तुत कहना जितना सरल है, करना उससे हजारो गुणा कठिन होता है। कहने वाले स्वप्न लोक मे विचरते हैं जबकि करने वाले को कार्य क्षेत्र मे जुटना पडता है। कहने वाले केवल अमृत की सी घूट पीना चाहते हैं जबकि करने वाले को जहर का प्याला पीने के लिए उद्यत होना पडता है। "दिया तले अधेरा" वाली कहावत केवल व्याख्यान देने वालो के जीवन मे घटित होती है जबकि करने वाले समुद्री टीलो पर बने हुए उन प्रकाश स्तम्भो के सदृश होते हैं जो अपने अलौकिक प्रकाश से असख्य पथिकों का दिशा-निर्देश कर देते हैं। मास्टर साहब भी ऐसे ही एक अलौकिक प्रकाश स्तम्भ थे।

मास्टर साहव वहुत शात-स्वभावी थे। आप धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यशील प्राणी थे। वे समाज के नि स्वार्थ मूक सेवक थे। वे सरलता और सादगी के साकार उदाहरण थे। वे शुद्ध खादी का उपयोग करते थे और वह भी वहुत मोटी होती थी।

उनकी ज्ञान पिपासा वडी वलवती थी। श्रेष्ठ पुस्तको का अध्ययन एव मनन करना वे अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। वे आम जनता मे विशेषत विद्यार्थियो मे विद्यानुराग पैदा करते थे। ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार उनके जीवन के मूल मन्त्र थे। उनकी जैन धर्म मे पूर्ण निष्ठा थी फिर भी वे "वालादपि सुभाषित ग्राह्य" के पूर्णत समर्थक थे। वे प्रत्येक धर्म के विशेषज्ञो की टोह मे रहते थे और समय निकालकर उनके उपदेशामृत का लाभ उठाते थे। उनकी कुछ चुनी हुई पुस्तकें होती थीं जिनको पढने के लिए वे योग्य व्यक्तियो को प्रोत्साहित किया करते थे।

उनका जन्म परोपकार के लिए ही हुआ था ।

(श्री गेंदीलाल गंगवाल)

स्वर्गीय मास्टर साहब मोतीलालजी सघी जयपुर की जनता के सच्चे सेवक थे और निरन्तर परोपकार के कार्य मे तन, मन, धन से सलग्न रहते थे । उनके लिए 'परोपकाराय सता विभूतय' तथा 'उदार चरितानातु वसुधैं कुटुम्बकम्' उक्तिया चरितार्थ होती हैं । उनका जन्म परोपकार के लिए ही हुआ था ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी । वे उन महान् नररत्नो मे से थे जो विषय वासनाओ मे लिप्त न होकर अपने जन्म को सफल बनाने की चेष्टा करते है । जैन कुल मे उत्पन्न होकर वे जयपुर के सारे जैन समाज की एक विभूति थे जिनकी सदैव ऐसी भावना रहती थी कि अखिल विश्व का कल्याण हो, भूले भटके लोग यथार्थ मार्ग का अनुसरण करें, ससार मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो, ज्ञान का प्रसार हो तथा दुखित जीवो को सुख की प्राप्ति हो ।

स्वार्थपरायणता, ख्याति-लाभ, पूजा तथा ढोग से वे सदा कोसो दूर भागते थे । मेरे विचार से वे आदर्श गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते हुए आज-कल के त्यागी-तपस्वियो से भी बढ़कर थे । आत्मोन्नति तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने का वे अटूट प्रयास करते थे । यद्यपि वे परम श्रद्धालु जैन धर्मावलम्बी थे किन्तु सर्व धर्मों के प्रति आदर रखते हुए जहा कही कोई उत्तम बात मिलती थी उसे ग्रहण करने मे सकोच नही करते थे । कबीरजी, सूरदासजी, तुलसीदासजी, सुन्दरदासजी, दौलतरामजी, बुधजनजी, भूधरदासजी, भैया भगवतीदासजी, द्यानतरामजी आदि सत कवियो के उत्तमोत्तम पद्यो को अपनी एक कापी मे नोट कर लेते थे और उनको कन्ठस्थ करने की कोशिश करते थे तथा दूसरो को भी उनका आध्यात्मिक रस चखाते रहते थे । एक समय की बात है कि वे किसी काम के लिए एक दिन मेरे मकान पर पधारे थे । उस समय मैं किसी अत्यन्त आवश्यकीय कार्य के लिए अपने कार्यालय जाने की शीघ्रता कर रहा था अत' मास्टर साहब से उनके काम की बात-चीत करने के पश्चात् मैंने आफिस जाने की आज्ञा चाही तो उन्होने मुझे दो चार मिनिट और ठहरने के लिए कहा और एक उच्चकोटि का आध्यात्मिक रस का एक भजन सुनाया जिससे मेरी आत्मा को बहुत शान्ति मिली । ऐसा करके उठ खडे हुए और मुझे आफिस जाने को कहा । वे भारतवर्षीय जैन शिक्षा

प्रचारक समिति के एक मुख्य सदस्य थे और राजस्थान के कर्मवीर प्रख्यात नेता प० अर्जुनलालजी सेठी के खास मित्रो मे से एक थे। जब तक उनके विचार सेठी जी से मिलते रहे उन्होंने उनसे हार्दिक सहयोग किया। भारत-वर्षीय जैन शिक्षा प्रचारक समिति के अधीनस्थ पाठशालाओ मे वे प्राय गणित के परीक्षक नियुक्त होते थे।

मास्टर साहब से मेरा परिचय सन् १९०७ से है जब मैं श्रीवर्द्धमान विद्यालय का विद्यार्थी था। मुझे उनकी सबसे बडी विशेषता लगती थी— मोटा खाना, मोटा पहनना और अल्प द्रव्य से दूसरों को अधिक से अधिक लाभ पहुचाना। वे अत्यन्त स्वच्छ हृदय के व्यक्ति थे और किसी से उपकार का बदला नही चाहते थे।

वे कठोर तपस्वी, त्यागी और मूक सेवक थे

(श्री सुभद्र कुमार पाटनी)

मेरे दादा चन्द्रलालजी बडे मन्दिर मे शास्त्र प्रवचन किया करते थे। प्रति दिवस वे मुझको साथ ले जाते थे। प्रवचन की समाप्ति के बाद वे शका समाधान के लिए प्रश्न आमन्त्रित करते। उस समय शास्त्र सभा मे एक सज्जन खम्बे के सहारे प्रतिदिन गर्दन झुकाये मौन रूप से शास्त्र सुना करते और प्रश्नोत्तर के समय अनेक प्रश्नो का समाधान चाहते। दादाजी ने मुझको बतलाया था कि यह 'मास्टर साहब' हैं। बचपन की वह पहली स्मृति स्थान कर गई और तभी से उनके प्रति आदर व श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

मुझे बचपन की याद है वही 'मास्टर साहब' घर पर कभी कभी आते और चौक मे धीरे से 'कपूरजी' कह कर पुकारते, और मेरे पिताजी बडी श्रद्धापूर्वक नीचे उतर कर उनका स्वागत करते। वे मेरे पिताजी व माताजी के लिए बहुत सी पुस्तकें लाते और उनके बारे में कुछ समझाकर छोड जाते व पहले वाली पुस्तकें वापिस ले जाते। शनै शनै मैं उनके सम्पर्क मे आने लगा। जब मै स्कूल जाने लगा तब वे सदा मेरी पढाई-लिखाई के बारे मे पूछा करते। लाईब्रेरी मे ले जाते, वहा से पुस्तकें छाट कर मुझको पढने के लिए देते। अधिकतर 'ब्रह्मचर्य' 'धार्मिक विषयों' तथा 'महान् व्यक्तियो की जीवनी' ही देते और कभी मैं उपन्यास माग बैठता तो नाराज हो जाते। पढने के

बाद जब पुस्तकें वापस करने जाता तो उन पर प्रश्न पूछते जिससे वे जान लेते कि पुस्तकें मैंने पढी या नही। उनकी इस आदत से डर लगता था और मैं जब तक पुस्तक अच्छी तरह नही पढ लेता, लौटाने की हिम्मत नही करता था।

पिछले वर्षों पढाई समाप्त कर लेने के बाद जब मैं काम काज मे लग गया था तब मिलने पर सदा पूछा करते कि धर्म के प्रति रुचि है या नही, नित्य नियम करता है या नही, मन्दिर जाता है या नही। उनको यह सुनकर बडा दु ख होता कि मैं कुछ नही करता और सदा उपदेश दिया करते कि 'आत्मा की शांति' के लिए यह करना बहुत आवश्यक है। रास्ते मे खडे घन्टो समझाया करते कि 'आत्मा का स्वरूप' क्या है, 'तुम क्या हो' 'सयम', 'नित्य नियम' और आराधना का कितना प्रभाव है। अब यह सोच कर दुख होता है कि यह सब समझाने वाले हितैषी नही रहे।

एक बार मैंने मास्टर साहब से निवेदन किया कि लाइब्रेरी की बहुत सी पुस्तकें लोगो के पास रह जाती हैं और वे स्वय उन्हे लौटाने की चिन्ता नही करते, आप स्वय इस अवस्था मे पुस्तकें पहुचाने व लाने का परिश्रम करते हैं इसके बजाय एक चपरासी रख कर लोगों से पुस्तकें वापिस मगवाने की व्यवस्था क्यो नही कर लेते। इसका उन्होने बडा सुन्दर उत्तर दिया, जिसे सुनकर मैं चकित रह गया। उन्होने कहा–'चपरासी के मासिक वेतन से अधिक मूल्य की पुस्तकें लोगो के पास नही रह जाती। मेरी पुस्तकें लोग बेचेंगे नही क्योकि उन्हे उससे विशेष लाभ नही होगा। पुस्तकें उनके पास रह भी जायेंगी तो कभी कोई तो उन्हें उठाकर पढ ही लेगा और उनसे उसका कल्याण होगा''। इस घटना से उनकी उच्च आदर्श और सद्भावना का परिचय मिलता है।

अपने जीवन काल मे मास्टर साहब ने सहस्रो निर्धन छात्रो को विद्या-दान दिया और न केवल पुस्तको से ही बल्कि धन से भी सहायता दी। अनेको नवयुवक व प्रौढ आज उनके बल पर जीवित हैं। जरूरतमन्द व योग्य व्यक्तियो को काम से लगाने की उन्हें सदा चिन्ता रहती और स्वय कही न कही उनके लिए व्यवस्था करते। यह सेवा भावना कुछ ही लोगो मे होगी।

मास्टर साहब किसी से अपने निस्वार्थ कार्य के लिए भी सहायता नही मागते थे पर लोग स्वय उन्हें अर्पित करते थे। वे कठोर तपस्वी, त्यागी और मूक सेवक थे—सरस्वती के पुजारी थे। उनके जीवन से अनेको बातें सीखने की हैं। भगवान हम लोगों को सद्बुद्धि व प्रेरणा दे कि हम उनके सच्चे शिष्य व अनुयायी बनकर उनकी ज्योति को कभी न बुझने दें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

मनुष्य कार्यों से ही ऊंचा या नीचा होता है

(श्री कपूरचन्द बस्सी वाले)

मुझे भली भांति याद है कि मास्टर साहब अनेक असहाय विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें एवं कॉलेज की फीस आदि के लिए लोगों के पास अक्सर सवेरे जाया करते थे। मास्टर साहब ने केवल मुझे ही नहीं बल्कि मेरे सामने से ही अनेक युवकों को पुस्तकें तथा फीस आदि दिलाकर उनकी पढ़ाई चालू रखने में मदद दी।

मुझे उनके ये शब्द भली भांति याद हैं—कोई भी मनुष्य किसी परिवार या जाति विशेष में पैदा होने के कारण ही ऊंचा नहीं कहा जा सकता। वह केवल अपने कार्यों से ही ऊंचा या नीचा होता है। जैन धर्म के विषय में तो वे बराबर ही कुछ सिखाया करते थे, क्योंकि इस विषय में उनकी जानकारी विशेष थी।

जब मैं करीब १९-२० वर्ष का था, तब मेरी रुचि उपन्यासों के पढ़ने की ओर बहुत अधिक थी, पर मुझे आज भी याद है कि मैं बड़ी मुश्किल से 'मोतीमहल' नाम का एक उपन्यास ले पाया था, क्योंकि वे किसी भी विद्यार्थी को पढ़ने के लिए उपन्यास बहुत ही कम देना चाहते थे।

विद्यार्थियों लिए देवता-स्वरूप

(श्री विद्याधर काला)

सन् १९१७ में मुझे श्रीमान् मास्टर साहब के निकट सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं उस समय गवर्नमेंट हाई स्कूल, अजमेर में दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था। दुर्भाग्यवश अजमेर में प्लेग का जोर था, स्कूलों की छुट्टियां भी अनिश्चित काल तक हो गई थीं, पठन कार्य में बड़ी बाधायें उपस्थित थीं। मैं संयोगवश मास्टर साहब से मिला और उपरोक्त कठिनाइयां मैंने उनके सामने रखीं। उन्होंने दूसरे ही दिन से मुझे अपने मकान पर प्रतिदिन प्रातःकाल आने का आदेश दिया। मैं करीब तीन मास तक लगातार गया और मैट्रिक का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम अच्छी तरह से तैयार कर लिया।

मास्टर साहब इन दिनों मे करीब पचास-साठ विद्यार्थियो को पढाते थे जिनमें तीसरी कक्षा से लेकर मैट्रिक तक के विद्यार्थी थे। मास्टर साहब की निगाह सब ही विद्यार्थियों पर रहती थी। किसी का एक मिनट भी बेकार नही जाता था। पाठन प्रणाली इतनी उत्तम थी कि सुगमता पूर्वक प्रत्येक बात समझ में आ जाती थी।

इसके बाद मे जब मैं महाराजा कालेज मैं भरती हुआ तब वे सदा पुस्तकों द्वारा मेरी सहायता करते रहे। बाद मे भाग्यवश मैंने भी दरबार हाई स्कूल में कुछ वर्षों के लिये उनके साथ अध्यापन का कार्य किया, तो वे विद्यार्थियों से किस प्रकार प्रेम करते थे इसका ज्ञान पूर्ण रूप से मुझे मिला एक बगल में किताबो से भरा हुआ बस्ता जिसमे बहुत सी पैंसिलें भी थी सदा उनके पास रहता था। यह सब विद्यार्थियो के उपयोग की ही चीजें थी।

उनका रहन सहन अत्यन्त सादा था। एक समय की बात है कि श्री ओविन्स, तत्कालीन शिक्षा विभागाध्यक्ष निरीक्षण के लिए दरबार हाई स्कूल मे आये। सब ही अध्यापकगण नवीन अपटूडेट पोशाको मे, अपने कार्य मे पूर्ण व्यस्तता दिखला रहे थे। मास्टर साहब वही रेजी की शेरवानी व मुद्दत की बधी हुई पगडी लगाये हुए थे। कुछ अध्यापको ने उस दिन के लिए ड्रेस बदलने को कहा था, लेकिन मास्टर साहब अपने प्रतिदिन के तौर-तरीके पर ही कायम रहे।

मेरी आकांक्षा है कि मास्टर साहब का विशाल पुस्तकालय जिसके लिये वे जीवन भर कार्य करते रहे सदा प्रगति करता रहे और विद्यार्थियो तथा जयपुर के नागरिकों की सेवा करता रहे। यही उनके लिये चिरस्मारक होगा।

सच्ची आध्यात्मिकता जन सेवा से ही संभव

(श्री कमलचन्द सोगानी)

वे वास्तविक अर्थ मे आध्यात्मिक थे। उनका जीवन भारतीय संस्कृति का सुन्दर प्रतीक था। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बडा दृढ और विकसित था। उनके सम्पर्क मे जो भी आता था वही अपने जीवन मे उच्चता की अनुभूति करने लगता था। उनका विश्वास था कि यदि हम अपने अल्पकालीन जीवन को ऊंचे लक्ष्य और आदर्श की प्राप्ति के लिए समर्पित कर

दें तो भौतिक सम्पदा स्वयं ही हमारे वशीभूत हो जायगी। मास्टर साहब का जीवन सिद्ध करता है कि आध्यात्मिकता की प्राप्ति के लिए मानव समाज से दूर जाकर एकान्तवास करना आवश्यक नहीं है, बल्कि जात-पांत का भेद भुलाकर पीड़ित और दलित मानवों की निरन्तर सेवा ही इसका वास्तविक मार्ग है। मास्टर साहब की महान् आत्मा में पतित से पतित लोगों को भी उठाने की सामर्थ्य और तीव्र अभिलाषा थी। उनकी निगाह समाज के बालकों और तरुणों पर विशेष रहती थी और वे उन्हें वर्तमान युग की भौतिकवादी भावनाओं और आकर्षणों से हाथ पथभ्रष्ट न होने देने में विशेष प्रयत्नशील रहते थे।

वे प्रथम कोटि के शिक्षक थे। उन्होंने शिक्षण की मूल भावना और आदर्श शिक्षक की विशेषता को भलीभांति प्राप्त कर लिया था।

मुझे उन्हें अपना गुरु कहने में गौरव का अनुभव होता है, लेकिन जब मैं अपने आपको उनका शिष्य कहना चाहता हूं तो मुझे अपनी अयोग्यता पर बड़ा संकोच होता है। मैं केवल तीन वर्ष उनके पवित्र संपर्क में रहा। यदि मैं कुछ भी उन्नति कर सका, तो यह सब उनकी कृपा के कारण ही होगी, और यदि न कर सका तो इसके लिये मेरा दुर्भाग्य ही उत्तरदायी होगा। मेरी यही आकांक्षा है कि मैं उनके जैसा बनूं और फिर मुनि के उनके आदर्शों को प्राप्त करूं।

मैं उन्हे अपना गुरु मानने लगा

(श्री लादूराम जैन जागीरदार)

जब मेरी उम्र तेरह वर्ष की थी, तब एक बार मैंने त्याग की शक्ति बढाने के विचार से बिना नमक की जौ की रोटी, बिना घी तथा शाक के खाना शुरू कर दिया। इस पर मेरी दादीजी बड़ी नाराज हुई, लेकिन मैं न माना, तब उन्होंने मास्टर साहब से मेरी शिकायत की। मास्टर साहब ने मुझे समझाया—पहले तुम्हें समय की पाबंदी का व्रत लेना चाहिये। इस व्रत मे तुम पूरे उतर जाओ, तब अन्य व्रत लेना। अभी तुम्हे गृहस्थ रहकर अपनी दादीजी की सेवा का कर्त्तव्य पालन करना है। मुझ पर मास्टर साहब के समझाने का बड़ा असर हुआ। तभी से मैं उन्हे गुरु मानने लगा।

जब मास्टर साहब ने बडे मदिरजी के दरवाजे के ऊपर वाले हिस्से की एक छोटी अलमारी मे सात पुस्तको से पुस्तकालय के काम की शुरुआत की तो उसी दिन मुझे प्रद्युम्न चरित्र नाम की पुस्तक दी और नित्य स्वाध्याय करने का नियम दिलाया। मैंने वह नियम अगीकार किया और आज तक उसका निरन्तर पालन करता चला आ रहा हू।

जब से मास्टर साहब ने पुस्तकालय का काम इस मन्दिर मे शुरू किया, तभी से मन्दिर के कुछ पच मास्टर साहब का विरोध करते रहे, लेकिन मुझे इस पुस्तकालय के प्रति सदा से बडा प्रेम रहा है, क्योकि मास्टर साहब ने इस शुभ कार्य की ऐसी घडी मे नीव डाली थी कि मेरे देखते देखते इसमे पैंतीस हजार के करीब पुस्तकें हो गई और प्रति वर्ष हजारो लोगो को इससे लाभ पहुचने लगा। मैं चाहता हू कि पुस्तकालय यही रहे और फले-फूले। मैं इसके विरोधियो का सदा मुकाबला करता हू और करता रहूगा।

मैं उन्हें बाबा साहब कहता था

(श्री निर्मलकुमार हासूका)

मैं उन्हे बाबा साहब कहता था क्योकि जब से मैंने होश सभाला मैंने अपनी माताजी को उन्हें बाबासाहब कहते ही सुना। वे मेरे बडे नाना साहब होते थे। पिताजी ने मुझे जयपुर उन्ही की देख-रेख मे पढने के लिए छोडा था। मैं अपने आपको उन भाग्यवानो मे से समझता हू, जिन्होने उनका लाड और दुलार, डाट और डपट, उपदेश और नसीहत पाई। इसके अलावा मुझे उनके व्यक्तित्व को, उनकी कार्य प्रणाली को, उनकी जीवन-साधना को बहुत ही निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ, क्योकि लगभग साल साल तक सोने के समय के अलावा, सब ही समय तो उनके साथ रहा। गर्मी की छुट्टियो मे भी वे मुझे पिताजी के पास अलवर नही जाने देते। मुझे पुस्तकालय मे वे अपने साथ ले जाते और वहा बैठा २ गणित के प्रश्न किया करता। लेकिन घर से मैं इसी शर्त पर जाता कि बाबासाहब मुझे नीद आने पर हवा करेंगे और उनके उस अमूल्य समय मे से हर रोज दस पन्द्रह मिनट अपनी कमर सहलवाने के लिए निकलवा ही लेता था। तब मैं आठ-नौ साल का था और छठी क्लास मे पढता था। जब तक मुझे नीद नही आती मास्टर

साहव मुझे धार्मिक उपदेश व कुछ सदाचार के नियम अपनी हमेशा की आदत के अनुसार सुनाया करते । जव मैं पन्द्रह साल का हुआ और इन्टरमिडियट करने को था, तब मैं वावासाहव के लेट जाने पर उन्हे यदा कदा उन्ही की उपदेशो की नोट वुको मे से उन्हे कुछ पढकर सुनाता—उस समय तक मास्टर साहव काफी ढल चुके थे ।

प्रतिदिन वडे सवेरे, उजले-अधियारे, मास्टर साहव शैय्या त्याग किया करते थे और फिर सामायिक का आसन लगा कर काफी समय तक आत्म-चिन्तन । किसी भी दिन, किसी भी कारण को लेकर इससे अन्यथा घटित नही होता, इसकी अवहेलना नही होती थी । तत्पश्चात् वे स्वय ही अपने विस्तरो को उठाते । खुद का काम खुद करो-इस सिद्धान्त का वे कभी उल्लघन नही करते थे ।

मास्टर साहव ठीक समय पर भोजन और स्नान किया करते थे । आखो को रोज पानी से धोना दातो को रोज साफ करना और शौच से पहले पानी पीना-यह उनकी खास आदतें थी । यही कारण था कि ७४–७५ वर्ष की अवस्था होने पर भी न तो मास्टर साहव का एक ही दात टूटा, न चश्मे की ही जरूरत पडी । यह छोटी २ वातें उनकी वरसो की नियमितता का फल थी । इसी नियमितता का कारण था कि उन्हे अपनी तीस वर्ष की नौकरी मे एक दिन का रियायती अवकाश लेने की भी जरूरत नही पडी ।

प्रात नित्य कर्म के पश्चात् मास्टर साहव जरूर कही न कही किसी विद्वान् या साधु का उपदेश सुनने पहुच जाया करते थे । चाहे विद्वान् कोई जैन साधु हो या कोई वैष्णव या कोई मुसलमान, जहा भी उन्हे नई चीज मिलती, जहा भी अध्यात्म सम्वन्वी चर्चा होती, वे पहुचे रहते थे । इन धार्मिक सकीर्णताओ से परे अपनी नोट-वुक और पैंसिल लेकर मास्टर साहव अपने मतलव की चीज नोट करते हुए लोगो को वहुधा दिखलाई पडते थे । मुझे याद है कि एक दफा रात्रि को हम कही गली मे जा रहे थे, और एक भिख-मगे फकीर ने किसी को एक शेर सुनाया । वे वही खडे हो गये और उस फकीर से उसे दोहराने की प्रार्थना की और फिर तत्काल ही नोट कर लिया—आखिरी दिनो मे जव वे वहुत ज्यादा ढल चुके थे और ज्यादा घूमना फिरना उनके लिए सम्भव नही था, तो वे अपनी पुरानी नोट वुको को निकाल कर उन अमर वाक्यो को दोहराया करते थे । ऐसी जवर्दस्त थी उनकी ज्ञानपिपासा । रास्ते चलते २ भी वे भजनो की एक कापी मे से भजन याद किया करते थे । समय का ऐसा उपयोग वहुत कम लोगो मे देखने को मिलता है ।

उनका भोजन बहुत ही नियमित और अल्प होता था। शायद पिछले पंद्रह सालो से उन्होने दिन मे दो बार भोजन करने के अलावा तीसरी बार तिनका भी मुह मे नही लिया। किसी भी प्रकार के नशे का व्यसन उन्हे एक दम नही था। धूम-पान, पान-सुपारी ऐसी किसी भी चीज का सेवन उन्होने पिछले पचास साल से नही किया था। कम-मसाले और हल्के हाथ का भोजन ही उन्हे प्रिय थाँ। उनका आचार-विचार और रुचि अत्यन्त परिष्कृत थी। उन्हे सिर्फ दूध और दही का शौक था। दूसरो को भी वे इन्ही चीजो के लिए जोर देते थे। उनके हाथो जबरदस्ती काफी दूध पीने के लिए सौभाग्य से मैं भी कभी वञ्चित नही रहा। उन्हे जीभ के चटोरे लोग पसन्द न थे। वे कहा करते थे—खाओ जीने के लिए न कि जीओ खाने के लिए। एक उनकी उल्लेखनीय आदत यह थी कि हमेशा तीन रोटियो मे से एक रोटी बिना किसी सब्जी या भाजी के खाया करते थे। कहते थे मनुष्य को जीभ का दास नही होना चाहिये। हर तरह की आदत डालनी चाहिये। हो सकता है कभी सब्जी या तरकारी न मिले।

सादा-रेजी का सफेद कुरता-धोती और टोपी ही उनकी प्रिय पोशाक थी। उसके ऊपर वे अपने गाव चौमू की बनी हुई देशी-हल्की जूती पहना करते थे। फिर भी वे सामाजिक नियमो का पूरा ध्यान रखते थे। कवियो या दार्शनिको की तरह चला कर बाल या डाढी बढाना अथवा निराले ही कपडे पहनना, उन्हें पसन्द न था। जब किसी आदमी से मिलने जाना होता या किसी विशेष अवसर पर वे अ गरखी और पगडी जरूर लगाते थे और तब वे अतीव सुन्दर लगते थे।

बाबा साहब जयपुर मे एक आदर्श शिक्षक और एक आदर्श पुस्तकालय सचालक के रूप मे प्रसिद्ध थे। उनकी ज्ञान-पिपासा ने उनमे पुस्तकें पढने की आदत डाली और इसी प्यास को सर्वसाधारण मे जागृत कर देने की लालसा की निशानी है यह सन्मति पुस्तकालय। यह सब उन्ही के अथक परिश्रम का फल था, उन्ही की प्रेरणा थी कि पुस्तकालय मे पुस्तको की सख्या हजारो तक पहुच सकी।

वैसे एक जगह बैठ कर पुस्तक देना कोई बडा काम नही, किन्तु किसको कैसी देना, यही सब कुछ है। इस कला मे वे प्रवीण थे। पहली बार कोई मनुष्य आता और कहता मास्टर साहब मुझे किताब दीजिये। वे पूछते 'कैसी भाई'? उत्तर मिलता 'साहब, दो जासूसी उपन्यास'। 'अच्छा ले जाओ'। अगली बार वे उसे अपने आप एक जासूसी और एक सामाजिक उपन्यास दे

देते । उसके वाद दोनो पुस्तकें जो दी जाती वे सामाजिक-उपन्यास ही होती । चौथी वार एक सामाजिक उपन्यास और एक जेम्स ऐलन अथवा लीली ऐलन की लिखी हुई या कोई भी अच्छे विचारो की पुस्तक दे दी जाती । फिर आने पर पूछ लेते थे 'भाई क्या पढा' ?

मास्टर साहव का आध्यात्मिक किताबो की ओर रुचि पैदा कराने का वडा रोचक ढग था । वे किसी मनुष्य से पूछते "क्यो भाई अगर कोई आपसे पूछे आपका क्या नाम है ? आपके पिताजी का क्या नाम है, आप क्या धधा करते हैं? और अगर आप जवाव दें, मालूम नही तो कोई आपको क्या वत-लायेगा? " मनुष्य तत्परता से जवाव देता "मूर्ख वल्कि महामूर्ख ही वतलायेगा" । फिर मास्टर साहव पूछते, अच्छा वतलाइये "आप कौन हैं" ? वह मनुष्य निश्चय ही अपना नाम वतलाता । वे कहते-ना, यह तो आपके शरीर का नाम है-जो मृत्यु के वाद यही पडा रह जाता है । मुझे आपका नाम वता-लाइये-उस चीज का जिसके विना यह शरीर सिर्फ एक मास का लोथ रहता है । उस चीज का नाम वताइये जिसे आप 'मैं' करके वोलते हैं। फिर पूछते—आप कहा से आये हैं? 'आप कहा जायेंगे ? आप का क्या कर्त्तव्य है" ? उस मनुष्य के निरुत्तर हो जाने पर वे कहते, भला वतलाइये आपको इतनी आवश्यक वातो का मालूम नही । फिर उसे आत्म-ज्ञान सवधी पुस्तक दे देते । उनके प्रशान्त स्वभाव का ऐसा कुछ लोगो पर असर पडता था कि उनकी दी हुई किताव का पढना जरूरी हो जाता । कुछ लोग ऐसे भी आते थे जो किसी किताव को केवल इसीलिए नही पढते थे कि वह एक जैन अथवा वैष्णव या किसी अन्य धर्मी की लिखी हुई है और अगर मास्टर साहव उस किताव को पढवाना जरूरी समझते तो वे लेखक के नाम पर एक कागज की चिट चिपका देते । वास्तव में कितनी लगन थी उनमे अपने आसन के प्रति । केवल एक लालसा थी उनमे — सर्वसाधारण को ज्ञानोपार्जन कराने की । ऐसा आदर्श पुस्तकालय-सचालक वास्तव मे दूसरा मिलना ही वहुत कठिन है ।

कभी कोई आदमी कहता कि अमुक आदमी के पास आपकी इतनी पुस्तकें पडी हैं और वह आपको लौटाने का नही तो वडे सहज भाव से उत्तर देते "अरे भाई वह मनुष्य पुस्तको का क्या करेगा ? आखिर पढ़ेगा ही, उसके पास ही रहने दो ।"

लोगों को भी उनमे निर्लिप्तता और निरपेक्षता देखकर अत्यधिक विश्वास हो चला था । मुझे एक घटना अभी भी याद है । एक दिन शाम को ५ वजे एक साहव घर आये और रुमाल खोलकर तीन पुस्तकें निकाली । कहने

लगे मास्टर साहब, पुस्तकालय तो आ न सका, कुछ देर हो गई थी, आप इन्हे जमा कर लीजियेगा। कुछ इधर, उधर की बातो के पश्चात वे चले गये। दूसरे रोज मास्टर साहब ने जब पुस्तकालय मे किताबें जमा की तो एक किताब मे २००) रु० के नोट निकले। दोपहर मास्टर साहब उस आदमी के मकान पहुचे बोले 'गलती से आपके २००) रु० के नोट किताब मे रह गये थे' तो वह कहने लगा "नही मास्टर साहब, मैंने चलाकर ही तो रखे थे, मुझे मालूम था आपसे अच्छा *व्यक्ति मुझे नही मिल सकता था, जो इन्हें सदउपयोग मे लगा सकता"*। यह घटना इस बात की परिचायक है कि अन्य लोगो की तरह मास्टर साहब रुपये के पीछे नही दौडते थे, बल्कि रुपया उनके पीछे दौडता था। मास्टर साहब का जीवन पूर्ण त्यागमय था और इसी कारण लोगो को उनमे विश्वास था।

मास्टर साहब का हृदय बडा विशाल था। उसमे सभी की गल्तियां आसानी से समा जाती थी। लोगो ने उन्हे भी दु'ख पहुचाने की चेष्टा की, लेकिन उन्होने उमे अत्यन्त शान्त भाव से सहन किया। हँसकर कह दिया करते "उस वेचारे का दोष नही, मैंने जो कुछ बुरे कर्म किये उसका फल तो मुझे भोगना ही है"। इसी तरह शारीरिक कष्टो को समझते थे। देहावसान के दो तीन रोज पहिले उन्हे पेट मे अत्यधिक पीडा थी। सारी आतें कटती थीं, शायद उनमें जख्म हो चले थे। डाक्टरो को काफी परेशानी थी। यन्त्रणा का अनुमान सहज ही किया जा सकता है, लेकिन उन्होने कभी उसे चेहरे पर प्रकट न होने दी। दु ख के आघात से वे स्वय कभी टूटे नही। कर्म-दर्शन पर उनका बडा विश्वास था—केवल इसी तरह नही कि वह निष्क्रिय हो जायें और सोच लें जो कुछ बुरे कर्म करे हैं उनका फल तो मिलना ही है, बल्कि इस तरह भी कि मनुष्य जन्म पाया है तो आगे के लिए अच्छे बीज बोये जायें।

मास्टर साहब मे अदभुत् सहन शक्ति जरूर थी, फिर भी उनका हृदय वडा भावुक और कोमल था। दूसरो के दु खो को देखकर वे आकुल हो जाते थे। जब वे कोई दु ख भरा किस्सा सुनाते तो ऐसा लगता मानो मन भीग गया हो। वे गदगद् हो उठते। उनका तरल हृदय आखो के रास्ते वह निकलता। तव ऐसा लगता मानो मास्टर साहव का स्वय का कोई अस्तित्व नही है। वे जो कुछ हैं दूसरो के लिए। उस समय उन पर स्वय की कोई सीमायें नही रहती, क्योकि स्वय तो बस वे समर्पित थे। दूसरो के दु.ख में दु ख मानना और उनका दु ख दूर करके प्रसन्न होना ही उनका जीवन था। यही कारण था कि सभी उनसे खुश रहते थे। किसी का उनसे द्वेष होता तो भी उनकी

निस्वार्थता के आगे, उनके तेजोमय व्यक्तित्व के सन्मुख एक बारगी तो उसका मस्तक झुक जाता ।

मास्टर साहब के हृदय मे किसी के लिए द्वेष भाव नही है, यह मुझे एक ही दिन मालूम हुआ । वह घटना मुझे अभी तक याद है और हमेशा याद रहेगी । काफी छोटा था मैं । घर से मैं पुस्तकालय पढने जाया करता था । घर और पुस्तकालय मे ज्यादा फासला नही था इसीलिए घर से अकेले जाने की इजाजत थी । रास्ते मे एक नीलगर (रगरेज) पडता था । उसके एक बडा मेमना वल्कि मेढा कहिये रहा करता था । जैसे मैं उधर से निकलता कि वह अपनी जगह से खडा हो बीच सडक मे अपने दोनो पैरो पर खडा हो, अपने सिर से जिसमे छोटे२ सीग थे, मुझे मारता । अगर मैं उस नीलगर के सामने से भाग कर निकलता तो वह भी मेरे पीछे दौडता और मारे बिना न रहता । वह सिर्फ मुझे ही मारता और किसी से कुछ न कहता । तीन-चार रोज ऐसा ही क्रम चला, मैं उस मेढे से बहुत डर गया था । मैं पाचवें रोज पुस्तकालय पढने नही गया और बाबा साहब से मैंने सारा हाल बतलाया । वे हसे और बोले हम तुमको एक तरकीब बतलाते हैं । बोले आज रात को तुम सोओ तो हाथ जोडकर कहना "हे मेढे, मैंने तेरा क्या बिगाडा है, जो मुझको इतना मारता है, तङ्ग करता है, और अगर पिछले जन्म मे तुझे मैंने तङ्ग किया हो तो मुझे क्षमा करदे" । मैंने ऐसा ही किया और दूसरे रोज जब मैं उधर से गुजरा तो वह सिर्फ अपनी जगह खडा ही हुआ, लेकिन मुझे तग नही किया । फिर दूसरे रोज मैंने उसी तरह सोते समय उससे माफी मागी और उसके बाद मैं उस मेढे के लिए ऐसा हो गया जैसे दूसरे चलने वाले पथिक । मैंने आनन्द मिश्रित आश्चर्य से मास्टर साहब से पूछा तो कहने लगे—मैं तो सोते समय सारी दुनिया के जीवों से इसी प्रकार प्रतिदिन, पहिले क्षमा-याचना करता हूँ और फिर उनको मेरे प्रति किये अपराध के लिए क्षमा-प्रदान करता हू । वास्तव मे कितना साधारण तरीका है, ऐसी असाधारण चीज करने का !

वे सबको प्रेम जरूर करते थे लेकिन उन्हे किसी से मोह नही था । वे अपने स्वय के लडके को भी उनकी जरूरतो के लिए रुपया मागने पर मना कर देते थे, किन्तु किसी गरीब विद्यार्थी को रुपये की आवश्यकता होती तो पहले उसे सहायता पहु चाते ।

मास्टर साहब कवि नहीं थे, लेखक अथवा चित्रकार या शिल्पी भी नहीं थे, न वे कोई राजनीतिज्ञ ही थे । उन्हें केवल एक ही लालसा थी और वह थी आध्यात्मिक ज्ञानोपार्जन करने की, आत्मा को पहिचानने की और दूसरों

को भी यह ज्ञान कराने की। जीवन के आखिरी दिनो मे वे किसी कार्य मे हाथ नही डालते थे, खुद ही कुछ सोच मे मग्न रहते थे, आध्यात्मिक भजन गुनगुनाया करते थे। उनको एक भजन बहुत ही प्रिय था जिसके बोल तो मुझे याद नही हैं, लेकिन उसका आशय यह था कि मनुष्य के पास चाहे सब सम्पत्ति हो, सुख के सर्व साधन हो, उसका यश भी खूब फैला हो, लेकिन यदि उसके स्वय के मन मे शान्ति न हो तो सब व्यर्थ है।

जब कभी पुस्तकालय मे पांच सात मनुष्य जमा होते तो वे उनको धीरे धीरे मीठे शब्दो मे मनुष्य जन्म को सार्थक करने के हेतु आत्मा की ओर थोडा ध्यान देने को कहते और उक्त भजन फिर वे गाकर भी सुनाते। उनके शब्दों मे पता नहीं ऐसा क्या होता था, ऐसा लगता जैसे अशाति, जल्दबाजी, भूल, व्यस्तता, शोक, भय आदि सांसारिक चिन्तायें और उनके साथ लगी आकुलता और आर्त्तध्यान कुछ देर के लिए मानो कोसो दूर चले गये हो, और जीवन मे बचा हो सिर्फ शान्ति, सादगी और सतोष। जीवन का प्रत्येक क्षण कुछ बढता हुआ और मधुर लगता। जीवन मे एक प्रशात सौन्दर्य अनुभव होता और लगता मानों इस मनुष्य-जीवन मे गहरे मे कोई मतलब छिपा पडा हो।

सच्ची श्रद्धांजलि उनकी पारमार्थिक प्रवृत्तियों को चालू रखना है

(श्री सूरजमल साह)

सर्व प्रथम मास्टर साहब के दर्शन मैंने सन् १९२६ मे किये जब मुझे चादपोल हाईस्कूल मे तीसरी श्रेणी मे भरती कराया गया। मुझे तो उस समय अपने हित-अहित का ज्ञान न था, मैं उनके देव-स्वरूप को क्या पहिचानता, किन्तु मास्टर साहब की पारखी दृष्टि ने तुरन्त निश्चय कर लिया कि मुझे सहायता की कितनी आवश्यकता है। मुझे और मेरी माताजी को उनसे सहायता लेने मे झिझक थी, धर्मादे का पैसा भला हम कैसे लेते? मास्टर साहब को देर न लगी हमारी दुर्बलता को अथवा बेवकूफी को समझने मे और इसका इलाज करने मे। मुझे हैडमास्टरजी ने बुलाया और सरकारी स्कालरशिप के रूप मे २) रु० माहवार मुझे मिलने लगे। इसके लिये हम इन्कार क्यो करते! हमे तो खुशी हुई। दुर्भाग्य से मैं पाचवी श्रेणी में फेल

हो गया तो भी मेरी स्कालरशिप बारह महीने तक जारी रही। बरसों बाद जब आखे खुली तो पहचाना कि यह सहायता सरकारी नही थी बल्कि वही थी जिसके लिये हमने जरूरत होते हुये भी मानसिक दुर्बलता के कारण लोक लाज के डर से लेने से इन्कार किया था।

मुझे गौरव अनुभव होने लगा कि मास्टर साहब का वरद हस्त मेरे सिर पर है। एकमात्र उन्ही की अनुकम्पा से मैं बी० ए० पास कर सका, जबकि मेरी घर की परिस्थिति मुझे मैट्रिक मे आगे नही बढने देती। मै एक साल का भी न होने पाया था कि मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया किन्तु २५ वर्ष तक, जब तक मास्टर साहब जीवित रहे उन्होंने मुझे अपने पिता का अभाव एक क्षण के लिये भी महसूस नही होने दिया। मास्टर साहब मेरा मस्तिष्क निराकुल रखते थे। जब ठीक समझा फीस के लिये रुपये हीरालाल फन्ड से कर्ज दिलवा दिये, कभी अपने पास से दे दिये, किताबें लायब्रेरी से खरीदवा दी, चार साल तक ट्यूशन फीस माफ करवा दी। इसी प्रकार उन्होंने जयपुर के कितने ही गिरे हुए बालको को उठाया, अनाथो को सनाथ किया, असहाय विधवाओ की सहायता की। दु खी, दरिद्र और पीड़ित प्राणियों की अकथनीय सेवा, सच्ची किन्तु दिखावे से दूर, जीवन पर्यन्त मास्टर साहब ने की।

इतना ही नही, मास्टर साहब का लक्ष्य हम लोगो के केवल जीवन-निर्वाह तक ही सीमित नही था। वे इससे भी अधिक जोर आत्मोद्धार की ओर देते थे। जब कभी किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के विद्वान् त्यागी जयपुर में आते तो मास्टर साहब स्वय वहा जाते और मुझे भी साथ ले जाते। उनके साथ मैंने कितने ही उपाश्रयो मे साधुओ के प्रवचनो को सुना है जिनमे विद्वान साधु चौथमलजी महाराज की कुछ बातें आज भी दैनिक जीवन मे प्रेरणा देती हैं। मास्टर साहब के डाले हुए सत-समागम के संस्कार आज भी मुझे बडे लाभप्रद सिद्ध हो रहे हैं।

मास्टर साहब साधु थे या गृहस्थ, मानव थे या देवता, क्या थे और क्या नही, यह शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। यह तो वे ही लोग जानते होंगे जो मास्टर साहब के निकट सम्पर्क मे आये हो। मास्टर साहब की मानवता के दर्शन, उनका मन वचन कर्म मे एकरूपता, हित, मित वाणी का आस्वादन, निरन्तर परोपकार मे रत, निष्कपट, निष्पाप एव निस्वार्थ उनकी अथक तथा मूक बहुमुखी प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन श्रद्धाजलि के द्वारा कौन करा सकता है! फिर भी इससे कुछ अपनी बातें उनके बहाने लिखने का मुझ

जैसो को एक अवसर मिला है। हम इतने ही मे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री न मान लें। मास्टर साहब का परिचित समुदाय कुछ कम नही हैं। यदि हम उनके आदेशो को थोडा भी अपने जीवन मे उतारे तो हमारे ग्राहस्थ्य जीवन, सामाजिक जीवन एव धार्मिक जीवन को स्वर्गोपम बना सकते हैं। मास्टर साहब के प्रति श्रद्धाजलि तो उनकी पारमार्थिक प्रवृत्तियों को चालू रखने मे अपनी शक्ति अनुसार योग दान देना ही है।

मास्टर साहब त्याग, दया और विनम्रता की मूर्ति थे

(श्री देवीशकर तिवाड़ी)

स्वर्गीय श्री मास्टर मोतीलालजी को आज से १०, १२ वर्ष पूर्व पढा लिखा ऐसा कौन व्यक्ति है जो न जानता हो ? वे जयपुर में गणित के एक योग्य, माने हुये अध्यापक रहे। गणित की समस्याओ को हल करने के कारण ही नही वरन् जगत् के जटिल जीवन-प्रश्न को हल करने की योग्यता रखने के कारण वे सबकी श्रद्धा के पात्र बन गये थे। जिस प्रकार वे गणित के प्रश्न हल करने के गुर बताते थे वैसे ही उन प्रश्नों के भी गुर रटाया करते थे। प्रारम्भ से ही आन्तरिक भावनाओं को साफ रखने के अभ्यस्त मास्टर साहब दूसरो को गन्दा देख क्रोधित होते, उन्हे सफाई की शिक्षा देते थे और कभी कभी तो स्वय उनके घर जाकर ही दिव्य झाडू दे आते थे। लोक और परलोक दोनो को ही सुधारने की ओर उनकी दृष्टि रहती थी। पुस्तकालय मे वे रहते थे परन्तु वास्तविक रूप मे वे स्वय ही पुस्तकालय थे। सब धर्मों का सार ग्रहण करने वाले, भेद-भाव रहित, साधु प्रकृति मास्टर साहब त्याग, दया, विनम्रता की मूर्ति थे। आलस्य से परे रहे वे निरन्तर किसी न किसी कार्य मे लगे रहते थे। आज भी कभी कभी वह वृद्ध, सरल, कान्तिमय मूर्ति स्मरण हो आती है।

सैतालीस साल पहले विदेशी कपड़ो की होली

(हकीम मोहनलाल जैन)

रजवांजाह फिरदौस मजिल,[1] मास्टर साहब मोतीलालजी सघी के हालात जिन्दगी और जजबात इनसानी[2] महर मिस्ल रोशन[3] है। मास्टर साहब देश प्रेम और राष्ट्रीय भावनाओ मे शराबोर[4] थे। इनकी एक मिसाल मुझे भी याद आती है। सन् १६०५-६ मे जब बग-भग का आंदोलन चल रहा था और बगाल से स्वदेशी का नारा बुलन्द हुआ था, उस जमाने मे जवाहरलालजी जैन, वैद्य अर्जुनलालजी सेठी, गोपीचन्दजी सोगानी (सचालक, मित्र कार्यालय) और मास्टर साहब मोतीलालजी के पास जितने विदेशी कपडे थे, उन सबकी होली उन्होंने कर डाली थी। उस जमाने मे वर्धमान जैन विद्यालय कायम होने के पहले मै सेठीजी के पास ही रहता और पढता था। इस वाकये के बाद मास्टर साहब ने भी कभी विलायती कपडा अपने जिस्म पर नही डाला, बल्कि किसी काम मे भी नही लिया और जहा तक मुमकिन हुआ अपने गांव चौमू के बने हुए कपडे ही इस्तैमाल फरमाते रहे।

× × ×

मास्टर साहब की जिन्दगी का एक मजेदार वाकया और याद आता है। सन् १६११ १२ के करीब मास्टर साहब की जोजए मोहतरिमा ने रहलत फरमाई[5]। इसके बाद उन्होंने जिन्दगी भर के लिए ब्रह्मचर्य अपना लिया, लेकिन उनके दोस्त लोग उनकी शादी करा देने पर उतारू थे। मास्टर साहब को जब किसी भी तरह से मजूर नही करा पाये तो सेठीजी को एक मजाक सूझा। इन दोस्तो मे से ही एक सज्जन श्री केसरलालजी गोधा को जिनके निहायत खूबसूरत दाढी और मूछें थी दुल्हिन बनाया गया और मास्टर साहब को दुल्हा बनाकर शादी का पूरा और बाकायदा स्वाग रचाया गया। दोस्तो मे दावतें और मिठाइयाँ उडी उस वक्त से उनके दोस्त लोग मास्टर साहब को बाबा और केसरलालजी को माजी कहने लगे और उनके ये अलकाब ताजिन्दगी कायम रहे, बल्कि केसरलालजी तो इसी नाम से पहचाने जाते थे।

---

१ स्वर्ग के अधिकारी तथा स्वर्गस्थ २ माननीय भावनाए ३. सूर्य की भाति प्रकट ४. ओत-प्रोत ५. आदरणीय धर्मपत्नी का देहावसान हुआ।

मास्टर साहब सच्चे अर्थ में कर्मयोगी और तपस्वी थे

(श्री दौलतमल भडारी)

श्रद्धेय मास्टर साहब मोतीलालजी सेवाभावी एव साधुस्वभावी व्यक्ति थे। वे राजनीति और दलबन्दी से कोसो दूर रहते थे, पर देश की स्वाधीनता प्राप्ति और सच्ची नागरिकता के प्रसार मे उन्होंने जो काम किया वह बुनियादी काम कहा जा सकता है। वे राजनीति से सीधा सम्पर्क न रखते हुए भी खादी पहना करते थे। खादी का देश की स्वाधीनता मे जो स्थान रहा है वही मास्टर साहब के कार्यो का जयपुर के नागरिको की उन्नति मे रहा है। वे सच्चे, सीधे और सहृदय व्यक्ति थे। त्याग और तपस्या की मूर्ति मास्टर साहब अपने प्रत्येक कार्य मे अपने आदर्शों को अपनाते थे। यही कारण है कि वे नि स्वार्थ भाव से समाज सेवा और जनकल्याण के मार्ग मे लगे हुए थे।

मास्टर साहब ने अपने जीवन और कार्यों द्वारा मास्टर शब्द को सार्थक किया। सबसे पहले वे अपने आप पर मास्टर हुए। उन्होने अपने कषायो पर पूरा काबू किया। पुराने दृष्टिकोण से कम अवस्था मे विधुर होने पर भी उन्होने अपना दूसरा विवाह नही किया और धीरे धीरे अपने आपको पूर्णतया समाज-सेवा मे लगा दिया।

नौ वर्ष की अवस्था मे जब मैं तीसरी श्रेणी मे अध्ययन करता था उस समय से ही मेरा उनसे सम्पर्क आरम्भ हो गया था। गणित उनका मुख्य विषय था और मेरी इस विषय मे विशेष रुचि रही है। मेरी गणित मे विशेष रुचि और अच्छी गति होने के कारण उनकी मेरे ऊपर अत्यधिक कृपा हो गई और मैं उनका कृपापात्र शिष्य हो गया। गणित पढाने मे वे दक्ष थे। इस विषय को इतनी सरलता, सरसता, एव उत्साह से पढाते थे कि निकम्मे और मन्दमति छात्र भी इस विषय मे रस लेने लगते थे। वे केवल स्कूल के मास्टर ही नहीं थे। उनके लिए तो प्रत्येक छात्र पुत्र तुल्य था। मास्टर साहब विद्यार्थी के विकास के लिए आतुर रहते थे। वे छात्र के चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान रखते थे। हजारो विद्यार्थियो ने उनसे शिक्षा पाई होगी। उनमे कोई ही ऐसा होगा कि जिसको मास्टर साहब से सदाचार, नैतिकता, धार्मिकता और त्याग का उपदेश न मिला हो। उनका उपदेश केवल उपदेश ही नही था, उसमे जीवन

निर्माण की अपूर्व शक्ति थी। वे अपने विद्यार्थी को सच्चा नागरिक बनाना चाहते थे, त्याग और सेवा का पाठ पढाकर पावन-पथ का अनुगामी बनाना चाहते थे।

मास्टर साहब स्कूल के मास्टर न रहकर सर्वसाधारण के मास्टर बन गए। उन्होने जनता मे से अज्ञानान्धकार दूर करने का सकल्प किया और इस सकल्प को पूरा करने मे अपने जीवन को लगा दिया। उन्होने पुस्तको का सग्रह आरम्भ किया और शनै शनै इस सग्रह ने पुस्तकालय का रूप धारण कर लिया। सन्मति पुस्तकालय को एक व्यवस्थित और उल्लेखनीय पुस्त-कालय बना देना मास्टर साहब जैसे आदर्श तपस्वी ही का काम था। पुस्तको पर गत्ते चढाना, घर घर जाकर पुस्तकें पढने के लिए देना, फिर उनको वापिस लाना, खोजाने पर क्रोध न करना आदि बातें तो उनके स्वभाव मे सम्मिलित हो गई थी। वर्षों तक उनका यही कार्यक्रम चलता रहा। गरीब विद्यार्थी और विधवाओ की सहायता करना, निरन्तर परोपकार मे लगे रहना सच्चे साधु ही का काम हो सकता है। इस प्रकार की लगन, सेवा, त्याग, श्रमशीलता और कार्य-दक्षता अब कहा ?

मास्टर साहब की सादगी और आदर्श विचारो का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पडता था। उनका जीवन लोगो मे कर्त्तव्यनिष्ठा, सादगी और विनयशीलता का प्रेरक था। जैन धर्म के प्रति विशेप अनुराग होते हुए भी वे सब धर्मों को समान समझते थे। उन्होने सन्मति पुस्तकालय में सब धर्मों के मान्य ग्रन्थो का सग्रह किया।

मास्टर साहब एक विश्व मानव थे। वे बार बार इस बात की याद दिलाते रहते थे कि शरीर और आत्मा भिन्न है, ससार के प्रलोभनो मे फस कर आत्मा को न भूलो। वे हमेशा ऐसे भजन याद किया करते थे जिनसे आत्मा को शान्ति मिले।

मास्टर साहब का जीवन जनता की सेवा मे बीता। वे किसी को दु खी नही देख सकते थे। दूसरो का कष्ट देखकर उनका हृदय पसीज जाता था और दूसरो की सेवा करने के लिए सर्वस्व तक त्याग करने की उनमे सदा तैयारी रहती थी, इस प्रकार मास्टर साहब सच्चे अर्थ मे कर्मयोगी और तपस्वी थे।

जो इन्सानियत से दूर थे उनको वो इन्सान बना दिया करते थे

(श्री चादबिहारीलाल माथुर 'सबा')

मेरे मुकर्रम व मुअज्ज़म[1] मास्टर मोतीलालजी साहब सघी, जिनका इन्तकाल पुरमलाल[2] १७ जनवरी, १९४९ को हुआ है, हमारे शहर जयपुर मे एक हस्ती[3] थी जिसकी मिसाल उनके जमाने में तो क्या वह जमाने माजी[4] जिसमें मुकतदर[5] हस्तियों की मिसालें कसरत से मिल जाया करती हैं उसमे भी मुश्किल से निकलेंगी। मेरे देखे हुए जमाने मे तो कोई ऐसी हस्ती नजर नही आती, मुझसे पहले के ज़माने मे होगी।

इन्सान मे खूबिया भी हुआ करती हैं और बुराइया भी। दोनो सिफतो के रखने वाले हर ज़माने मे कसरत से मिल जाते हैं, लेकिन जो सरापा[6] खूबी ही खूबी हो वह कुदरत ही कम पैदा करती है और ऐसी ही हस्ती को दुनिया रोती है और याद करती है। यही सबब है कि मास्टर साहब मरहूम[7] को आज मैं ही क्या शहर का शहर याद करता हैं और रोता है।

आपने शागिर्दों के साथ जो बर्ताव उनका क्या मदरसे मे और क्या मदरसे के बाहर जैसा बुजुर्गाना, मुशफकाना[8] और दोस्ताना था उसकी मिसाल हर मास्टर मे मिलना मुश्किल है। वो सिर्फ अपने शागिर्दों को दरसी[9] किताबें पढाकर ही अपनी जिम्मेदारी को खत्म नही समझते थे, बल्कि उनकी हर शागिर्द के लिए यह कोशिश होती थी कि वो पढ लिखकर एक आदमी बने और ऐसा आदमी बने जो सही माने मे आदमी कहलाने का मुस्तहक[10] हो और इस कोशिश मे वे बहुत कुछ कामयाब हुए। उनके शागिर्दों मे क्या मेरे साथ वाले और क्या मेरे बाद के और पहले के सब-के सब ऐसे नजर आते हैं कि जिन पर मुझे अपने उस्ताद भाई कहने का फख़ है। इसके अलावा अदब की तरफ रुझान करना उनका खास मकसद था। इसके लिए उन्होंने एक कुतुब खाना[11] खोला जिसका नाम श्री सन्मति लाइब्रेरी रक्खा और आज भी है।

---

१ श्रद्धेय तथा पूज्य २ शोकजनक देहात ३ व्यक्तित्व ४. भूतकाल ५ आदरणीय ६ सिर से पैर तक ७. स्वर्गीय ८ कृपापूर्ण ९ पाठ्यक्रम सबधी १०. अधिकारी ११. पुस्तकालय।

पहले तो उनका मतलब व मकसद सिर्फ तुल्बा[12] को इस तरफ रगबत दिलाना था लेकिन इसने शहर भर के जवान, बूढे, मर्द, औरत सबको बडा फायदा पहुचाया। अव्वल २ तो जिस भी मजाक[13] का आदमी अपने मजाक के मुताबिक किताब पढने को लेने गया उसको उसी के मजाक के मुताबिक किताब देना शुरू किया। फिर रफ्ता २ उसे ऐसी किताबें भी सिफारिश के साथ देना शुरू कर देते जिसको वो समझते कि यह अगर पढेगा तो इन्सान बनने में मफीद और कारगर होगी। यू बडी होशियारी से किताबें दे देकर वो माहौल[14] ही बदल दिया करते थे और अक्सर वो लोग जो सिर्फ इस किस्म की किताबें पढते थे जो बिल्कुल गैरमुफीद होती और जिन्दगी के किसी मसरफ मे कारआमद नहीं होती, उनको अपनी नसीहतो और मुश्विरो से दूसरी जानिब मुफीद और कारआमद किताबें दे देकर लगाते थे।

अगर उनसे किसी दीनी या दुनियाई मामले मे तबादला खयालात[15] किया जाता तो उनकी राय निहायत माकूल व मुफीद साबित होती थी। गर्ज कि खुद एक मुकम्मिल इन्सान ही नहीं, बल्कि जो इन्सानियत से दूर थे उनको इन्सान बना दिया करते थे। ऐसे शख्स का किसको रज न हो और दुनिया क्यो न मातम करे? यही ऐसे लोग हैं जिनकी जिन्दगी पब्लिक के सामने लाई जावे। वाज़े रहे कि मास्टर साहब मरहूम मेरे भी प्राइवेट टीचर रहे हैं।

साधुता के लक्षण उनमें पूरे पूरे थे

(श्री श्यामबिहारी लाल भार्गव)

मास्टर मोतीलाल जी सघी के सम्पर्क मे आने का अवसर मुझे सन् १९१२ मे जब मैं चौथी कक्षा मे दाखिल हुआ, तब मिला। आठवी कक्षा तक उन्होंने गणित पढाया। बच्चो की शुरू की शिक्षा मे अध्यापक ऐसा काम करता है जैसाकि एक पिघले हुए धातु को ढालने वाला काम करता है। एक बार ढलने के बाद धातु ठडा होने पर सख्त हो जाता है और जैसी उसकी शक्ल ढल जाती है वह सदा वैसा ही रहता है। इसी तरह जब शुरू मे अध्यापक अच्छा मिल जाये तो उसके सम्पर्क से उसके शिक्षार्थी भी अच्छे हो जाते हैं। खुश नसीबी से मुझे मास्टर मोतीलालजी जैसे अध्यापक मिले और पाँच साल

---

१२ विद्यार्थी १३ रुचि १४ वातावरण १५ विचार-विनिमय

उनका सम्पर्क रहा। मेरी शुरू की शिक्षा में अन्य जो अध्यापक मिले, उनमें मास्टर गगाबख्शजी तथा प्रो० गोविन्द प्रसाद जी के नाम का यहाँ जिक्र किये बिना नही रहा जा सकता।

मास्टर मोतीलालजी बडे प्रेम से और खूब समझा-समझा कर पढाया करते थे जो विद्यार्थी ठीक तरह काम नही करते थे उनको वे एक ही तरह की सजा दिया करते थे। वे हाथ की अंगुलियों के बीच मे तीन पैंसिलें लगा-कर दबाया करते थे। उनका जीवन बहुत सादा था और जो कुछ उनको तनख्वाह मिलती थी उसमे से बचाकर वे गरीब लडकों की मदद किया करते थे। बिल्कुल साधु वृत्ति के व्यक्ति थे। यद्यपि बानि मे वे साधु के रूपधारी नही थे लेकिन साधना के लक्षण उनमे पूरे थे।

उनमे दया का भाव भी खूब था। गरीब विद्यार्थियों को वे खुद भी मदद करते थे तथा और लोगो के पास जाकर उन्हें मदद दिलवाते थे। आज भी उन मदद पाने वालो में से ऐसे हैं जिन्होने उच्च पद भी पाया और उनका काम भी काफी सराहनीय रहा।

पितृ-स्वरूप मास्टर साहब

(श्री केवलचन्द जैन, वैद)

करीब ४१ वर्ष पूर्व की बात है, जब मुझे मास्टर साहब ने शिवपोल स्कूल मे छठी श्रेणी मे भर्ती कराया। उस वक्त से ही मेरे पर उनकी छत्र-छाया रही। मेरी शादी १३ साल की उम्र मे ही हो गई थी जबकि मैं छठी श्रेणी मे पढता था। घर की स्थिति कुछ खराब थी। दुकान वगैरह सब बिक गई थी। मैं उसी वक्त से नोकरी के तलाश मे रहने लगा। लेकिन मास्टर साहब की प्रेरणा से मैं B A तक पहुच गया, क्योकि उनका कहना था कि पढते रहो और नौकरी की तलाश भी करते रहो। जब नौकरी मिल जाय तब पढना छोड देना। विद्यार्थी जीवन मे एक पिता के सदृश उनकी मेरे पर अनु-कम्पा रही। उन्होने मेरे लिये मास्टर लगवाया, हलवाई के यहा दूध की बन्धी करवाई, जहा मैं रोज रात को आधा किलो दूध पी जाता था। किताबें व कॉलेज की फीस का भी उन्होने प्रबन्ध करवाया। मास्टर साहब के साथ साथ मैं अपने ससुर साहब का भी ऋणी हूं क्योंकि मेरी पढाई वगैरह का सारा खर्चा

उन्होंने ही किया। लेकिन यह सब मास्टर साहब की प्रेरणा से था। आखिरकार नौकरी भी उन्होने ही दिलवाई जिससे आज मैं अपने पैरो पर खडा हू।

गर्मी की छुट्टियो मे अक्सर मैं अपने साथियो के साथ लाईब्रेरी चला जाता था और पढा करता था। जब पढ चुकता तो मास्टर साहब मुझे अपने पास बिठा लेते और नई किताबें जो आती उनका रजिस्टर मे इन्दराज करवाते व भजन लिखवाते। रात को भी कभी २ मैं उनके दर्शन करने चला जाता था। उस वक्त क्या देखता कि मास्टर साहब अंधेरे मे किताबो पर गत्ता चढाया करते थे। इससे मैंने जाना कि समय का सदुपयोग किसे कहते हैं। उनके सादे रहन-सहन की, कर्त्तव्य निष्ठा की, हर समय काम मे लगे रहने की, मेरे जीवन पर गहरी छाप है। मै उनको क्या कह कर पुकारू, बस वे मेरे पितृ-स्वरूप थे।

घर में ही बैरागी

(श्री केसरलाल कटारिया)

श्रद्धेय मास्टर साहब के निकट आने का सौभाग्य मुझे आज से करीब ५५ वर्ष पहले जब मेरी आयु १३ वर्ष की थी प्राप्त हुआ था। मेरा जीवन जो कुछ भी है उसके विकास मे मास्टर साहब का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं जब ५ वी कक्षा मे पहुचा तो मेरे पिताजी ने यह ख्याल किया कि उर्दू, फारसी जानने वाले को राज की नौकरी सुगमता से मिल सकती है। मुझे हिन्दी की जगह द्वितीय भाषा उर्दू फारसी दिलाई। मास्टर साहब को यह बहुत अप्रिय लगा और मेरे ६ ठी कक्षा मे पहुचने पर मुझे फिर से हिन्दी-संस्कृत पढने पर मजबूर किया। मेरे यह कहने पर कि इतना कोर्स मै कैसे पूरा कर सकूगा उन्होंने मेरे लिए प्राइवेट तौर पर एक पडित जी को रखवा दिया। उन्होंने मुझे सस्कृत और गणित दोनो विषयो की छठी-सातवी कक्षा में ही मैट्रिक कक्षा तक की योग्यता प्राप्त करा दी। उन्ही की कृपा से मुझे हमेशा गणित मे सौ मे से सौ अक मिलते रहे।

मास्टर साहब की दिनचर्या उन दिनो इस प्रकार रहा करती थी कि सुबह जल्दी ही निबट कर वे एक ट्यूशन पर जाते थे जिसमे करीब ८ बजे आ जाते थे। फिर घर पर विद्यार्थी आजाते थे, उनको पढने मे जो भी कठिनाई होती उसमे सहारा देते थे। खाना खाने बैठते थे उस समय तक भी विद्यार्थियो

को कुछ न कुछ समझाते रहते थे। फिर स्कूल जाते और वहाँ से आकर खाना खाते थे। फिर विद्यार्थियो का जमघट जमता था, उनको फिर रात तक पढाते ही रहते थे। इसी बीच मे यदि किसी छात्र को किताबो, फीस, खाना आदि के लिये द्रव्य की तगी होती तो उसे भी मास्टर साहब ही दूर करते थे।

सादा भोजन, सादा कपडा, निष्कपट व्यवहार, नि स्वार्थ प्रवृत्ति, सदैव आत्म-चिन्तन मे रत रहना और अपनी सारी शक्ति परोपकार, मानव धर्म प्रचार व ज्ञान-प्रचार मे लगाना, यही उनके जीवन की विशेषतायें थी।

पुस्तकालय की बहुत सी पुस्तकें लोगो मे बकाया चल रही थी तो मैंने एक बार प्रस्ताव रखा कि आप लोगो से पुस्तको के लिये जोरदार तकाजा करवावें और जो नही देते हो उनसे उसकी कीमत वसूल करें, नही तो बकाया की सख्या निरतर बढती ही जावेगी। वे हसकर बोले—तू तो बावला है समझता नही है। अरे, पुस्तक का उपयोग पढना है अत जिसके भी पास है वह या तो पढी जा रही होगी या किसी दूसरे से तीसरे-चौथे हाथ मे चली गई होगी। वहा भी उस पुस्तक का वही उपयोग होता है जो हम करते हैं। अब यदि उनके पास पुस्तक रह गई है तो कौनसा अनर्थ हो गया। इसके अलावा जितनी शक्ति हम बकाया पुस्तकें वसूल करने मे व्यय करेंगे उसके बजाय हम उसका उपयोग ज्ञान-प्रसार मे करें, तो बहुत लाभ होगा।

परम स्नेही आप्त पुरुष

(राजवैद्य प० रामदयाल शर्मा)

श्रीयुत परम श्रद्धेय मास्टर मोतीलालजी के दर्शन मैंने अपने पूज्य पिता श्री राजवैद्य नन्दकिशोरजी की आज्ञानुसार किये थे। पूज्य पिताजी ने मुझे ११ वर्ष की उम्र मे मास्टर साहब के पास अपने जीवन के धार्मिक, चारित्रिक तथा आधुनिक जगत् के विशाल एव प्रतिपल विज्ञान परक हो रहे दृष्टिकोण को भारतीयता की दृष्टि से हृदयङ्गम करने की भावना से भेजा था। कहना न होगा कि प्रथम दर्शन मे ही मैंने उनको परम स्नेही आप्त पुरुष के रूप मे सदा के लिए अपना मार्गदर्शक अगीकार कर लिया। उन्होंने मुझे सनातन धर्म की मर्यादाओ पर विश्वास कराने वाली तथा तदनुरूप सर्वधर्मों मे सामञ्जस्य स्थापित कराने वाली लघु कथाओं की पुस्तकें पढने को दी, एव 'णमोकार'

मत्र के दृढ निष्ठापूर्वक अहर्निश स्मरण रखने से कैसे प्राचीन महापुरुषो को बाल्य जीवन मे अद्भुत सफलतायें मिली थी और इस प्रकार आस्तिक्य बुद्धि ही जीवन की सभी सफलताओ की अद्वितीय कुजी है, यह मेरे जिज्ञासु हृदय मे सरलता से आरोपित कर सहज ही सभी अनर्थ परम्पराओ से बचाने वाले 'अहिंसा-सत्य-अस्तेयादि सर्व धर्म सम्मत दशलक्षणक सनातन धर्म पर दृढ निष्ठा उत्पन्न की। यह वस्तुतः उन जैसे महामानव द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। फलत सम्पूर्ण चराचर विश्व मे परमात्मा की सत्ता की अनुभूति से मानवं ऐहलौकिक और पारलौकिक सभी समस्याओं का समाधान करता हुआ मनुष्य जीवन के चरमफल 'धर्म, अर्थ काम, मोक्ष' इन चार पुरुषार्थों की सहज हीं सम्प्राप्ति कर सकता है। यह मेरा विश्वास उत्तरोत्तर वृद्धिगत हो रहा है।

उस महापुरुष की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए किये जा रहे सभी प्रयास इस- व्याकुल विश्व को स्थायी शान्ति प्रदान करेंगे, ऐसी मान्यता है।

सरल एवं स्नेह की मूर्ति

(श्री माधव शर्मा)

मुझे आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व का वह समय अच्छी तरह याद है जबकि स्व० मास्टर मोतीलाल जी के मुझे प्रथम बार दर्शन हुए थे। मैं उन दिनो अग्रवाल मिडिल स्कूल मे पढ़ता था। मास्टर जी की समाज सेवा तथा विद्यार्थियो के प्रति प्रेमभाव के विषय में काफी कुछ सुना। मैं अपने कुछ मित्रों के साथ जो कि मास्टर साहब के कृपापात्र थे उनकी लाइब्रेरी मे दर्शनार्थ गया था। वह सरल एव स्नेह की मूर्ति आज भी मेरे हृदय मे ज्यो की त्यों अकित है। मास्टर साहब के विषय मे ज्यादा क्या कहा जाय वे एक श्रेष्ठ चरित्र निर्माता थे। उनके जीवन का हर क्षण हमारे लिये प्रेरणादायक एव अनुकरणीय है। वे नि.सन्देह एक महान् तपस्वी थे।

मेरे ऊपर सबसे ज्यादा कृपा थी

(श्री सूरजमल पाटनी)

मास्टर मोतीलालजी के साथ मेरा रहना करीव २० वर्ष तक रहा। तीसरी कक्षा से आठवी कक्षा तक तो मैं स्कूल मे पढ़ता ही रहा और उसके बाद भी मैं लगभग रोज उनसे मिलता रहा। मैं समझता हूँ मेरे ऊपर उन हजारो शिष्यो मे से सबसे ज्यादा कृपा थी।

मास्टर साहब ने सन्मति पुस्तकालय जब से शुरू किया उससे पहले भी वे पुस्तकें पढने के लिए दिया करते थे। उस समय अपने मकान पर ही पुस्तकें रखते थे। जो विद्यार्थी पुस्तक खरीदने मे असमर्थ होते थे उन सबको पुस्तकें देने मे वे भरसक प्रयत्न करते थे।

स्कूल के समय मे जब पुस्तको की वी. पी पी. आजाती तो पुस्तकालय से रुपये लाने के लिये मुझे ही भेजते थे। किसी भी समय यदि रुपये कम हो जाते तो मुझे साथ लेकर वे जौहरी बाजार जाते। वे किसी भी दुकानदार से कुछ नही कहते थे परन्तु उनके बगैर कहे ही दुकानदार उनको रुपया दे देते। जब आवश्यकतानुसार रुपया हो जाता तो वे वापिस आ जाते।

मास्टर साहब चलती फिरती लाइब्रेरी थे। वे पुस्तकें घरो मे देने जाते और वापिस भी लाते थे। कई दफा उनको एक ही सज्जन के पास एक ही पुस्तक के लिये कई दफा जाना पडता था। परन्तु इस बात से उनको जरा भी झुंझलाहट नही होती थी।

सरल, मधुर भाषी, निरभिमानी और उदार चरित

(श्री शिवशंकर शर्मा)

खादी का साफा, खादी का कुरता या कोट और खादी की ही धोती पहने हुये मास्टर साहब मोतीलालजी जब देखो अपनी लाइब्रेरी में तल्लीन नजर आते थे। उनके सामने विद्यार्थियों का झुंड बैठा मिलता। मैं तब महाराजा कॉलेज मे बी० ए० की कक्षा मे पढता था। मैं भी लाइब्रेरी मे नियमित रूप से जाने वालो मे से था। लाइब्रेरी द्वारा तो मास्टर साहब की सेवा सबको मिलती ही थी, परन्तु इसके अलावा भी कोई विद्यार्थी ट्यूशन या अन्य तरह से सहायता चाहता था तो मास्टर साहब सदा तत्पर रहते थे।

अत्यन्त सरल, मधुर भाषी, निरभिमानी और उदार चरित मास्टर साहब से मिलते ही आगन्तुक मन्त्रमुग्ध हो जाता था। उनसे मिलने वाले विद्यार्थी तो उन्हें अपना सर्वस्व मानते थे।

मैं स्वर्गीय मास्टर साहब का अत्यन्त उपकृत हूँ।

वे सम्यक्ज्ञान का प्रचार करना चाहते थे

(श्री प० हुकमचद शास्त्री)

मास्टर साहब मोतीलालजी सघी ने देखा कि मानव समाज के पूर्वजो द्वारा उपार्जित ज्ञान की सुविधा का लाभ आज के भौतिकवादी मानव नही उठा रहे हैं। इस सन्दर्भ मे उन्होंने सोचा और बार बार सोचा। अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुचे कि हमारे पूर्वजो के अनुभव शास्त्रो (पुस्तको) मे सचित हैं, अत सर्वप्रथम हमे शास्त्रो (पुस्तको) का सचय करना चाहिये। उन्होने अनुभव किया कि पुस्तकालय मात्र पुस्तको के नही वरन् ज्ञान के आगार हैं। यही कारण था कि उन्होने सन्मति पुस्तकालय की स्थापना की और उसके माध्यम से आजीवन सम्यक्ज्ञान (सन्मति) का प्रचार करते रहे।

प्रसन्नता की बात है कि उनका लगाया हुआ पौधा आज एक विशाल वृक्ष के रूप मे परिणित होने जा रहा है। यही उनका सच्चा स्मारक होगा और हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि। पर उनकी आत्मा को शान्ति तब मिलेगी जब हम उक्त पुस्तकालय से लाभ लेकर सम्यक्ज्ञान (सन्मति) प्राप्त करें। उन्होंने इस पुस्तकालय का नाम 'सन्मति पुस्तकालय' बहुत सोच समझ कर रखा होगा। सन्मति नाम से प्रतीत होता है कि वे सम्यक्ज्ञान का प्रचार करना चाहते थे, तथा जीवनभर वे ऐसा करते भी रहे। अत हमारा कर्त्तव्य है कि उक्त पुस्तकालय मे हम वीतरागता का पोषक सत्साहित्य का अधिकाधिक संग्रह करें। भोगोन्मुखी दृष्टि का प्रतिपादक साहित्य सत्साहित्य नही है, उसके प्रचार और प्रसार से आत्म शान्ति प्राप्त नही हो सकती।

मेरे लिए गुरु का रूप

(श्री हरदेव दाउजी)

प० मोतीलालजी शास्त्री और मास्टर मोतीलालजी—ये जयपुर की दोनो ही विभूतिया आज दिवगत होचुकी हैं। पर इन दोनो की स्मृति मेरे मन मे तो हमेशा रहती है। मास्टर मोतीलालजी के यहा मैं मोतीलालजी शास्त्री के साथ जाया करता था। उन्होंने मुझे अमरकोश और लघुकौमुदी दोनो ही पुस्तकें खरीद कर दी थीं। मेरी चित्रकला की प्रेक्टिस उन्हें पसन्द थी। मैंने उनका एक चित्र भी बनाया था। वे मुझे दादा कहा करते थे। मेरा यह नाम शायद उन्होने भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के मुख से सुना था। कभी २ वे मुझे 'दद्दूजी' भी कह दिया करते थे। 'दद्दू' नाम मेरा बचपन का है। मास्टर साहब बडे गुणग्राही थे इसलिये वे मेरी उद्दण्डता को भी सहन कर लेते थे। मैं गरीब छात्र था और संस्कृत कॉलेज मे पढता था। एक बार उन्होने मुझे किसी जैन बन्धु से ५) रुपये भी दिलवाये थे। मोतीलालजी शास्त्री मेरे सहपाठियो मे से थे। पर मास्टर मोतीलालजी तो मेरे लिए गुरु रूप मे ही थे क्योंकि वे मुझे पढने की प्रेरणा दिया करते थे।

उनमें मनुष्यता कूटकूट कर भरी थी

(गोविन्द प्रसाद शास्त्री)

स्वर्गीय मोतीलालजी मेरे परममित्रो मे से थे। उनका जीवन बडा सरल और वे शान्त प्रकृति के मानव थे। उनमे परोपकार की भावना अति-तीव्र थी। उनमे लालच लेशमात्र भी न था। वे अपनी सतति के समान ही अन्य की सतति को वडे परिश्रम के साथ पढाया करते थे और दरिद्र छात्र के लिए सहायता भी दिया करते थे। पाठ्य पुस्तकें देना तो उनके बांये हाथ का खेल था। वे मिलनसार मानव थे और उनमे मनुष्यता कूट २ कर भरी हुई थी। उन्होने अपने जीवन मे एक सन्मति पुस्तकालय भी खोला था। उसमे सभी विषयो की पुस्तकें मौजूद हैं। उक्त मास्टर जी धार्मिक, ऐतिहासिक एव सामाजिक पुस्तके साधारण मानवो के और विद्वानो के घरो मे स्वय पहुच कर पढने के लिए दिया करते थे। वे कितनी ही वार मेरे यहां भी पुस्तकें पहुचा दिया करते थे। उनमे विशेषता यह थी कि दी हुई पुस्तक समय पर लेने के लिये स्वय आ जाया करते थे और दूसरी पुस्तक दे जाया करते थे।

कर्मवीर व्यक्ति

(श्री कल्याण शर्मा)

समाज सेवी होने के नाते मैं मोतीलाल जी को जान गया था। ये वहुत वडे कर्मवीर व्यक्ति थे। इन्होने जयपुर की जनता को अपने पुस्तकालय से अधिक से अधिक ज्ञान वाटा था। मैं भी इनके पास से २-३ पुस्तकें लाया था, कई महीनो वाद मैंने वे पुस्तकें वनस्थली से वापिस आकर जमा करा दी थी। श्री मोतीलालजी को पुस्तकें वांटने मे वहुत दिलचस्पी थी। वे पुस्तकें खो जाने पर भी किसी से नाराज नही होते थे। उन्होने अपने जीवनकाल मे हजारो लोगो की सेवा की।

अनुकरणीय व्यक्तित्व

(सुश्री सुशीलादेवी कासलीवाल)

विद्यार्थियो के नवनिर्माता मास्टर मोतीलालजी अपने समय के एक युगद्दष्टा, विद्यार्थियो के नवनिर्माता तथा कर्मठ भाग्य विधाता कहे जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

सन्मति पुस्तकालय उनके लगन, समाज-सेवा, उत्साह, सहानुभूति, कर्त्तव्यपरायणता, नवीन प्रेरणा, एक नही विविध कार्य क्षेत्रो की विभिन्न प्रणालियो के अक्षय कोष के रूप मे इतिहास के स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा।

अध्यापक ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र में मार्गदर्शक

(श्री गगासहाय पुरोहित)

मेरे लिये मास्टर साहब अध्यापक ही नही बल्कि जीवन के हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने मे प्रयास करने के मार्ग दर्शक थे। स्कूल मे, कॉलेज मे, सरकारी सेवा मे, पारिवारिक व्यवहार मे तथा अन्य उलझनो के हल करने मे मुझे उनसे दीक्षा मिली और वह शान्तिमय और प्रेमपूर्वक जीवन विताने मे बहुत बडा सहारा रही है।

जिन दिनो मेरा मास्टर साहब से परिचय हुआ तब मैं बच्चा ही था। मेरी अवस्था उस समय १४ वर्ष की थी। मैं उस वक्त सप्तम श्रेणी का छात्र था और वे अक गणित एव रेखा गणित पढाया करते थे। उनकी शिक्षण पद्धति इतनी मनोवैज्ञानिक एव उत्तम थी कि विद्यार्थी को घर पर जाकर काम करने की आवश्यकता ही नही होती थी। उनके शिक्षण देने के इस मनोवैज्ञानिक ढग ने अक गणित जैसे कठिन विषय को भी हमारे लिये सरस एव सरल बना दिया था। यह सब शिक्षण पद्धति के कारण ही नहीं वरन् उनके पैतृक प्रेम एव सम्मान के कारण भी था। उनका प्रेम किसी व्यक्ति के प्रति ही हो ऐसा कभी नही होता था। उनका सभी के प्रति ऐसा प्यार था

कि हरेक विद्यार्थी इस बात का प्रयास करता था कि वह मास्टर साहब की उच्चता एव भावनाओ को पा सके।

विद्यार्थी जीवन की समाप्ति के बाद जब कभी मै आदरणीय मास्टर साहब के पास जाता वे मुझे हमेशा नैतिक एव आध्यात्मिक शिक्षा ही दिया करते थे और कह सकता हू कि यदि मानव उन्हे अपने व्यावहारिक जीवन मे काम मे ले तो वह निश्चय ही जीवन की सफलता के उच्च स्तर पर पहुच सकता है। आदरणीय मास्टर साहब की शिक्षायें इतनी हृदयस्पर्शी एव तथ्य पूर्ण होती थी कि वे स्वयमेव ही जीवन के दिन-प्रतिदिन के आचरण मे व्यवहारिक रूप से काम मे आती थी। उनके इसी गुण एव योग्यता ने मास्टर साहब के जीवन को एक विशेष साचे मे ढाल दिया था।

मास्टर साहब जैसी महान् शक्ति बडी मुश्किल से मानव जाति को उपलब्ध होती है। जयपुर की जनता के लिये तो उनका जीवन एक पुण्य पर्व ही था। यह हम सब का परम कर्त्तव्य है कि मास्टर साहब की दी हुई सम्पत्ति को आगे आने वाली पीढी के उपकार के लिये उपयोग मे लें और इस कर्त्तव्य का पालन उनकी स्थापित की हुई सस्था श्री सन्मति पुस्तकालय को पूर्ण योगदान तथा उसके सचालन मे सहायता देने से कर सकते है।

आदर्श जीवन

(श्री सागरमल बज)

यह बात करीबन सन् १९३७ की है, जब मास्टर साहब ने मुझे दरबार हाईस्कूल की तृतीय कक्षा मे प्रवेश कराया। मै अपने को बडा भाग्यशाली मानता हू जो मुझे मास्टर साहब को नज़दीक से देखने और समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ क्योकि मास्टर साहब चौमू से पधार कर मृत्यु पर्यन्त हमारे मकान मे ही रहे।

मुझे मास्टर साहब सदैव जैन धर्म की शिक्षा देते रहते थे और गणित की पढाई कराते थे। मास्टर साहब की हार्दिक इच्छा थी कि मैं किसी तरह मैट्रिक पास अवश्य करलू। परन्तु मै शुरू से ही हठग्राही था। पढते-पढते ही हठ सवार हो गई कि दसवी कक्षा मे वार्षिक परीक्षा मे भी नही बैठा। मास्टर साहब ने मेरे लिये दो अध्यापक मना करने पर भी स्वय

के खर्चे से लगाये परन्तु मैंने पढना स्वीकार नही किया फलस्वरूप आज तक मैट्रिक पास नही कर सका ।

मास्टर साहब जैसा सादा जीवन, उच्च विचार व परोपकार से परिपूर्ण व्यक्तित्व नजर ही नही आता है । उनके जीवन मे करुणा तो कूट-कूट कर भरी थी । वे बार-बार प्रेरणा देते रहते—बेटा ! प्राणी को ख्याति, लाभ व पूजा पाने का लालच डुबो देता है, इसको हृदय के किसी भी कोने मे जगह न देना और जीवन मे, यह बात सदैव याद रखना कि जीवमात्र का कल्याण हो और मेरे द्वारा किसी भी प्राणी को कष्ट न हो ।

एक बात मुझे जीवनभर प्रेरणा देती रहेगी । मास्टर रूपचन्द जी चौकसी के सामने एक लकडहारा छोटेखा रहता था । उसकी वृद्धावस्था थी, देखने और चलने से मजबूर हो चुका था । मास्टर साहब ने दोनो समय उसका भोजन पहुँचाने की ड्यूटी मेरी लगाई । एक बार मैंने प्रश्न किया कि बाबा साहब वह तो मुसलमान है, अभक्ष का सेवन करता है, उसको भोजन देने से क्या लाभ ? उत्तर पाया भैया, इसमे भी आत्मा वही है जो चीटी और हाथी मे है । यह विचार-सकीर्णता है । तुम्हे सदैव प्रत्येक मे समान आत्मा देखने का प्रयत्न करना चाहिये ।

मानव पर उनका विश्वास कितना अटूट था !

(श्री विक्रमप्रसाद सूद)

मास्टर साहब श्री मोतीलालजी से मेरा सम्पर्क अधिक तो नही रहा परन्तु जो भी रहा उसकी स्मृति मेरे मानस पटल पर आज भी विद्यमान है । उनसे प्रथम साक्षात्कार सन्मति पुस्तकालय भवन मे हुआ जब मैं उनसे कुछ पाठ्य पुस्तकें लेने गया था जिन्हे मैं खरीद नही सका था । मास्टर साहब सादा कपडे मे रूई का आत्मसुख व टोपा पहिने बैठे थे—मैंने ४-५ पुस्तकें पुस्तकालय से एक बार ही लेनी चाही—मास्टरजी ने बिना हिचकिचाहट, जमानत के तत्काल पुस्तकें मुझे देदी—जबकि मैं उनके लिये बिल्कुल अपरिचित था ।

मानव पर उनका विश्वास कितना अटूट था ! मैंने भी पुस्तकें जल्दी से जल्दी पढकर लौटाई और उनका विश्वास सम्पादन किया ।

मास्टरजी मेरे जैसे कितने ही विद्यार्थियो की इस प्रकार पाठ्य पुस्तको की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। जिनके पास फीस नही होती, फीस की व्यवस्था करते थे। विशेषकर बिना किसी को बताए, जताए यहा तक कि विद्यार्थी को भी। मैं स्वय अपने प्रारम्भिक सेवा काल मे अध्यापक भी रहा हू छात्र की मानसिक व्यथा का सहज ही अनुमान लगा सकता हू कि पढना चाहते हुए भी फीस के अभाव मे पढने मे कितनी कठिनाई होती है। कितना बडा पुण्य कार्य करते थे राहत का, जीवन सुधार का। मास्टर साहब का मृत्यु पर्यन्त यह क्रम बराबर रहा। मर कर भी, आज तब ही तो वे अमर हैं।

विवेक की ठेस

(श्री वी. एल अजमेरा)

पिछले ४५ वर्षों के जीवनकाल मे कितनी ही बार मास्टर मोतीलाल जी की स्मृतिया ताजा हो उठी हैं। मेरे बाबा स्व० श्री नेमीचन्दजी मथुरा-वाले और मास्टर साहब परम मित्र थे और बाल्यकाल मे अनेक बार उन दोनो के बीच मे बैठने का सुअवसर मुझे मिलता रहा।

मेरे बचपन मे मास्टर साहब स्वय मेरे मकान पर आकर लघु धार्मिक कथाओं की पुस्तकें दे जाया करते थे। पुस्तकें देते समय वे यह बताना नही भूलते थे कि अमुक पुस्तक का कौनसा पृष्ठ अथवा कौनसी पक्ति विशेष रूप से मनन करने योग्य थी। बाल्यकाल मे मैं बहुत ज्यादा लापरवाह था और न तो पुस्तकें पढने की चिन्ता करता था और न ही सन्मति पुस्तकालय में समय पर पुस्तकें लौटाने की। कितनी ही बार पुस्तकें खो भी दी थीं। मास्टर साहब स्वय मेरे मकान पर पधार कर पिछली बार दी हुई पुस्तकें लेते और नई पुस्तकें दे जाते। जाते-जाते धार्मिक प्रवृत्ति के साथ मधुर वचन बोलना-कभी नही भूलते थे। कभी-कभी जैन धर्म का प्रमुख सैद्धान्तिक 'णमोकार मन्त्र भी सुना जाते थे।

एक बार मास्टर साहब ने 'मेरी भावना' नामक पुस्तक मुझे दी और सलाह दी कि उसका मैं नित्य प्रात पाठ किया करू। कभी-कभी उस पुस्तिका को मैं पढ़ लिया करता और फिर असावधानी से इधर-उधर डाल

देता। एक बार मास्टर साहब ने पूछा, "बाबू, 'मेरी भावना' की कौनसी पक्ति तुझे पसन्द आई।" जहा तक मुझे याद है, कुछ अजीब सा उत्तर मैंने दिया, "कुछ भी पसन्द नही आया, न कहानी, न किस्सा, उपदेशो से भी कही मन भरता है।" उन दिनो मैं चन्द्रकान्ता सन्तति के एक के बाद एक भाग बडी तेजी और मादकता के साथ पढ रहा था। किन्तु मास्टर साहब ने हार नही मानी, बोले, "तू ठीक ही कहता है। मेरी भावना की सारी पक्तियो को रटने की क्या आवश्यकता है। किन्तु इस पुस्तिका की केवल दो प्रारम्भिक पक्तियो को ही जीवनभर याद रखना। सभव है जीवन के रहस्यमय दरवाजे तेरे सामने खुलते चले जायें।" मुझे तनिक उत्सुक देखकर मास्टर साहब ने दो पक्तिया बोली, "जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।" उस समय इन पक्तियो का सुनना मेरे लिये मजाक मात्र था।

किन्तु जीवन के ४५ वर्ष के कालान्तर मे राग-द्वेष और काम की लहरो पर जो जीवन-नौका चलती रही है, उसमे रह रह कर सब जग जान लेने की कसक भी जी उठती है। राग की अपनी ही एक दुनिया है किन्तु इसी मे द्वेष की ज्वाला भी छिपी रहती है और राग की सीमायें खत्म होते ही द्वेष की सीमायें आरम्भ होजाती हैं। और काम, वह विश्व-नियन्ता वासना, किसकी शक्ति है कि उसको चुनौती दे और निर्लिप्त रह सके।

निरन्तर और निरन्तर, मास्टर साहब की स्मृति के साथ जुड जाती है— राग-द्वेष और काम की वह स्वप्निल मायानगरी, जिसकी निद्रा मे मैं सो रहा हू, कभी-कभी 'विवेक की ठेस' लगती है और मास्टर साहब सामने खडे दिखते है, या मेरे मक़ान के आगे सन्मति पुस्तकालय की ओर सन्तवेष मे एक पक्ति खीचते से दिखते हैं। यदि मुझे अपने आपको अपने ही बन्धन से मुक्त करके विराट के दर्शन करने हैं तो राग-द्वेष और काम के इस महासागर मे निर्लिप्त नौकानयन करना पडेगा। पता नही, कभी जग को जानने के दरवाजे खुलेंगे या नही ? खुले या न खुलें, मास्टर मोतीलालजी की स्मृति-रेखायें क्षितिज के उस पार तक खिचती चली जायेगी।

वे जाति, सम्प्रदाय, धर्म के दायरे से ऊपर थे

(श्री हरिकिशन)

प्रतिदिन कितने आदमियो से हमारा सम्पर्क होता है, कौन हमारे लिए क्या करता है व उसके प्रत्युपकार में हम कुछ कर पाते हैं या नही—यह बात वस्तुत हम जानते हुए भी नही जानते से रहते हैं। प्राय यह देखने मे आता है कि कोई व्यक्ति यदि किसी के प्रति कोई कर्तव्य निभाता है तो तुरन्त ही उसकी चर्चा पत्रो मे पढने को मिल जाती है किन्तु इसका अर्थ तो यह रहा कि वहाँ मानवता कर्तव्यपरायणता के रूप मे न होकर दिखावे के रूप मे अधिक है। इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो स्वय का तनिक भी ध्यान न रख अपने आपको केवल दूसरो के लिए अर्पित करना अपना कर्तव्य समझते हैं। स्वर्गीय श्री मास्टर साहब मोतीलाल जी वास्तव में इसी प्रकार के व्यक्ति थे। यदि उन्हे व्यक्ति सम्बोधित न कर देव कोटि मे रखा जावे तो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मास्टर साहब सबके लिए समान रूप से कल्याण की भावना रखते थे। मैं स्वय अब तक यह अनुभव करता था कि मुझमे वे पारिवारिक सबधो के कारण अधिक स्नेह रखते थे। उनके जितने भी कृपा पात्र सज्जनो से जैसे २ मेरा सम्पर्क हुआ तब मैं जान पाया कि सभी मेरी धारणा के अनुरूप ही अनुभव किया करते थे। इसका निष्कर्ष यह रहा कि मास्टर साहब के हृदय में सबके लिए समान रूप से कल्याण की भावना रहती थी। वे जाति, समुदाय, देश तथा धर्म विशेष के सकुचित दायरो से ऊपर थे। प्राणी मात्र के लिए सेवा-भाव तथा कल्याण की कामना उनका उद्देश्य था तथा उसके लिए उनका प्रयास असाधारण व अद्वितीय था। वे क्षण भुलाये नही जाते कि वे जैसे ही किसी को आया देखते, एक छोटी सी पुस्तिका या किसी पत्र-पत्रिका का लेख पढने को देते। दो तीन बार पढने को कहते व फिर पूछते कि क्या समझ पाये। सही उत्तर पाकर सुख का अनुभव करते व तत्पश्चात् विशेष व विशद् रूप से उस बात को समझाते व फिर निश्चय करते कि जो कुछ कहा गया वह यथावत् समझ में आया या नही। अब जरा सोचिये, इस भौतिक व यान्त्रिक सदी में जहा लोग अपने जीवन को केवल स्वयमेव ही समझते हैं व दूसरे का यदि ध्यान रखते हैं तो इस रूप मे कि सम्भ्रम मे डाल कर उससे स्वय लाभ उठावें। ऐसे समय मे मास्टर साहब जैसे मूक मानव-सेवी के लिए तो यही समझा

जावेगा कि ईश्वर ने उन्हे मानवता का साकार रूप दिया। हम सब उनके निर्देशन के अनुसार कार्य करें, यही उनकी आत्मा को शान्ति पहुचाने का सबसे उत्तम तरीका है।

आदर्श शिक्षक

(श्री राजबिहारीलाल)

मास्टर मोतीलालजी सघी से मैं सन् १९१७ से १९२० तक पढ़ा। मास्टर साहब समय के बहुत पाबन्द थे एव छुट्टिया भी कभी कभी वर्ष मे एक दो दिन की ही लेते थे। वे सदा सादा व सज्जन वेश ही धारण करते थे। अगर कभी बहुत ही सर्दी पडी तो पगडी या टोपे के ऊपर ही गुलूबन्द लगा लेते थे। वे रास्ता भी धीरे धीरे तय करते थे और साथ ही साथ थैले मे से निकाली हुई पुस्तक भी पढते रहते।

जब हम लोग नौकर होगये थे तब श्री मास्टर साहब कुछ किताबें लेकर घर पहुचते और दो-चार पुस्तकें उनके गुण बताकर हमे देते एव आग्रह पूर्वक उन्हें पढने की आज्ञा देते। वे सप्ताह-दो सप्ताह मे उन पुस्तको को ले जाते एव नई पुस्तक छोड जाते। घर के बालको से यदि कोई पुस्तक फट भी गई या अस्त व्यस्त हो गई तो उन्होंने उसके लिये जरा सा भी रोष कभी प्रकट नही किया।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता मु शी रसिक विहारी लाल जी, जो नायब फौजदार थे, उर्दू और फारसी के जानने वाले थे, और हिन्दी का अभ्यास तो उन्हे नही के बराबर था लेकिन 'हुसने-अव्वल' नामक दर्शन शास्त्र की एक पुस्तक उनके हाथ पर रख कर मास्टर साहब ने मौलाना को पण्डित बना दिया।

मास्टर साहब मुझे हमेशा 'राजा' कहकर संबोधित करते थे। जब नगरपालिका जयपुर का प्रशासन-कार्य मेरे सुपुर्द हुआ तो उनका राजा कहना सत्य हुआ।

मास्टर साहब जाति-पांति व धर्म आदि के झगडों से ऊपर थे। उनके सब विद्यार्थियो को उनसे सदा समान व्यवहार मिलता था।

मास्टर जी की कुशल ट्रेनिंग ने ही हम लोगो मे अनुशासन, बडों के प्रति श्रद्धा एव समय का मूल्य समझने की भावना पैदा की।

वास्तव मे मास्टर साहब का जीवन आदर्श शिक्षक का था।

सच्चे प्रेम और सेवा की मूर्ति

(श्री कपूरचन्द लुहाडिया)

मेरा बचपन से पूज्य मास्टर साहब से सपर्क रहा। मैंने इनके पास कक्षा ४ से ८ तक अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात् भी मेरा उनसे सपर्क बराबर रहा। जब भी मैं उनसे मिलता तब ही मुझको कुछ उपदेश दिया करते थे—उनके उपदेशो का मेरे विचारो तथा जीवन पर भारी असर पडा। उनका सब विद्यार्थियो के साथ प्रेम व सेवा का व्यवहार रहता था। जिन विद्यार्थियो की पढाई मास्टर साहब सतोषजनक नही समझते थे उनको आग्रह के साथ अपने घर पर नि शुल्क पढ़ाया करते थे। पढाई के अतिरिक्त विद्यार्थियो को पाठशाला मे ही छुट्टी होने के बाद या घर पर धार्मिक व नैतिक शिक्षा दिया करते थे। प्रत्येक विद्यार्थी को गहन ज्ञान कराने का उनका प्रयत्न रहता था।

उन्होंने राज सेवा मे रहते हुए ही सन्मति पुस्तकालय की स्थापना की। उस समय उनके पास वेतन के सिवाय कोई आर्थिक साधन नही था। इस सीमित साधन से ही उन्होने पुस्तकालय का शनै शनै· विस्तार करना प्रारभ किया।

राज्य-सेवा मे निवृत होने के पश्चात् उन्होने अपना जीवन आत्म चिन्तन व मानव सेवा मे ही लगा दिया। घर-घर जाकर धार्मिक व ज्ञानवर्धक कितावें देकर पढने का आग्रह करना व विद्यार्थियो और नि स्सहाय परिवारो को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना ही उनका मुख्य कर्त्तव्य था। वे एक सच्चे प्रेम व सेवा की मूर्ति थे।

उन्होंने चारो पुरुषार्थों को साकार रूप दिया

(श्री कबूलचन्द जैन)

स्वर्गीय मास्टर मोतीलाल सघी का जीवन एक आदर्श जीवन था। उन्होने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को साकार रूप दिया, जबकि अधिकतर लोग अर्थ और काम के चक्कर मे अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। मास्टर साहब ने अपने समय को अर्थ और काम के भवर से निकाल कर दूसरो को बिना किसी भेद भाव के मार्ग दिखाया और घर जाकर पुस्तकें वितरण की तथा वापिस लेते तथा देते रहे। उन्होने प्रेरणा देकर कौनसी पुस्तक उन्हे, पढनी चाहिए तथा वह किस पुस्तक के पढने के योग्य हैं, इस बात को भली प्रकार जान कर जनता का अटूट उपकार किया। मैंने स्वय सन्मति पुस्तकालय से अनेक पुस्तकें प्राप्त करके पढी हैं, जिनके द्वारा मुझे बहुत लाभ हुआ। किन्तु सर्व साधारण लोग बिना किसी मार्गदर्शक के इन पुस्तको के समुद्र मे से चन्द पुस्तकें छाटकर तथा पढकर पूर्ण लाभ नही उठा सकते हैं। इसे समझ पाना अति कठिन है।

गरीब विद्यार्थियो की मदद की

(श्री सूरजनारायण सेठी वकील)

सघी मोतीलालजी डिग्री याफ्ता नही थे, वे सिर्फ मेट्रिक पास थे। मगर गणित मे खूब प्रवीण थे। मैट्रिक तक के विद्यार्थियो मे जो कमी गणित मे होती थी उसे वे पूरी करा देते थे। वे गरीबी भोगे हुए विद्यार्थी थे अत गरीबी की मुसीबतो को जानते थे, इसलिए गरीबी लडको को एक घन्टे तक पढाकर सिर्फ १०) रु० माहवार ट्यूशन का लेते थे।

इनके सिर्फ एक लडका व एक लडकी थी। इनकी धर्मपत्नि बहुत जल्दी मर गई थी। लडकी का ब्याह मा ना ूलालजी के भतीजे से किया था। इनकी लडकी भी जल्दी मर गई थी। इसके पश्चात् इनके दामाद ने दूसरा विवाह नही किया। वे जयपुर से जाने के पश्चात् गाधीजी की पार्टी मे शामिल हो गये व सारी उम्र गान्धी जी के साथ रहे।

उनके विचार वडे शुद्ध थे। वे थोडे खर्च मे अपना जीवन व्यतीत करने के आदी थे।

सर्दी से उनके कानो को ठंड वहुत लगती थी। इसलिए पगडी पर ऊनी गुलूवन्द वान्धकर वे रात तक टयूशनों पर जाया करते थे। और एक सप्ताह तक जो नीद मे कमी रह जाती उसको रविवार को दिन मे सोकर पूरा किया करते थे।

मास्टर साहव वहुत दयालु थे। वे गरीब विद्यार्थियो की हर तरह की मदद रुपये आदि व पुस्तको से देना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

विद्यार्थियो को पुस्तकी की मदद देने के सिलसिले मे उन्होने श्री सन्मति पुस्तकालय की नीव डाली थी। पास हुए विद्यार्थियो से उनकी पढी हुई पुस्तकें ले लेना और उनको स्टॉक के रूप मे पुस्तकालय मे जमा करना और जो विद्यार्थी पुस्तकें खरीदने मे असमर्थ होते, उन्हे पढने के लिये दे देना और पढाई समाप्त होने पर उनमे वापिस ले लेना और दूसरो को दे देना और इसी रूप मे यह पुस्तकालय शुरू मे स्थापित किया गया था।

गरीव विद्यार्थियो मे जिनके पास परीक्षा की फीस देने के लिये नही होती थी उनको फीस के लिए स्वय या किसी के द्वारा सहायता करते थे।

मास्टर साहव वडे विद्या प्रेमी थे।

दिगम्वर जैनियो मे सन् १९०६ के वाद १९२९ तक कोई B A नहीं हुआ, इसका उस समय विद्या प्रेमियो को काफी दु ख हुआ।

श्री मोतीलाल जी दीवान, श्री अर्जुनलालजी सेठी व स्वय मैने विद्या के प्रसार के लिये काफी प्रयत्न किये।

मास्टर साहव मे सच्चाई थी। वनावट जरा भी न थी। वे घर पर सिर्फ खाना खाने के लिये आते थे, वाकी समय पुस्तकालय मे ही व्यतीत करते थे एव दरी विछाते थे और सर्दी मे एक लिहाफ ओढते थे। सादा खाना खाते थे। दूध जरूर पीते थे। सादा वस्त्र धारण करते थे। उनकी तवीयत का झुकाव वैराग्य की ओर था। धर्म की पुस्तकें छपवाने व उनका प्रचार करने मे भी काफी मदद देते थे।

सर्वार्थ सिद्धि छपवाने मे उन्होने वहुत मदद दी थी।

वावू जुगल किशोर मुखतार ने जो मेरी भावना पुस्तक लिखकर छपवाई उसकी सैकडो प्रतिया लोगो मे वितरित की। यह पुस्तक उन्होंने ठाकुर साहव चौमू को भी भेंट की। उन्होने इससे प्रभावित होकर करीव ४००

प्रतिया खरीद कर अपने यहा वितरित कराई और यह घोषणा की कि जो व्यक्ति पहिले याद करके मुझे सुनायेगा उसे ५) रु० इनाम दिया जायेगा ।

मास्टर साहब ने कई भजन भी याद कर रखे थे। आत्मा मे शक्ति कायम रखने के लिये उन भजनो को भी कभी कभी बोलकर अपनी आत्मा को शात बनाते थे।

सन्मति पुस्तकालय को स्थापित करने के बाद वे पुस्तको का एक गट्ठा बनाकर घर-घर जाते और लोगो के दिल मे किताब पढने का शौक लगाने के लिए किताबें बाँटते तथा पढने के बाद वापिस ले आते थे तथा उनसे पढे हुए के बारे मे जानकारी प्राप्त करते ।

सन्मति पुस्तकालय के लिये पुस्तको को एकत्रित करने के लिए मास्टर साहब ने आम समाज से चन्दा एकत्रित किया था। इस कार्य मे मैं भी उनके साथ रहता था।

मास्टर साहब स्वय समाज के कार्य करते थे तथा दूसरो से भी करवाते थे। मु शी प्यारेलालजी को सामाजिक कार्यों मे सहायता देने का शौक भी उन्होने दिलाया था।

मास्टर साहब जिस किसी बडे व्यक्ति के पास जाते थे तो मुझे भी वे साथ ले जाते थे। इसलिए मुझे उनके हरएक काम की जानकारी है।

चाकसू के चौक मे पुस्तकालय के सम्बन्ध मे बात यह है कि श्री कपूर चन्दजी काठ ने मास्टर साहब से पुस्तकालय भवन ले लिया था। उस समय इस पर मास्टर साहब को काफी दु ख हुआ था।

आदर्श मुनि

(डा० गिरधरलाल अजमेरा)

जयपुर नगर के शिक्षित समुदाय का किसी वर्ग व धर्म का कोई विरला ही व्यक्ति ऐसा होगा जो स्वर्गीय मास्टर साहब को न जानता हो। इस महान आत्मा के परोपकार, उदार हृदय, शिक्षा प्रसार-प्रेम को सभी जानते हैं।

मेरा सम्पर्क मास्टर साहब से १३ साल उम्र से था। मैं उस समय छठी कक्षा में पढता था। मास्टर साहब ने मुझे पुस्तकालय मे बुलाना शुरू किया और जब कभी मैं नही जाता तो मेरे पिताजी के पास पत्र लिखा दिया करते थे। वैसे तो उनकी हर बात नसीहत से भरी थी मगर दो-चार बातो का असर मुझ पर जिन्दगी भर पडा।

दुनिया मे सुखी कौन?

एक बार हम चार-पाच बच्चे इनके पास बैठे थे। मास्टर साहब ने हमसे पूछा—बेटा! बताओ दुनिया मे सुखी कौन? किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ। उन्होने फरमाया कि दुनिया मे सुखी वही है जो मोटा खाये, मोटा पहने। उन्होने एक दृष्टान्त दिया कि उनके एक मुस्लिम मित्र थे। वे रेल्वे मे बुकिंग क्लर्क थे। तनख्वाह २५) माहवार थी। घर मे वे थे उनकी स्त्री थी और दो बच्चे थे। उनकी स्त्री खुद अपने हाथ से पीसती थी, खाना बनाती थी, बर्तन माजती थी। ४ प्राणी इस २५) मे बहुत सुखी थे। धीरे २ इनकी तरक्की होती गई और आखिर मे स्टेशन मास्टर बन गए। उस जमाने में स्टेशन मास्टर को १५०) मिलते थे। रिश्वत के तौर पर हजार पाचसौ माहवार और आने लगे। जैसे २ तरक्की होती गई उन्होंने अनाब शनाब खर्चे बढा लिए। बगला, घोडा-गाडी, नौकर और बच्चों के लिए अलहदा गाडी वगैरह होगये। उस जमाने में करीब १५००) माहवार का खर्च बढा लिया। शराब पीने की भी आदत होगई। ऐशो आराम मे जिन्दगी काटने लगे। यकायक उन पर रिश्वत का मुकद्दमा कायम होगया। सस्पैंड कर दिए गए और ६ महीने के बाद वे मुकदमा जीत गए मगर पेन्शन होगई। पेन्शन ७५) माहवार की हुई। पूरी जिन्दगी बडे दुख से कटी। एक लडका भी मर गया। लडकी आवारा हो कर किसी के साथ भाग गई। रह गए दो मिया बीबी। कर्जदार होकर दु ख की

जिन्दगी पूरी करके इस ससार से चल बसे। मास्टर साहब फरमाते थे कि जो ४ जीव २५) माहवार में मोटा पहन कर, मोटा खाकर सुखी थे, वे ऐशो इशरत के चक्कर मे आकर बहुत दुखी होकर मरे।

सबसे ज्यादा कीमती चीज क्या है ?

हम से मास्टर साहब ने पूछा—बेटा, दुनिया मे सबसे ज्यादा कीमती चीज क्या है ? किसी ने कुछ बताया किसी ने कुछ। मास्टर साहब ने फरमाया सबसे ज्यादा कीमती चीज दुनिया मे वक्त है। गया हुआ एक मिनट भी फिर इस जिन्दगी मे वापस नही आता। इस वास्ते एक एक पल मनुष्य को सही उपयोग में लगाना चाहिए और मेहनत की आदत डालनी चाहिए।

मनसा पाप

हम बच्चे लोग सब मिल कर एक दूसरे की बुराई किया करते थे। एक रोज मास्टर साहब ने सुन लिया, बहुत जरूरी काम जा रहे थे मगर करीब आधा घण्टा रुक कर हमको नसीहत की बात सिखाते रहे। असल मकसद मास्टर साहब का यह था कि किसी मनुष्य के प्रति तुम खराब विचार करोगे उसी वक्त मनसा पाप का कर्म तुम पर बन्ध जावेगा। खराब विचार करने से दूसरे मनुष्य का कुछ नही बिगाड सकते तो पाप कर्म भी क्यो बाधते हो ? मनसा पाप सबसे बडा पाप है।

महामना सिद्ध पुरुष

(बसन्तलाल मुकीम)

सन्मति पुस्तकालय कहे या मास्टरजी निर्जीव व सजीव एक ही रूप या कहा जाता है एकान्त की साधना साधक को सिद्धि के लिए चाहिए आत्म कल्याण के हेतु। लेकिन मास्टर साहब की साधना जनता के बीच चली, साधक के रूप में। पर कल्याण हेतु और सिद्धिया इस योगी के चरणों में सदैव लोटती रहीं। जनहित की कामनाओं मे कैसा समन्वय था, कैसा था यह योग! कैसी थी यह साधना! कैसी यह तपस्या इस महर्षि की! जो अपने मे एक ज्वलन्त उदाहरण है !

जयपुर नगर को धर्म-तीर्थ बना कर स्वय धर्म-तीर्थ के स्थापक बन गये। इस महात्मा के लिए हिमालय की कन्दरा मे, नदी तालावो के तट, घने वन-उपवन, सिद्धक्षेत्र, आश्रम आदि साधना का क्षेत्र, बडा मन्दिर था या वे शिक्षण सस्थाएँ थी जहा वे ज्ञान दान देते थे।

मैंने दरबार हाई स्कूल मे अपने शिक्षण-काल मे उन्हें निकट मे देखा। मैंने पाया उन्हे अपनी धुन मे रमते हुए।

धूनी रमाने वाले साधु-सन्यासी आग जला कर ताप सहते हैं। किन्तु उनकी धूनी धुआ रहित अगोचर थी जिसमे आग बैठते-उठते, चलते-फिरते भी वे चौबीसो घन्टे लोककल्याण का महामन्त्र जपते हुए साधना रत रहते थे।

अपनी सीधी सादी वेषभूषा में यह निष्काम महान तपस्वी, आचार्य, उपाध्याय, लोक वन्दनीय है क्योकि उस महापुरुष ने अपने तन, मन और कर्म को किसी जाति विशेष व धर्म विशेष से नही जोडा। वह सर्व धर्म, सर्व जाति, स्वरूप थे।

जैन धर्म के अनुयायी होने के नाते इन्होंने अपने जीवन दर्शन से बताया कि जैन धर्म किसी एक वर्ग से बधा नही है। यह विश्वधर्म है। पच-परमेष्टी नमस्कारमन्त्र मे किसी विशेष की वन्दना नही की है। यह वन्दना सारे विश्व मे निहित उस रूप को है जो जहा है।

मास्टर साहब का जीवन एक महान वैज्ञानिक के रूप मे है जिसने अगोचर को गोचर बनाया अपनी साधना से। मास्टर साहब की आत्मा जो आज अगोचर है, नित्य है, प्रेरणादायक है, वन्दनीय है।

समाज के कुशल वैद्य

(श्री सन्तोष चन्द्र)

स्व० मास्टर साहब मोतीलाल जी 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्शरूप मूर्तिमान महापुरुष थे। उनका जीवन वास्तव मे परोपकार के लिये ही था। उन्होने अपने जीवन मे हजारो विद्यार्थियो एव सैंकडो अनाथ महिलाओ व बच्चो को गुप्त रूप से स्वय सहायता पहुचाने व अन्य धनी-मानी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रेरणा देकर मदद पहुचाने के रूप मे दोहरे परोपकार का कार्य किया। उनका जीवन ही उनके सपर्क मे आने वाले व्यक्तियो को स्वाभाविक रूप से प्रेरणा देने वाला था। उन्होंने अपने जीवन मे सबसे महत्वपूर्ण कार्य सन्मति-पुस्तकालय जैसी महान सस्था को जन्म देने का किया, जिसके द्वारा अनेक पीढियो तक लाखो व्यक्तियो को सम्यक ज्ञान प्राप्ति का मार्ग मिलता रहेगा, उन्होने पुस्तकालय मे सभी प्रकार के साहित्य का सग्रह किया, लेकिन पाठको को उनकी योग्यतानुसार पुस्तकें देने का वे विशेष ध्यान रखते थे। जैसे एक कुशल वैद्य अपने औषधालय मे सभी प्रकार की औषधियो को रखते हुये भी रोगियो की अवस्था व योग्यता को ध्यान मे रख कर ही दवा देता है, उसी प्रकार वे भी छोटे २ बच्चे, युवको, वृद्धो व महिलाओं को उनकी योग्यतानुसार साहित्य देकर धार्मिक सस्कार डाल कर धर्म रुचि प्रगट करने का तथा अश्लील साहित्य व उपन्यासो के द्वारा नैतिक पतन न होने देने का विशेष ध्यान रखते थे। विद्यार्थियो की सहायता का तो वे विशेषकर ख्याल रखते थे। चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो अथवा किसी भी धर्म को मानने वाला हो। उनमे अनुकम्पा का भाव भी उच्च कोटि का था, किसी भी दीन दुःखी प्राणी को देखकर उनका हृदय दया से आर्द्र हो जाता था तथा जब तक वे उसके कष्ट को दूर नही कर देते तब तक उनको चैन नही पडता था।

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

(श्री घीसीलाल)

मेरी शादी १२ साल खत्म होते ही गई थी। शादी के २-३ साल बाद ही मै कुसगति मे पड गया। सन १९२० मे स्वर्गीय श्री मागीलालजी वोहरा दूदू निवासी ने १५-२० प्रतिष्ठित सज्जनो के समक्ष मेरे सामने ही मेरी बुरी सगति की निन्दा की। मुझे क्षण भर क्रोध आया और वही वैठे-वैठे तुरत मेरे कुकर्मों का दृश्य मेरे सामने आया। यह भी ख्याल आया कि आज तो उन्होंने ही कहा है, अब आगे अगर यही हालत रही तो दुनिया थू केगी। वहा से मैं घर आया, रात को वडी देर तक नीद नही आई और उसी रात मैंने प्रण कर लिया कि फिर ऐसी सगत नही करूगा और उसके दूसरे ही दिन मैं चौधरी कानूनगो के सरकारी काम को करने के लिए अग्रसर हुआ और मैं उस काम मे कुछ अशो मे सफल भी हुआ। जवमे सेटिलमेट डिपार्टमेट का नया महकमा जयपुर राज्य मे खुला तो पिताजी ने यह सुनकर कि अव चौधरी कानूनगो की राज्य सेवा नही रहेगी इसलिए सेटिलमेट डिपार्टमेट जाकर वहा का काम सीखना चाहिए, मैंने काम सीखकर उस विभाग मे नौकरी करली तव मैं जयपुर मे ज्यादा रहा। उस जमाने मे मेरा यह ख्याल कि अगरचे पराई स्त्री के त्याग का नियम तो ले चुका हू मगर मेरी नजर औरतो के सौन्दर्य को देखना नही छोडती, इसका इलाज मास्टर साहव से पूछू। मैंने मास्टर साहव की सेवा मे उपस्थित होकर मेरे मन की वात स्पष्ट निवेदन करदी और उपाय पूछा। मास्टर साहव ने मुझको एक किताव (ब्रह्मचर्य ही जीवन है, वीर्यनाश ही मृत्यु है) दी और आज्ञा दी कि आज ही इसको वहुत ध्यान से पढोगे तो तुम्हे इसका उपाय मिल जाएगा। इसमे एक जगह कथन है कि जव तुम्हारे सामने से कोई स्त्री निकले तो उसको देखो मत और मा का स्मरण करने लगो। फिर कभी तुम्हारे मन मे विकार नही रहेगा। इस कथन का मेरे मन पर वडा प्रभाव पडा और मैं अपनी जिन्दगी मे इस वीमारी का इलाज इसी तरह करता रहा—यह मास्टर साहव की असीम अनुकम्पा का फल है।

एक वार मैं श्री चिमनलालजी वोहरा, तहसीलदार के साथ जलेवी चौक महकमा दीवानी से चलकर वाजार मे आया। जौहरी वाजार मे चौपड के पास एक नीम का दरख्त था उसके नीचे तहसीलदार साहव

की मास्टर साहब से भेंट हुई। कुशल क्षेम पूछने के बाद मास्टर साहब ने तहसीलदार साहब से पूछा–स्वाध्याय किस ग्रन्थ की करते हैं? तहसीलदार साहब ने जवाब दिया मालपुरा मे रहता हू तब तो शास्त्र-स्वाध्याय कर लेता हू, बाहर दौरे मे कोई साधन नही है। मास्टर साहब ने कहा मैं आपके पास किताबें पहुचा दूगा। उनको आप दौरे मे साथ ले जावें और ज्ञान वृद्धि करें। उस पर तहसीलदार साहब ने कहा मैं खुद ही आकर किताबें ले जाऊंगा। इतनी बात के बाद दोनो ही अपने अपने काम की तरफ चले गए। शाम को मैं तहसीलदार साहब के साथ ही भोजन कर रहा था कि ३–४ किताबें लेकर मास्टर साहब तहसीलदार साहब के मकान पर पहुचे। हवेली के चौक मे खडे होकर मास्टर साहब ने आवाज दी। मैंने उठकर चौक मे देखा तो मास्टर साहब किताबें लिए खडे थे। मैंने तहसीलदार साहब को यह बात अर्ज की तो तहसीलदार साहब के मन मे इतना गहरा प्रभाव पडा कि उनकी आखो मे आसू आगए और बोले मास्टर साहब को किस तरह इन्सान बनाने का ध्यान है इनको समाज सेवा और ज्ञान दान का कितना ख्याल है!

मैं अक्सर सन्मति पुस्तकालय से मास्टर साहब से किताबें ले जाया करता था उनमे एक किताब मुझसे गुम हो गई। मैंने मास्टर साहब से निवेदन किया। मास्टर साहब ने कहा कोई बात नही। मैंने कहा मास्टर साहब कीमत मैं देना चाहता हू, क्या दू? उन्होने फरमाया कि इसकी क्या जरूरत है? जब मैंने ज्यादा अनुरोध किया तो एक किताब निकाली और तुरत ही १ २५ रु० उस किताब की कीमत मुझे बताई। मैंने यह रकम जमा करा दी।

विद्यार्थियों के सच्चे सरक्षक

(श्री कमलाकर 'कमल')

सन्मति पुस्तकालय के सस्थापक एव सचालक मास्टर मोतीलालजी उन कर्मठ महापुरुषो मे थे जिन्होने आजीवन बिना किसी भेदभाव के जयपुर की जिज्ञासु जनता की लगन के साथ सेवा की थी। मैं जब हिन्दी 'एडवांस' की कक्षा लेता था तब इस परीक्षा के अधिकाश विद्यार्थी मास्टर साहब के पास से नि शुल्क पुस्तकें लाया करते थे। उनमे कितने ही विद्यार्थी तो ऐसे थे जो वर्षों से सन्मति पुस्तकालय की पुस्तकें लिये हुए थे। परन्तु उन विद्यार्थियों के प्रति मास्टर साहब को कोई भी शिकायत नही थी। मुझे याद है

जब मैं १९४० मे एक विद्यार्थी को लेकर मास्टर साहब के पास गया तो उन्होने उस विद्यार्थी से तुरन्त कहा कि "मोहनलाल तुमको यदि और किसी पुस्तक की आवश्यकता हो तो, लेजाओ और दो साल पहिले जो 'प्रियप्रवास' ले गये थे, वह पढने के बाद लौटा देना।" मोहनलाल ने यह सोच लिया था कि मास्टर साहब मुझसे अब अपरिचित हो गये होंगे। लेकिन ज्योही मोहनलाल ने अपना और पुस्तक का नाम सुना त्योही वह लज्जित सा हो गया था। उसी समय उसने मास्टर साहब से क्षमा मागी और दूसरे दिन वह 'प्रियप्रवास' मास्टर साहब को दे आया।

[२]

गोविन्दनारायण नामक विद्यार्थी से 'साकेत' महाकाव्य खो गया था। उसने मेरे साथ आकर मास्टर साहब से कहा कि 'साकेत' खो गया है। इस पर उन्होने कहा भाई! खो नही गया है। तुम्हारे साथी हरिनारायण के पास है, जब वह पढ लेगा तब जमा करा देगा। तुम्हे और कोई पुस्तक चाहिये क्या? गोविन्दनारायण को हरिनारायण के पास ही वह पुस्तक मिली क्योकि उसीने उसे वह पुस्तक पढने को दी थी पर वह भूल गया था। हरिनारायण और गोविन्दनारायण दोनो मेरे विद्यार्थी थे तथा साहित्यरत्न के प्रथम खण्ड मे पढते थे।

[३]

'भारतेन्दु का हरिश्चन्द्र नाटक' किसी विद्यार्थी से खोगया था। वह मास्टर साहब से कह रहा था कि मास्टर साहब! आप कहें तो दूसरा लादू। इस पर उन्होंने उस विद्यार्थी से कहा–मैं ही दूसरा मगवा लूगा। जब वह मिल जावे यहा जमा करा देना। यह मेरे सामने की बात है।

[४]

एक बार मुझे पद्माकर कविकृत 'जगद्विनोद' की आवश्यकता पडी थी। मैं उसके लिये सन्मति पुस्तकालय मे ज्योही पहुचा त्योही मास्टर साहब ने मुझसे कहा कि आपके पास जो १७ विद्यार्थी हिन्दी एडवास मे पढ़ते हैं उनमे से तीन विद्यार्थियो के पास "एडवास" का कोर्स नही है, आप उनको मेरे पास भेज देना। मैं एक कोर्स की व्यवस्था कर दूगा। पता नही मास्टर साहब को मेरे पास आने वाले १७ विद्यार्थियो की सूचना किसने दी थी।

हजारों नहीं लाखों में एक

(श्री राधेश्याम अग्रवाल)

मास्टर मोतीलालजी सघी अपने समय के श्रेष्ठ व्यक्तियो में थे। उनका जीवन सादा व आचरण उच्चकोटि का था। वे मनुष्य मात्र की बिना किसी भेद-भाव के सेवारत रहते थे। विद्यार्थी उनको बहुत प्रिय थे। वे देश के भावी नागरिक होने के नाते उन पर अधिक स्नेह रखते थे, उनकी तरह २ से मदद करते थे। वे हरएक को सदमार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते थे। ऐसे मनुष्य हजारो मे नही लाखो मे कोई एक होता है।

दया और करुणा की साक्षात प्रतिमा थे

(श्री विजय चन्द्र जैन)

श्रद्धेय मास्टर मोतीलालजी वास्तव मे महान् व्यक्ति थे। उन्होने अपना सारा जीवन जनता की निस्वार्थ सेवा मे लगा दिया। वे कुशल अध्यापक भी थे। अध्यापन से उनको जो कुछ मिलता था उसमे से अपने जीवन निर्वाह के लिये कुछ हिस्सा रखकर शेष रकम वे गरीबों की सहायता मे लगा देते थे। इतना ही नही निस्सहाय विद्यार्थियों और विधवाओं की सहायता के लिये वे सामर्थ्यवान लोगो से चन्दा इकट्ठा करते थे। विद्यार्थियो के लिये पुस्तकें खरीदते थे, उनकी फीस जमा कराते थे। विधवाओ के लिये वे स्वय बाजार से अनाज खरीदकर उनके घर पर पहुचाते थे और भी अनेक प्रकार से वे गरीबों की मदद करते थे। जातिवाद की भावना से वे बिल्कुल परे थे, सभी जाति और समाज के लोगो की वे समान रूप से सहायता करते थे।

दया और करुणा की वे साक्षात् प्रतिमा थे। उनका हृदय अत्यन्त कोमल था। किन्तु अनुशासन पालन में वे अत्यन्त कठोर थे और छात्रों पर उनके अनुशासन की बडी छाप थी—इसी के परिणामस्वरूप जिन कक्षाओ को वे पढाते थे उनके विद्यार्थी बहुत अच्छे अको से पास हुआ करते थे। उनमे से अनेक आज ऊचे पदो पर आसीन हैं। उनमे से प्रत्येक यह अनुभव

करता है कि उसके उत्थान मे मास्टर साहब का बहुत बडा हाथ रहा है। मैंने अपने विद्यार्थी काल के कई वर्ष मास्टर साहब के चरणो मे विताये। स्कूल के अलावा मेरा काफी समय उनके पास लाईब्रेरी मे ही गुजरा करता था। मेरे पिताजी ने मेरी पढाई की सारी देखरेख मास्टर साहब पर ही छोड रखी थी। घर पर मैं नही पढता था अत वे मुझे लाईब्रेरी मे बुलवाते थे और वही उन्होने मेरे लिए अध्यापक का प्रबन्ध कर दिया था। अत मेरा बहुत समय मास्टर साहब के पास गुजरा था। मैंने नजदीक से उनकी सभी प्रवृत्तियो को देखा है। अकेला व्यक्ति जिसमे निष्ठा और लगन हो वह कितना बडा रचनात्मक कार्य कर सकता है, इसका मास्टर साहब से अच्छा कोई उदाहरण नही मिल सकता।

वे अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करते थे। उनका लिवास अत्यन्त सादा था और वे सदैव मोटी खादी ही पहिनते थे। वे निरहकारी थे और अहिंसा के पूर्णतया पालन करने वाले थे। धर्म में उनकी पूरी श्रद्धा थी और उनका आचरण अत्यन्त शुद्ध और निष्कलक था। उनकी निश्चित दिनचर्या थी। प्रात काल बहुत जल्दी उठकर नित्यक्रम से निवृत्त होकर वे सेवाकार्य मे रत हो जाते थे। स्कूल के अलावा उनका सारा समय जन सेवा मे ही बीतता था। घर पर केवल नित्यकर्म से निवृत्त होने व भोजन करने के लिए जाते थे—बाकी समय वे लाईब्रेरी में ही रहते थे और बहुत अर्से तक वे वही सोते भी थे। वे नियमित स्वाध्याय करते थे और भजन-कीर्तन मे उनकी बहुत रुचि थी। चलते फिरते वे मन ही मन भजन गाया करते थे और भजनो की कापी सदा उनके साथ ही रहती थी। रास्ते में जो भी मिल जाता था उससे भी वे यही पूछा करते थे कि वह अपनी आत्मा के उत्थान के लिए क्या करता है ? क्या वह केवल धन कमाने मे ही लगा है ? या यह मनुष्य जीवन जो उसने पाया है उसको सार्थक करने के लिए भी वह कुछ करता है। वे सबको अपनी आत्मा के उत्थान के लिये सतत् प्रेरणा देते रहते थे। पुस्तकालय के माध्यम से उन्होने जनता की महान् सेवा की। अच्छी पुस्तकों की कई २ प्रतिया वे खरीदते थे और घरो पर जाकर लोगो को किताबें पढने के लिये देते थे। वास्तव मे मास्टर साहब अपने आप मे एक सस्था बन गये थे। गृहस्थ मे रहकर भी सच्चे अर्थ मे साधु थे और उनके जीवन से हमे बहुत बडा सबक मिलता है।

वे सत्प्रेरणादायक थे

(श्री मालचन्द जैन)

प्रात स्मरणीय मास्टर साहब से मेरा परिचय १९४४ मे प्रथम बार हुआ। यद्यपि मैं उनका शिष्य नही रहा पर उनकी सद्प्रेरणा मुझे सदा मिलती रही। उनका त्यागमय जीवन पुस्तकालय के माध्यम से जनता की मूक सेवा, सादगी, उच्चविचार, धार्मिक आस्था आदि ऐसी बातें उनमे थी जिससे कोई भी व्यक्ति जो उनके सपर्क मे आया प्रभावित हुए बिना नही रहा। वे प्राय सेठ वैज-नाथजी सरावगी के पास आया-जाया करते थे और वही उनसे भेंट होती रहती थी। वे पुस्तकें स्वय दे जाते और लेने के लिए भी आते। उस समय यह भी पूछते कि इस पुस्तक मे क्या पढा—इससे तुमने क्या शिक्षा ली ? अत हर व्यक्ति पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढता था। वे जब भी मिलते अपने अनुभव सुनाते हुए ऐसी शिक्षाप्रद बातें कहते जो जीवन-निर्माण मे सहायक होती। जब वे भजन गाते तो उसमे तन्मय हो जाते थे। जैसे कोई सन्त मस्त हो रहा है। वे गृहस्थी होते हुए भी वैरागी के समान थे। पुस्तकालय मास्टर साहब का कार्यक्षेत्र था—पर मैं ऐसे अनेक छात्रो को जानता हू जिन्हें मास्टर साहब ने सबल देकर खडा किया है। सचमुच वे देवता थे।

संप्रदायातीत मास्टर साहब

(श्री बंशीधर शास्त्री एम. ए)

बीसवी सदी के प्रारम्भ मे भारतवर्ष मे क्रांति का ऐसा दौर आया था जिसमे न केवल भारतीय स्वतत्रता की भावना जागृत हुई अपितु उस समय के युवको मे निस्वार्थ सेवा वृत्ति का भी विकास हुआ। उन युवको मे अपने २ ढग से समाज सेवा एव राष्ट्र सेवा की भावना घर करने लगी थी। उस भावना से अनेक कार्यकर्त्ता बने जिन्होंने कभी अधिकार एव यश की कामना नही की थी अपितु वे केवल सेवा एव समाज जागृति मे ही लगे रहे।

ऐसे युवको मे ही मास्टर मोतीलालजी सघी भी थे। उन्होने अपना कार्य क्षेत्र जयपुर रखा। वे चौमू भी बराबर जाते रहते थे। मैं जब ७-८ वर्ष का हुआ तब मुझे चौमू मे ऐसी कई पुस्तकें मिली जिन पर सन्मति पुस्तकालय,

जयपुर की रवर स्टाम्प लगी हुई थी। मैंने अपने पिताजी से इसके वारे मे जानकारी चाही तो उन्होंने वताया कि हमारे पडौस मे रहने वाले श्री मोतीलालजी सघी द्वारा सचालित पुस्तकालय की ये पुस्तकें हैं।

फिर तो मुझे जव-तव मास्टर साहब के चौमू मे दर्शन होने लगे। वे सफेद खद्दर के कपडे पहनते थे। मै यह देखकर आश्चर्य करता था कि वे जव भी चौमू आते तो पुस्तको का बण्डल लाते थे। वे उन पुस्तको को न केवल जैनियो को देते थे अपितु ब्राह्मण, वैश्य, मुसलमान, बुनकरो आदि सभी को देते थे। मैंने देखा था कि जो उन पुस्तको को नही पढ पाते थे उन्हें वे पुस्तको के अच्छे अश पढ कर सुनाते थे। उन पुस्तको मे गीता, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानद का साहित्य भी रहता था। वे सही मायने मे सम्प्रदायातीत व्यक्ति थे। उनके पास जो भी विद्यार्थी या असहाय पहु चता उसकी वे सहायता अवश्य करते थे।

मैंने उनके पास एक २ पुस्तक की १०–२० प्रतिया भी देखी तो मैंने उनसे पूछा कि इतनी प्रतिया क्यो रखते हैं ? उन्होंने बताया कि अच्छी पुस्तक का जितना प्रचार हो उतना ही अच्छा है। एक बार मैंने उनसे पूछा कि पुस्तकालय की कई पुस्तकें लोगो मे रहती हैं, उन्हे वापिस क्यो नही लेते ? उन्होंने सरल शब्दो मे कहा कि आखिर कोई न कोई उन्हें पढ़ेगा ही।

उनके इन दोनो उत्तरो से यह लगा कि वे केवल शिक्षा एव नैतिकता के प्रसारक थे। वे कभी दुरुपयोग की चिन्ता नही करते थे। मैं समझता हू कि उन्होंने अपने सीमित साधनो के द्वारा समाज की जो सेवा एव जागृति की उसे अक्षरो में नही लिखा जा सकता। उन्होने ऐसे अनेक युवको को सहारा देकर आगे वढाया जो उस सहारे के अभाव मे आगे नही बढ पाते।

खेद है कि समाज ने ऐसे सेवा भावी, शिक्षा प्रसारक, दीन-दुखियो के सहायक मास्टर साहव को उनके जीवनकाल मे कोई बढावा नही दिया। उन्होने वृद्धावस्था में भी अकेले ही 'सन्मति पुस्तकालय' का भारवहन किया। वे स्वय भी चलते फिरते पुस्तकालय थे। वे पाठको की रुचि अनुसार पुस्तक उनके घर स्वय पहुचाते थे एव लेते भी आते थे।

यह सयोग की वात है कि चौमू निवासी मास्टर साहब के पुस्तकालय का भवन उन 'सेठी जी' के नाम पर वसे हुए नगर मे वन रहा है जिन्होने राष्ट्रीय स्वतत्रता की भावना के वशीभूत चौमू ठिकाने के कामदार का महत्वपूर्ण पद त्याग दिया था।

उनमें परोपकारिता के साथ धार्मिकता का पुट था

(श्री ताराचन्द गंगवाल)

मास्टर साहब की जैन धर्म मे अटूट श्रद्धा होते हुए भी वे अपने पुस्तकालय मे सभी धर्मों की पुस्तको का सग्रह रखते थे और अन्य धर्मावलबियो को उनके ही धर्म द्वारा जैनधर्म की विशेपता ऐसी शैली से समझाते थे कि जिससे अन्य धर्मावलम्बी क्या हिन्दू क्या मुसलमान, बालक, जवान, वृद्ध सभी वर्ग उससे लाभ उठाते थे।

परोपकार की तो मानो वे चलती फिरती मूर्ति ही थे। असमर्थ शिक्षार्थी बालको के तो वे मानो अभिभावक ही थे। उनको हर प्रकार से सहायता देकर योग्य बनाने का पूरे तौर पर ध्यान रखते थे, जिसकी वजह से आज व्यापारी वर्ग, इन्जीनियर, डाक्टर, अध्यापक, अधिकारी आदि अनेक क्षेत्रो मे उनके शिष्य दिखलाई देते हैं।

मास्टर साहब के पूर्वज चू कि चौमू के निवासी थे और चौमू ठिकाने मे अच्छे ओहदो पर कार्य करते थे, यही कारण था तत्कालीन चौमू ठाकुर श्री देवीसिहजी मास्टर साहब से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। उनसे जैनधर्म तथा अहिंसा के बारे मे ऊहापोह किया करते थे। मास्टर साहब से जैन धर्म का व अहिंसा का स्वरूप सुनकर ठाकुर साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होने स्वय मास-मदिरा का त्याग ही नही किया बल्कि चौमू मे दशहरे के अवसर पर परपरा से होने वाले बलिदान करना तक बन्द कर दिया। यह था मास्टर साहब का प्राणी-मात्र के प्रति दया के भाव का प्रभाव। मास्टर साहब मेरे पिताजी से (एक ही जगह चौमू के निवासी होने व सहपाठी होने की वजह से) विशेष प्रेम रखते थे। उनका कार्यक्षेत्र अलग हो जाने से कभी-कभी जयपुर आते तो मास्टर साहब से अवश्य मिलकर धार्मिक गोष्ठी किया करते थे। मास्टर साहब ने उनको एक ऐसा अमोघ मत्र बतलाया कि उसको वे अत समय तक रटते रहे। वह मत्र था "मै (आत्म) भिन्न, शरीर (देह) भिन्न, इस मत्र मे या यो कहिये इन चन्द शब्दो मे समस्त जैन धर्म का सार भरा हुआ था। यह थी मास्टर साहब की कुशाग्रबुद्धि द्वारा ग्रन्थो के सार समझने की शक्ति।

मास्टर साहब कितने निर्मोही थे, इसका भान मुझे उस समय हुआ था जबकि मैंने बचपन (करीब १६ वर्ष की अवस्था मे कलकत्ते जाने का विचार पिताजी के सामने रक्खा तो मोहवश उन्होने मुझे कलकत्ते जाकर कार्य करने की आज्ञा नही दी। मैं जिद् करता रहा आखिर वे मुझे समझाने के लिये मास्टर साहब के पास लिवा लाए। मास्टर साहब ने मुझे समझाया कि तुम मुन्शीजी को (मेरे पिताजी को वे मु शीजी शब्द से सबोधित करते थे) अकेले छोडकर परदेश मत जाओ, मैं तुझे यहा पर ही सरकारी नौकरी जो तुझे पसन्द हो, दिलाऊँगा। परन्तु मैं तो हठवश ना ही करता रहा। आखिर उन्होने मेरे पिताजी को ही इस प्रकार समझाया कि उनका मोह जो मेरे कलकत्ते जाने मे बाधक था, वह दूर हो गया।

वे परोपकारी व सेवाभावी विचार-धारा रखते हुए भी उसमे धार्मिकता का पुट देते हुए कहा करते थे कि माता-पिता की सेवा करना, उनके लिए रुपया, पैसा, नौकर-चाकर आदि सर्वप्रकार की सुख सामग्री जुटा देना या उनकी आज्ञा का भली प्रकार से धर्म पालन करने का लाभ ले सकें इसके लिए प्रयत्न करके उस प्रकार की सामग्री जुटा देना ही वास्तव मे माता पिता की सेवा करना है। उनका अभिप्राय यह था कि यदि सन्तान धार्मिक ख्याल वाली होगी तो ही माता पिता के प्रति ऐसी सेवा करने का ख्याल कर सकेगी यह मास्टर साहब की धार्मिक सतानो को घू टी पिलाने की महान् औषधि थी।

वे देवदूत की तरह आये

(श्री जयकुमार जैन)

पूज्य मास्टर साहब का मेरा पहिला साक्षात्कार मेरे स्वयम् के मकान पर ही हुआ था। तब मैं नवी कक्षा मे पढता था। गर्मी का मौसम जून का महिना था, तारीख तो याद नही, जब वे स्वय घर आये थे, हाथ मे कुछ पुस्तकें भी उनके थी। उन्होने आवाज देकर मुझे बुलाया था। मास्टर साहब की सादा वेषभूषा के बारे मे मैंने सुन रखा था उसी आधार पर मैंने पहिचाना-उन्हे और अभिवादन भी किया। मास्टर साहब ने कहा मैं इधर से जा रहा था कुछ पुस्तकें विद्यार्थियो के लिये लाया था, सोचा तुम्हे भी देता चलू । छुट्टियां हैं पढोगे ? मैंने मास्टर जी से कहा मास्टर साहब मैं तो स्वय ही पुस्तकालय

आना चाहता था परन्तु किसी जानकार व्यक्ति के न होने मे नही आ पाया वह हमे और बोले जानकार व्यक्ति की क्या जरूरत थी ? मन्दिर मे पुस्तकालय है आते दर्शन भी करते। अब आया करो।

'यह पुस्तकें कितने दिन मे पढ लोगे ? मैंने कहा, ५ दिन मे। उन्होंने कहा कि ७ दिन मे, आज के दिन ही मैं आकर ले जाऊगा परन्तु शर्त यह है कि इन्हें पूरी पढनी पडेगी। मैं पढी हुई किताव के वारे मे पूछूगा। मैंने वताया—मैं स्वय ही पुस्तकालय मे आऊगा व किताबें पढकर लाऊगा। मुझे स्मरण नही किस कारण से नही जा सका और न दोनो किताबें ही पूरी पढ सका। परन्तु मास्टर साहव ने स्वय निश्चित तिथि को मेरे घर आकर रास्ते मे खडे बच्चो से आवाज दिलवाकर मुझे बुलवाया। मैं शर्म के मारे नतमस्तक था। उन्होने कहा—किताबे न पढी हो तो कोई बात नही, अब पढो। मेरे पास इन किताबो मे से और ले लो। यह दूसरे विद्यार्थियो से वापिस लाया हू। उन्होने जो थोडा बहुत मैंने पढा था उसके बारे मे पूछा और कहा इसी तरह चाहिए, थोडा पढना भी अच्छा है। लाइब्रेरी आना।

१०—१२ दिन वाद पुस्तकालय मे गया तो मास्टर साहब दोपहर की गर्मी मे पखी हिलाते हुये रजिस्टर मे कुछ लिख रहे थे। मुझे देखकर वे प्रसन्न हुये। बैठाते हुये कहा—किताबें पूरी तरह पढली हो तो दूसरी ले जाओ। इतिहास की पुस्तकें मुझे पसन्द थी। रानी दुर्गावती पर उन्होने एक पुस्तक दी परन्तु साथ मे जैन धर्म पर भी एक छोटी सी पुस्तक दी। कहा—इनको पढकर लाओगे तो और भी अच्छी पुस्तक दूगा। मास्टर साहब का मेरा यह छोटा सा सम्पर्क रहा है। वे स्वय देवदूत की तरह आये और मुझे मार्ग बता गये। मकान दूर होने से पुस्तकालय तो जाने का क्रम नही बना परन्तु पुस्तके पढने का शौक लग गया। पास के सार्वजनिक पुस्तकालय मे जाना शुरू कर दिया। मास्टर जी को लाईब्रेरी जाने की वात थोडे दिन बाद बताई उन्होने खुश होकर कहा बेटा! **खूब पढो समय आवेगा तुम्हारी पढाई काम आवेगी। बडे बनोगे। अभाव से बना यह अलम्य मानव जीवन इसी तरह** सार्थक होगा। उनके यह शब्द आज भी मेरे मानस पटल को छूते हैं प्रेरणा देते हैं।

मास्टर साहब ने जयपुर मे ही जाति-पाति के भेद से परे रह कर सैकडो नवयुवको को सुयोग्य नागरिक बनाया है। जिन विद्यार्थियो की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थीं उनकी पुस्तकें तथा फीस के पैसे जुटाते थे। स्कूलों मे जाकर प्रधानाध्यापक से मिल कर ऐसे छात्रो का पता चलाते थे जो फीस के

खातिर परीक्षा मे न बैठने को मजबूर होते लगते थे। वे उन्हे बिना मालूम पडे ही फीस जमा करा देते थे। कितने ही विद्यार्थियो एवं अभावग्रस्त व्यक्तियो के लिए तो खाने पहिनने तक की व्यवस्था करते थे परन्तु सब अनदेखे, अनकहे ही। मास्टर साहब की सादगी, सत्य, नम्र व्यवहार, सहायता का खुला हाथ अपनी थोडी कमाई मे से भी बचा कर पुस्तकें खरीद कर जन साधारण के उत्कर्ष के विचार से उन्हे उपलब्ध कराना, जैन धर्मावलम्बी होते हुये भी अन्य धर्मावलम्बियो के साथ सहिष्णुता का व्यवहार, उनका साहित्य पढना, खरीदना व उपदेशकों के उपदेशों मे नियमित रूप से जाना उनकी अपनी वजा थी। वहा वे जो सुनते और उपादेय समझते उसको अपने पास रखी छोटी सी डायरी में लिखते थे और लिखने मात्र तक ही सीमित न रह कर उसे जीवन मे उतारने का प्रयास करते थे। उनका नियमित जीवन इस भौतिक युग मे जब हम धन वैभव की दौड मे निरन्तर लगे हैं अनुकरणीय है।

सच्चा त्याग ही उनके जीवन का ध्येय था

(श्री शान्तिकुमार जैन)

हो। मैंने अपनी असमर्थता पुस्तक खोजाने के बारे मे कही। उन्होने मुझसे पूछा 'सही सही बताओ वास्तव में खो गई है अथवा काम के डर से ही यह बहाना बनाया है। मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि वास्तव मे खो गई है एवम् पिताजी आज शाम को पुस्तक लाकर दे देंगे। उन्होने मुझे फौरन अपने पास से पैसे दिये तथा आदेश दिया। मैं उस ही समय 'मित्र कार्यालय' बुक-सेलर्स से जो कि उस समय जौहरी बाजार मे स्थित था से खरीदकर पुस्तक ले आऊ। मैंने जब कहा कि पिताजी शाम को पुस्तक लाकर दे देवेंगे तथा आपसे पुस्तक के पैसे लेने पर डाटेंगे तो उन्होने मुझसे कहा तुम्हें इससे क्या। मैं सरदारमल को 'स्वर्गीय पिताजी' स्वय ही कह दू गा वह तुम्हें कुछ नही कहेगे। ऐसा था उनका स्नेह अपने छात्रो की शिक्षा के प्रति।

बचपन से ही श्री सन्मति पुस्तकालय मे उनके पास जाने का अच्छा सौभाग्य प्राप्त होता था। सभी प्रकार की पुस्तको के साथ वे जीवन चित्र और धार्मिक पुस्तकें भी पढने के लिए दिया करते थे। तथा जब उक्त पुस्तकें लौटाने जाता था तो यह अवश्य पूछते थे कि उसमे मैंने क्या पढा तथा उससे क्या नया ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान की बातो को वे अपने आचार व्यवहार व जीवन मे उतारने की प्रेरणा देते रहते थे।

उस युग मे शिक्षा के क्षेत्र मे एवम् पुस्तकालय के बारे मे जो कार्य जयपुर मे उन्होने किया वह बिना किसी लालच या प्रतिफल अथवा प्रसिद्धि की आशा से किया। सच्चा त्याग ही उनके जीवन का ध्येय था तथा आयु-पर्यंत वे इसको निभाते रहे। ऐसा व्यक्ति यदि किसी विदेश मे यथा अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन अथवा यूरोप मे जन्मा होता एवम् ऐसा कार्य किया होता तो शायद वह समाज या देश उन्हें कितना सम्मान देता यह कहना कठिन है। परन्तु परतत्र भारत मे और विशेषकर जयपुर सरीखे देशी व पिछडे हुए राज्य मे जो कार्य उन्होने किया वह अपने आपमे बहुत बडी बात है।

गरीबों के साथी

(श्री छुट्टन लाल बिलाला)

श्री मोतीलालजी मास्टर साहब के सम्पर्क मे मुझे भी रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुस्तकालय चलाना ही उनका ध्येय नही था। वे रोडी मे से रतन निकालने वाले चतुर तथा बुद्धिमान् पुरुष थे। वे कीचड रूपी गरीब तवके मे से होनहार युवक को अपनी तरफ खेंचकर उस युवक का भविष्य उच्चकोटि का बनाने मे भरसक तन, मन, धन से योग देते थे। आज भी उनके तैयार किये हुये कितने ही सज्जन मौजूद हैं। अगर मास्टर साहब के निकट वे नही आते तो साधारण जीवन व्यतीत होता। सादा वेषभूषा एव मोटा खद्दर पहनने वाले मास्टर साहब के परिधानो की सादगी हरेक प्राणी को मोहित करती थी।

एक दफा की वात है—मैं हल्दियो के रास्ते मे होकर जारहा था और सामने से मास्टर साहब पधार रहे थे और मेरे हाथ मे धोती का हिस्सा था। मैं खुली लाग का हिस्सा हाथ मे पकडे पकडे चल रहा था। मास्टर साहब ने वहुत धीमे से कहा, इस धोती के गुलाम क्यो हो रहे हो ? भारत की आजादी लेने वाले युवक इस तरह से धोती के गुलाम रहें यह ठीक नही। धोती थोडी ऊची वाधा करो। इस तरह उनके सम्पर्क से कितनी ही शिक्षा मिला करती थी।

गृहस्थ रहते हुए भी विरक्त

(श्री बालचन्द)

मास्टर मोतीलालजी सघी उन महान् विभूतियो मे से थे जो इस ससार मे जन्म लेकर अपने जीवनकाल मे "सादा जीवन उच्च विचार" की शिक्षा का पालन करते हुए एक ऐसे इतिहास का निर्माण कर जाते हैं जो युगो तक आने वाली पीढी का मार्गदर्शन करता रहता है और मानव उससे लाभान्वित होते रहते हैं।

भारत विभाजन के कारण हमे पाकिस्तान छोडकर भारत के इस ओर जयपुर आना पडा। यहाँ आने पर श्री बडा मन्दिरजी में प्रतिदिन देवदर्शन

हेतु अवश्य जाना ही पडता था। इसी बीच मास्टर साहब से भी, जो बडे मन्दिर मे सन्मति पुस्तकालय चलाते थे, साक्षात्कार हुआ। मास्टर साहब की तारीफ तो बहुत सुन रखी थी परन्तु परिचय मास्टर साहब के दर्शन से ही मिला। खद्दर की टोपी, कुर्ता-धोती पहने हुये, मझला कद, दुर्बल शरीर, चौडा ललाट, प्रभावशाली मुखडा तथा सौम्य स्वभाव की मूर्ति को देखते ही मन पर एक अद्भुत प्रभाव पडता था और श्रद्धा से मस्तक उनके चरणो मे अनायास ही झुक जाता था।

मास्टर साहब गृहस्थ मे रहते हुए भी विरक्त थे। जनहित तथा नि स्वार्थ सुश्रुषा की ही हमेशा भावना लिये हुये वे प्रत्येक समय व्यस्त रहते थे। उनका एकमात्र ध्येय दीन दु खी असहाय, अनाथ, निर्धन तथा अशिक्षितो की सहायता करना और उनके दु ख को अपना दु ख समझना था।

मास्टर साहब कितने जीवो के उत्थान के निमित्त बने इसका कोई अनुमान नही लगाया जा सकता। मास्टर साहब के अनेक शिष्य आज भी देश तथा राज्य के बडे बडे उच्च पदो पर आसीन हैं। मास्टर साहब के अनेक महान् कार्यों मे से एक काम उनके द्वारा स्थापित सन्मति पुस्तकालय है, जो इस समय राज्य के ही नही अपितु देश के पुस्तकालयों मे से अपना विशेष स्थान रखता है।

सम्यक् श्रद्धानी मास्टर साहब

(श्री प्रकाशचन्द्र साह)

श्री मोतीलालजी मनुष्य पर्याय मे देवता के समान थे। वे स्वभाव से मृदु व दयालु थे। असहायो व जरूरतमन्दो की सहायता करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। अध्ययन व अध्यापन मे उनकी विशेष रुचि थी अत उनके समकालीन जयपुर के अधिकाश शिक्षित व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे उनके सम्पर्क मे आये।

पुस्तकालय मे बैठे हुए अथवा पुस्तको के वितरण हेतु मार्ग मे जाते हुए या एकान्त मे बैठे हुए वे सदैव आध्यात्मिक भजन व वाक्य दोहराया करते थे। वे अन्य सासारिक कार्य करते हुए भी अपने उपयोग को आत्मा की ओर लगाने का सफल प्रयत्न करते रहते थे। अपने आपको सही रूप मे

पहचानते थे। उनका श्रद्धान था कि मैं जो आत्मा (चेतन) हू, शरीर जो जड है से पूर्णतया भिन्न हू। अत अपने परिचितो से मिलने पर उनका प्रथम वाक्य होता था, "भाई कभी अपना भी तो ख्याल करो। दूसरो (शरीर व उससे सम्बन्धित अन्य) का खयाल तो जीवन भर किया, किन्तु यह सब निरर्थक है। धार्मिक व आध्यात्मिक पुस्तको का मनन करो तथा जीवन का कुछ काल स्वाध्याय मे व्यतीत करो।"

वे नैतिक मनोबल बढ़ाने पर जोर देते थे

(श्री अवधबिहारी नाग)

श्रद्धेय मोतीलालजी के सम्पर्क मे लगभग सन् १९३५ मे आया, जब वे सेवा निवृत्त हो चुके थे तथा श्री सन्मति पुस्तकालय के सचालन मे अत्यन्त व्यस्त थे। जब मैं उनसे एक विद्यार्थी के रूप मे ग्रीष्म अवकाश काल मे पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पुस्तको के पठन हेतु मिला, तो मास्टर साहब का सौम्य स्वभाव, सादगी, सौहार्द एव सेवाभाव तथा नवयुवको के नैतिक व मानसिक उत्थान मे उनकी रुचि देखकर उनके व्यक्तित्व की छाप मानस पटल पर गहरी पडे बिना न रह सकी, क्योकि वे चरित्र-निर्माण एव नैतिक मनोबल बढाने पर विशेष जोर देते थे। सम्भवत उनके समय के जयपुर के विद्यार्थी एव समाज के सभी लोग आपके सम्पर्क मे आये और पुस्तकालय से लाभ उठाया।

वे साधु ही तो थे

(श्री महेन्द्रकुमार रविकर)

१—सायर, सिंह, सपूत

श्रद्धेय मास्टर साहब की वाणी मानो आज भी मेरे कानों के पास गूंज रही है और जाने अनजाने मैं उसे सुनता हूं।

मैं पाचवी कक्षा का विद्यार्थी था। मास्टर साहब के प्रथम दर्शन हुये और परिचय हुआ तो 'सती चन्दन बाला' नाम की पुस्तक उन्होने मुझे पढने को दी। दुर्भाग्य से पुस्तक गुम हो गई।

इस डर से कि पुस्तक जमा करानी पडेगी या उसकी कीमत देनी होगी, मैं बहुत दिनो-तक सन्मति पुस्तकालय नही गया। बहुत दिनो बाद किसी सहपाठी के साथ जाना हुआ और मैंने पुस्तक गुम होने की बात मास्टर साहब से कही। उन्होने प्रेम से पुस्तक का महत्व समझाया, उसे सम्हाल कर रखने की सलाह दी और एक बडी जिल्द बधी पुस्तक 'पुण्याश्रव कथा कोश' हाथ मे थमा दी। महामानव की ओर निगाह उठा कर देखने की शक्ति मुझमे नही थी। रास्ते भर सोचता रहा—

कैसा पुस्तकालय और कैसे पुस्तकालयाध्यक्ष—ऐसा तो कही नही होता।

इस तरह तो लोग बिना पुस्तक खोये भी बहाना लगाकर पुस्तकें लेते रहेगे। इस महान् व्यक्ति की कल्पना मेरे मस्तिष्क से बाहर थी। यह एक नया मार्ग था, नई दिशा थी—

सच है—

लीक लीक गाडी चले लीकै चले कपूत,
लीक छोड तीनो चले सायर, सिह, सपूत।

दूसरे पुस्तकालय चन्दा लेते होंगे सदस्यता के फार्म भरवाते होंगे, कुछ भी करते होंगे, इससे उन्हे क्या मतलब? उनकी अपनी दिशा थी, अपना मार्ग था, सबसे नया, सबसे ऊचा और सबका हित करने वाला। पुस्तको का उपयोग होना चाहिए, बस यही उद्देश्य था। कोई पुस्तक वापिस नही आई तो कोई बात नही, चिराग जहा भी होगा वहा रोशनी देगा। कोई न कोई पुस्तक पढेगा ही, श्रद्धेय मास्टर साहब का ऐसा ही विचार था।

आश्चर्य नही किसी ने अनुचित लाभ उठाकर पूरी लाइब्रेरी ही खडी करली किन्तु श्रद्धेय मास्टर साहव कार्यनिष्ठ थे। बस यही तो है कि दूसरे पुस्तकालय का नाम सन्मति पुस्तकालय नही होगा। काम तो वही होगा जो यहा होगा।

२—परिस्थितियो के स्वामी

मानव परिस्थितियो का दास है या परिस्थितियां मानव की दास है। परिस्थितियो का दास होना दुर्वल व्यक्तित्व है। मास्टर साहव कोई समृद्ध परिवार के सदस्य नही थे। स्वावलम्बन, मितव्ययता और कर्तव्यपरायणता के कारण स्वल्प साधनो मे ही वे कितना विशालाकार पुस्तकालय वना गए- यह आश्चर्य का विषय है। सरकारी नौकरी मे पेंशन होने के वाद कितने व्यक्ति हैं जो जीवन का सदुपयोग करते है ?

एक चीनी कहावत है —

अन्धेरे की आलोचना करने की अपेक्षा अपने पास की छोटी मोमवत्ती को जलाना वेहतर है।

यह 'छोटी मोमवत्ती' प्रत्येक के पास है। अपने सीमित साधनो का उपयोग करके व्यक्ति कितना महान् हो सकता है, मास्टर साहव इसका जीते जागते उदाहरण थे।

३—निस्वार्थ सेवक कि वो तपस्वी साधु

मास्टर साहव की निस्वार्थ सेवा के सम्बन्ध मे दो शब्द भी लिखना लेखनी के सामर्थ्य के वाहर की वात है। मुख्तार साहिव की 'मेरी भावना' मे पाठ है—

> "स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या,
> विना खेद जो करते हैं,
> ऐसे ज्ञानी साधु जगत के,
> दु ख समूह को हरते है।"

इसका अर्थ मैं ज्ञानी शब्द को साधु का विशेषण मान कर नही करता मेरे विचार से "स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या भी विना खेद के करते है, ऐसे ज्ञानी ही साधु है जो जगत के दुखो का नाश करते है।"

श्रद्धेय मास्टर साहव निस्सदेह साधु स्वरूप थे। उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से युगो तक मानवता का कल्याण होता रहेगा।

धर्मनिष्ठ मास्टर साहब
(वैद्यराज प० चिरजीव लाल शर्मा)

मेरा और मास्टर साहब का बहुत पुराना सम्बन्ध है। वे मेरे पिताजी के सहपाठी थे, पाचवी-छठी कक्षा मे अध्ययन करते हुए। मेरे पिताजी के साथ पूर्ण स्नेह था। प्राय स्कूल जाते-आते समय एक साथ रहते थे और दिन मे भी एक साथ पढते। पिताजी मास्टर साहब को आदर्श दृष्टि मे देखते थे। ६६ वर्ष की उम्र तक मास्टर साहब के साथ उनका पूर्ण मैत्री भाव बना रहा। मुझसे कई बार कहते थे कि मास्टर साहब के समान जयपुर के जैन समाज मे दूसरा मनुष्य नही है। मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भी मास्टर साहब का पूर्ण वात्सल्य भाव रहा। वे मुझसे कई बार कहते थे कि तुम सन्ध्या वन्दन, गायत्री जप करते हो या नही और भोजन से पहले देवदर्शन करते हो या नही।

मैं एक बार अध्ययन काल मे एक उपन्यास लेने के लिए मास्टर साहब के पास पुस्तकालय मे गया। मास्टर साहब मेरी ओर देखकर कुछ गम्भीर भाव से मुस्कुराए और बोले तुम हमारे मित्र रामचन्द्रजी के लडके हो। हम भी तुमको पुत्रवत् समझते हैं। यह कहकर उन्होने एक मनुस्मृति की प्रति निकाल कर दी और कहा—तुम्हारे पढने योग्य यही पुस्तक हैं। इसको आद्योपान्त पढना। मैंने मास्टर साहब की आज्ञा से उसे अक्षरश पढा और मनन किया। इससे चित्त को शान्ति मिली। फिर मैं मास्टर साहब से मिला। उनसे वार्तालाप होने पर दूसरी धार्मिक पुस्तक भी दी। उसी दिन से मास्टर साहब के सदुपदेशो से प्रभावित होकर उपन्यास पढना छोड दिया।

मास्टर साहब जैन समाज के ही नही, अपितु जयपुरीय जनता के सच्चे भक्त थे। उनकी सेवाओ का सच्चा स्मारक सन्मति पुस्तकालय है, जिसको उन्होने तनख्वाह मे से बचाकर पुस्तकें खरीदकर समाज के उपकारार्थ शुरू किया। और अपने अथक परिश्रम द्वारा सञ्चित करते हुए पुष्पित, पल्लवित तथा फलित किया।

मास्टर साहब को किसी भी धर्म से घृणा नही थी। वे सब मजहबो को मानते थे और सबमे विश्वास रखते थे। और कहते थे कि सब धर्मों का मूल सिद्धान्त एक है।

मास्टर साहब की धर्म परायणता, सत्यनिष्ठा, सेवा-भाव, परोपकारिता और सच्चरित्रता से हम लोगो को सबक लेना चाहिये। भगवान से प्रार्थना है कि ऐसे आदर्श पुरुष समाज मे उत्पन्न करे।

उनके पीछे तपस्या का बल था

(श्री मोहनलाल माथुर)

मैं माननीय श्री मोतीलालजी सघी का शिष्य सन् १९१७ से १९२० तक रहा। मेरी रुचि गणित की ओर देख कर वे स्वत ही मेरी ओर आकर्षित हुए।

उस समय स्कूलो मे चक्रवर्ती अकगणित पढाई जाती थी, परन्तु मास्टर साहब ने विशेष रूप से सिम्स अर्थमेटिक द्वारा प्रश्न हल करवाये, जिसका परिणाम यह हुआ कि हाई स्कूल तक न केवल अकगणित मे वल्कि व्यवहार गणित तथा रेखा गणित मे शायद ही कभी परीक्षको ने अक काटे हो।

मास्टर साहब आग्रह पूर्वक "की ऑफ नालेज" मुझे वार-वार पढने को देते। जव मैं केवल ९ वी या दसवी कक्षा का विद्यार्थी था और मेरे यह कहने पर कि यह ऊची पुस्तक है, फरमाया करते क्या तुम्हे अग्रेजी का ऊचा विद्वान नही वनना है।

ऐसे कई अवसर आये जव मास्टर साहव के पास कोई विद्यार्थी आर्थिक सहायता के लिए उपस्थित हुआ, तुरन्त मुझे याद फरमाया और मुझे साथ लेकर ऐसे सज्जनो के पास पधारे कि विद्यार्थी का काम तुरन्त हो गया। एक वार एक वडे आदमी के दो वच्चे सातवी मे फेल होते थे और उन्होने दवाव डलवाया कि उनके अक वढा दिए जावें और यह धमकी भी दी कि ऐसा न करने पर अच्छा नही होगा। मास्टर साहव ने जव यह वात मुझे वताई तो मैंने आश्वासन दिया कि आप कोई चिन्ता न करें, इस मामले को मैं सभाल लू गा। वह मामला वहुत ही गभीर निकला तथा उसमे कई पदाधिकारियो को हानि उठानी पडी। परन्तु मास्टर साहव का वाल भी वाका न हुआ, क्योंकि उनके पीछे तपस्या का वल था।

उनके शब्द चालीस वर्ष से पथ-प्रदर्शक

(दौलत मल अजमेरा)

श्रद्धेय मास्टर साहब ने करीब चालीस वर्ष पहले एक दिन रास्ते मे मिल जाने पर मुझसे कहा "वेटा दौलत! पूर्व जन्म के उपार्जित पुण्य कर्मों के उदय से तुमने अच्छे कुल व अच्छे घर मे जन्म लिया तो फिर अब आगे के लिये उसी प्रकार अच्छे बीज नही बोओगे तो आगे जीवन मे क्या काटोगे"। मास्टर साहव के इन शब्दो का मेरे हृदय पर इतना प्रभाव पडा कि गत चालीस वर्ष से वे मेरा समय-समय पर पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं।

किसी का भी दुख नहीं देख सकते थे

(सूरजमल डडिया)

मास्टर साहव मोतीलालजी उन महान् विभूतियो मे से थे जो किसी का भी दुख नही देख सकते थे। मेरा उनसे जीवन मे काफी सम्पर्क रहा। मेरी सतान के लिए शिक्षा सम्वन्धी मामलो मे उनकी काफी मदद रही। श्री सन्मति लाइब्रेरी के मुत्तािल्लक उनका वडा व्यापक दृष्टिकोण था। जैन और अजैन सवके घर पर जा-जा कर कितावें पहुचाते थे, और वे खुद ही जाकर कई दफा वापिस लाते थे। वे अपना सारा जीवन सन्मति लाइब्रेरी की सेवा मे अर्पित कर चुके थे।

मानवता के प्रतीक

(श्री मिलापचन्द जैन)

यों तो दुनियां के समुन्दर में कमी होती नहीं।

लाखों मोती हैं मगर इस आब का मोती नहीं ॥

जैसा कि पृथ्वी का नाम रत्नगर्भा है, इसकी कोख में यदा-कदा मानवरत्न पैदा होते ही रहते हैं। महामना मास्टर साहब मोतीलालजी सघी भी अपनी सानी के एक ही मानव थे। सम्यक्ज्ञान के प्रचार और प्रसार द्वारा जनता के अज्ञानान्धकार को दूर करना उनके जीवन का मूलमन्त्र था और इसी की साधना में उन्होंने अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण कर दिया। साम्प्रदायिकता और जातिवाद से परे होकर वे जन्म भर मानवता की सेवा करते रहे। मानवता उनके जीवन में साकार हो उठी थी। भारतीय सस्कृति—सादा जीवन उच्चविचार के वे प्रतीक थे। उनकी सादगी, ईमानदारी और विनम्रता सबके मन को मोह लेती थी। उनके सम्पर्क में जो भी आया, उनके आदर्शों से प्रभावित हुए। बिना नहीं रहा अभावग्रस्त विद्यार्थियों तथा विधवाओं व असहायों पर उनके हृदय में अपार सहानुभूति थी और वे येन केन प्रकारेण उनकी सहायता करना परम अपना परम कर्तव्य समझते थे। सक्षेप में वे कर्मयोगी थे। प्रदर्शन एवं प्रचार से दूर रहकर वे काम करना ज्यादा पसद करते थे। वे मानवता के सिद्धान्तों को बोलकर समझाने की अपेक्षा उन पर अमल कर समझाना ज्यादा उपयुक्त मानते थे और यही उनकी सफलता का रहस्य था।

वे महामानव थे

(श्री भवरलाल न्यायतीर्थ)

मास्टर मोतीलालजी से सर्व प्रथम मैं १६२६-२७ मे मिला था जबकि मैं षष्ठ श्रेणी मे पढता था। उस दिन की बात आज भी मुझे याद है। सबसे पहला प्रश्न उनका यह था कि तुम्हें णामोकार मत्र आता है या नही? मैंने कहा—आता है। दूसरा प्रश्न था–धर्म की क्या २ पुस्तकें पढी हैं। मैंने उत्तर दिया–छह ढाला पढ चुका हू, द्रव्य सग्रह पढ रहा हू। तब तो बहुत खुशी की बात है—

यह कहते हुए छह ढाला के कुछ पद्य बडी तल्लीनता से उन्होने सुनाये और पूछा कि इनका अर्थ समझ मे आता है। मेरा उत्तर 'हाँ' मे था। इसके पश्चात् मैंने कोई पुस्तक पढने को मागी तो उन्होंने ब्रह्मचर्य सबधी एक पुस्तक निकाल कर देते हुए कई उपदेशात्मक बातें कही। उनके साथ करीब एक घटे का यह समय आज भी आखो के सामने है। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो छोटी होते हुए भी जीवनस्पर्शी होती हैं और वे सदा याद रहती हैं। पूज्य मास्टर साहब इस तरीके से विद्यार्थियो और युवको को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। छात्र की रुचि देख वे पुस्तकें देते–पर यह ध्यान रखते कि इससे पाठक को कुछ मिलना चाहिये। पढ़ने वाला सदाचारी बने–यह उनका लक्ष्य था।

उनका सादा और त्यागमय जीवन, अर्हनिश सेवा कार्य, पर-दुख कातरता, छात्रो की हित-चिन्तना आदि ऐसे अनेक गुण मे थे जिनके कारण उनके प्रति श्रद्धा से मस्तक झुके बिना नही रहता।

एक बार एक छात्र को कुछ कोर्स की पुस्तको की आवश्यकता थी—उनमे कुछ पुस्तकें उस समय पुस्तकालय मे नही थी। मेरे सहपाठी स्व० भाई श्री प्रकाश जो पुस्तकालय का काम देखते थे। उन्होने कहा कि ये पुस्तकें नही हैं आप और कही से ले लीजिये। छात्र निराश हुआ। खरीद कर पढना उसके लिये असभव था। मास्टर साहब ने उसके चेहरे को देखा और फौरन ही कहा कि चिन्ता क्यो करते हो, कल आकर ले जाना। साथ ही श्री प्रकाशजी से कहा कि ऐसा उत्तर क्यों देते हो यह कहाँ से लायेगा।

वे वैरागी थे। घर मे रहते हुए भी जल मे रहने वाले कमल की तरह निर्लिप्त थे। भोजन के अतिरिक्त सारा समय उनका पुस्तकालय मे जाता। वे

स्वय घरो से पुस्तकें लाते। गट्ठा बाधकर बगल मे दबाकर लाने मे वे हेठापन नही समझते थे। वे बच्चो को पढाते रहते और पुस्तको के गत्ते चढाते जाते थे। गणित के विशेषज्ञ थे। यदि कोई छात्र न होता तो वे आध्यात्मिक भजन गुनगुनाते और गत्ते चढाने का काम जारी रखते थे। उन्हे कवि दौलतरामजी भूधरदासजी आदि के अनेक भजन कण्ठस्थ थे।

वे सरल स्वभावी, निरभिमानी और और सच्चे अर्थों मे धर्मात्मा थे। कई बार वे अपनी छोटी २ कमियो को पूज्य पडित चैनसुखदास जी के सामने रखते और उनका समाधान चाहते थे। वे कहते अमुक गलती मुझ से हो गई, मैं क्या करू ? महान् आत्मा ही अपनी गल्तियो को ठीक करने मे सतत प्रयत्नशील रहता है– मास्टर साहब भी महामानव थे तभी आज वे हम सबके श्रद्धा के पात्र है।

वे मानवता के प्रतीक थे

(श्री मुन्नीलाल अजमेरा, चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट)

सन् १९३८ की बात है जबकि मेरी आयु १५ वर्ष की थी और मैं सातवीं कक्षा मे पढता था। मैं गणित मे बहुत कमजोर था—और मुझे मेरे स्वर्गीय पिताजी चिमनलालजी के आदेश से गर्मियो की छुट्टियो मे मास्टर साहब के पुस्तकालय मे जाने का अवसर प्राप्त हुआ और पहली बार सौम्य व अत्यन्त सादगी मे जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति से मेरा साक्षात्कार हुआ और न जाने किस दिव्य शक्ति से मेरा हृदय ऐसे महान् आत्मा को अपने गुरु के रूप मे पाकर गद्गद् हो गया। उनके अत्यन्त प्रेम व स्नेहपूर्ण शब्द "बच्चे कौनसी कक्षा मे पढते हो—यदि गर्मियो की छुट्टियो मे निरन्तर आते रहे तो मै तुम्हे गणित मे प्रवीण बना कर छोडू गा।" और वास्तव मे ऐसा ही हुआ। मास्टर साहब की निरन्तर देखरेख से दिन-दिन गणित में न केवल कमजोरी ही दूर हुई किन्तु किसी कठिन से कठिन प्रश्न को हल करने मे सरलता मालूम होने लगी।

मास्टर साहब मुझे धर्म का प्रारम्भिक ज्ञान भी कराते रहते थे और जीवन को आदर्श बनाने के लिये अन्य विषयो पर भी उपदेश देते थे। आज जिस अवस्था मे मैं अपने आप को पाता हूँ, वह मास्टर साहब की ही देन है। शिक्षा-क्षेत्र मे इस तरह का योगदान प्रत्येक विद्यार्थी के साथ रहता था।

मास्टर साहब मानवता के प्रतीक थे। अभावग्रस्त विद्यार्थी व विधवाओ के प्रति उनके हृदय मे अपार प्रेम था। वे जीवन भर तन, मन, धन से उनकी सेवा करते रहे।

वे सच्चे मायने में मानव थे

(श्री रामकिशोर व्यास)

चौमू के निवासी स्वर्गीय मास्टर मोतीलाल जी संघी जयपुर मे एक स्कूल के साधारण से अध्यापक थे। उन्होंने अपने जीवन काल मे सेवा का व्रत लिया और उसे जीवन के अ तिम क्षण तक निभाया। मास्टर मोतीलाल जी की साधारण वेषभूषा, खादी का लिबास और सौजन्यतापूर्ण बोलचाल थी। मेरा उनसे बचपन से ही सपर्क रहा है और जब से उन्होने सन्मति पुस्तकालय प्रारम्भ किया था तब से मैं भी उनके पास आया जाया करता था। उनमे पुस्तकें पढने को लाता था। मास्टर साहब ने पुस्तकें एकत्र करने मे जो परिश्रम किया उससे अधिक उनके सदुपयोग मे वे स्वय घर पर जाकर नवयुवको को पुस्तकें देते थे और वापिस लाते थे। इस प्रकार उन्होने पढने मे उत्साह बढाया। यदि किसी विद्यार्थी से पुस्तक खो भी जाती थी तो उसके लिए वे विद्यार्थी को कुछ नही कहते, बल्कि यह प्रेरणा देते थे कि खो गयी तो कोई बात नही, अब समाल कर रखना। यदि वह पुस्तक नही पढी हो तो दूसरी लेकर पढो।

मास्टर मोतीलाल जी की किसी व्यक्ति विशेष से किसी भी प्रकार की शत्रुता अथवा द्वेप की भावना नही थी। वे सच्चे मायने मे मानव थे। जाति-पाति के भेद से परे साधुव्रती थे। विद्यार्थी वर्ग के लिए तो वे कुबेर ही थे। अर्थ की जिन्हे आवश्यकता होती उन्हें वे पैसे से, किताबो की आवश्यकता वालो को किताबो से, तथा जीवन यापन की अन्य सामग्री भी जुटाते थे। विशेप बात यह है कि जीवन निर्माण हेतु साधन जुटाने पर भी उन्होंने अपने किये कार्य के लिए मुख से कभी नही कहा। नेकी कर कुए मे डाल का सिद्धान्त उन्होने अपने जीवन मे पूर्ण रूपेण उतारा था।

इस मानव की याददाश्त आज सन्मति पुस्तकालय एवं जयपुर शहर मे तथा राजस्थान के बाहर प्रवासी सैकडो सम्भ्रान्त परिवारो के रूपमे है जिनके जीवन-निर्माण मे मास्टर जी का हाथ रहा है।

उनके प्रति सच्ची श्रद्धान्जली यही होगी कि पूज्य मास्टर जी की बनाई हुई परम्परा को हम निभायें, उनकी प्रवृत्तियो को चलायें, पुस्तकालय को सच्चे रूप मे सचालित करें। इस कार्य के लिए सभी वर्गों व समाज के लोग योगदान को तैयार हैं।

सन्मति पुस्तकालय जिसके कि भवन का निकट भविष्य मे निर्माण होने जा रहा है, जिसके लिए भूमि उपलब्ध कराने में मेरा भी गिलहरी जितना योगदान रहा है। मुझे विश्वास है कि वह शीघ्र ही पूर्ण होगा और सर्वदा हमारा प्रेरणा स्रोत होगा—पूज्य मास्टर साहब के कार्य को आगे वढाने मे।

उनकी अमिट छाप मेरी मार्ग दर्शक

(डा० गोपीचन्द पाटनी)

आदर्श मानव, महान् त्यागी, मूक सेवा भावी, शिक्षा प्रेमी, आत्म सयमी, दृढ प्रतिज्ञ, निष्ठावान, असमर्थ छात्रो के सहायक, प्रचार से कोसो दूर, अध्ययन, शिक्षण, परोपकार की साक्षात् मूर्ति, सब ही क्षेत्रो मे एव बालक, युवा व प्रौढ सब ही व्यक्तियो के लिये 'आदर्श' 'मोती' एव 'लाल' मे भी सभी शिरोमणि पूज्य श्री मास्टर साहब के जीवन से मेरे ऊपर पडी अमिट छाप सदैव मेरी मार्गदशक रही है।

'स्कूल' कही जाने वाली किसी सस्था में शिक्षा ग्रहण करने का तो सौभाग्य मुझे नही प्राप्त हुआ परन्तु उनके जीवन व सम्पर्क से मैंने उनसे जो पाया व सीखा है वह मेरे लिए अमूल्य है। मैंने सदैव उन्हे पिता तुल्य व गुरु समझा है।

ऐसे व्यक्ति को किन शब्दो मे श्रद्धाजलि अर्पित की जाय, यह लेखनी व पार्थिव वाणी द्वारा सभव नही। यह तो उनके द्वारा वताये गये मार्ग—अध्ययन, मनन, परोपकार, पवित्र आचरण—द्वारा ही सभव हो सकता है।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि उनका जीवन सदैव प्रेरणा वना रहे।

जो जीवन पर्यन्त परोपकार में लगे रहे

(श्री कस्तूरचंद कासलीवाल)

स्व० मास्टर मोतीलालजी का नाम लेते ही एक ऐसा व्यक्तित्व सामने आ खडा होता है जिसने जीवन भर भलाई के काम किये। वे सच्चे अर्थ मे भारतीय शिक्षक थे और उन्होने न जाने कितने विद्यार्थियो का जीवन-निर्माण किया था। अभावग्रस्तो का अभाव उनसे देखा नही जाता था। वे मानवता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। जब वे किसी गली, रास्ते या बाजार से निकलते तो ऐसा लगने लगता जैसे मानवता ही साक्षात् रूप मे कही जा रही है। जब कभी कोई अपना रोना उनके पास जाकर रोने लगता तो चित्त पसीज जाता और फिर सब काम छोडकर उसके काम मे लग जाते। वे जीवन पर्यन्त मास्टरजी ही रहे और लोगो मे अध्ययन के प्रति अधिक से अधिक भावना भरते रहे।

मेरा उनसे यद्यपि अधिक सम्पर्क नही रहा किन्तु उनकी यशोगाथाए बराबर सुनने को मिलती रहती थी। उनकी सादगी एव परोपकारिता नगर मे चर्चा का विषय रहती। जीवन का एक क्षण भी वे व्यर्थ मे खोने को तैयार नही थे इसलिये ज्ञान के प्रसार मे लगे रहते थे। जब कभी मुझे उनके पुस्तकालय मे जाने का अवसर मिलता, मास्टर साहब प्राय वही मिलते। उस समय कभी वे लडको को पढाते हुए, कभी पुस्तकें देते हुए और कभी पुस्तको के गत्ते चढाते हुए मिलते। पुस्तको के लिये वे किसी को निराश करना नही चाहते थे। पुस्तकालय ही उनका साधना स्थान था और उसके माध्यम से वे ज्ञान-प्रसार के मार्ग को बराबर आगे बढाते रहते। घर से पुस्तकालय और पुस्तकालय से घर यही उनका ससार चक्र था। अपने शिक्षक जीवन मे उन्होंने न जाने कितने विद्यार्थियो का भला किया था। कितनो को नया जीवन दान दिया था और कितनो को सही मार्ग पर लगाया था। यही कारण है जो भी उनके सम्पर्क मे आ गया वही उनका होकर रह गया। वे पूर्ण साधु स्वभाव के महापुरुष थे और सस्कृत के एक पुराने श्लोक के अनुसार उनकी विद्या ज्ञान-प्रसार के लिये, धन अभावग्रस्तो का अभाव पूरा करने के लिये और शक्ति कमजोरो की रक्षा के लिये काम आती थी।

विद्या विवादाय धन मदाय
शक्तिपरेषां परिपीडनाय ।
खलाय साधो विपरीतमेतद्
ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय ।।

आदर्श महापुरुष

(डा० ताराचन्द्र जैन बख्शी)

मास्टर मोतीलालजी सघी त्याग, तपस्या, दया, सरलता व सादगी की प्रत्यक्ष सौम्य सजीव मूर्ति थे। क्रोध, अहकार मोह, उनको छू तक नही गये थे। उनका सारा जीवन ही सेवामय था।

मेरा मास्टर साहब से सर्वप्रथम प्रत्यक्ष परिचय सन् १६३७ मे हुआ। मेरे एक सहपाठी मित्र के माध्यम से जबकि मैं कॉलेज मे पढता था। मास्टर साहब ने मुझसे इस प्रकार आत्मीयता से बातचीत की, जैसे कोई वर्षों पुराना सम्पर्क हो। मेरे पिताजी श्री केसरलालजी बख्शी का नाम बतलाने पर तो उन्होंने कहा कि तुम मेरे ही बच्चे हो।

इसके पश्चात् मैं मास्टर साहब से उनके सन्मति पुस्तकालय मे से अक्सर पुस्तकें लेने के लिये जाने लगा। एक दिन मास्टर साहब ने मुझसे पूछा कि दिन भर मे ५ मिनट तुम अपने लिये भी कुछ काम करते हो या नही। मैंने उन्हें तुरन्त उत्तर दिया कि यह भी कोई पूछने की बात है। मैं २४ घटे ही खाना, पीना, पढना, मनोरजन करना यह सब कार्य अपने लिये ही तो करता हू। मास्टर साहब ने कहा अरे भाई ! यह सब तो शरीर की क्रिया है, शरीर तो यही पडा रह जायगा, अपनी आत्मा के कल्याण के लिये भी कुछ उद्यम करते हो या नहीं ? कहा से आये हो ? तुम्हारा क्या कर्तव्य हैं ? धर्म ही तुम्हारे साथ जायेगा। अत धर्म व चरित्र सम्बन्धी पुस्तकें अधिक पढा करो"। उस रोज ही सर्वप्रथम मास्टर साहब के उपदेश से मुझे भान हुआ कि मेरी आत्मा भी कोई वस्तु है और वह शरीर से भिन्न है। मास्टर साहब ऐसे ही सरल ढग से प्रेमपूर्वक उपदेशो द्वारा सभी विद्यार्थियो को धार्मिक शिक्षा की ओर आकर्षित करते हुए उन्हें धार्मिक पुस्तकें भी पढने के लिये देते थे।

उपरोक्त घटना के बाद तो मैं मास्टर साहब की सेवा मे जल्दी२ जाने लगा। उनकी सौम्य प्रकृति व प्रत्यक्ष सजीव मूर्ति के दर्शन से ही आत्मा मे अपार शांति प्राप्त होती थी। जब मैं कॉलिज मे १३वें दर्जे मे ही पढता था, तब ससुराल पक्ष की ओर से तुरन्त मेरा विवाह करने का तकाजा हुआ पर मैंने B. Sc. करने के पश्चात् ही विवाह करने के लिये कहा। फिर मास्टर साहब पर दबाव डाला गया कि वे विवाह कर लेने की स्वीकृति देने के लिये मुझे प्रेरणा देवें। पर मेरी पढाई मे लगन देख कर और मेरे विचार जानने के पश्चात् मास्टर साहब ने मेरे पक्ष का ही समर्थन किया, और इस प्रकार उनके सहयोग व मार्गदर्शन से मेरी पढाई की बाधा टल गई। मास्टर साहब ने सैकडों विद्यार्थियो को समय पर उचित सलाह देकर इसी प्रकार सन्मार्ग पर लगाया था।

छात्रों के लिए सदैव चिन्तित

(श्री कमलकिशोर जैन)

बात कोई १९३७-३८ की है, जब मैं जयपुर नगर के दरबार हाईस्कूल मे पढ़ता था और स्वर्गीय पूज्य मास्टर मोतीलाल जी सघी उसमे अध्यापक थे जिन्हे स्कूल के सभी छात्र जानते थे। और जिनके आगे सभी के मस्तक अपने आप झुक जाते थे। पढाने मे उनकी दक्षता, व्यवहार में स्नेह और कार्य मे कर्मठता ने उन दिनो शिक्षा क्षेत्र मे उनको ऐसा प्रसिद्ध कर दिया था कि जब किसी को कभी कोई कठिनाई होती वह मास्टर जी की शरण में जाता और मास्टर जी उसे टालते नही बल्कि अपने और भी अधिक नजदीक लाकर इस प्रकार से सहयोग देते थे कि वह जीवनभर उनका ऋणी हो जाता था।

चाहे व्यापार-व्यवसाय में और चाहे उच्चसरकारी क्षेत्र में, सभी जगह मास्टरजी के अनेक शिष्य आज ऊचे पदो पर हैं और अपने जीवन के सुखद क्षणो मे उनकी शिक्षाओ का स्मरण करते हैं जिसके कारण कि वे सतोष के साथ अपना कार्य कर रहे हैं। मैं व्यक्तिश ऐसे अनेक लोगो को जानता हू जिन्हे मास्टरजी की कृपा से स्कूल मे प्रवेश मिला, पुस्तकों का उनके लिए प्रबन्ध कराया गया और आवश्यकता हुई तब नि शुल्क ट्यूशन का लाभ भी उन्हे दिया गया। जो छात्र ऊची श्रेणी मे चले जाते थे और आगे शिक्षा प्राप्त

करने मे जिनको धनाभाव के कारण कठिनाई थी उन्हे मास्टर जी ने या तो ट्यूशन दिलाई या किसी व्यक्ति से आर्थिक सहायता। जिम किमी उच्च सरकारी अधिकारी और धनिक व्यक्ति के पास वे किसी सहायता के लिए चले जाते थे, कभी भी निराश होकर नही लौटे बल्कि वह व्यक्ति अपने आपको उनकी सेवा करने का मौका पाकर सौभाग्यवान् समझता था।

मास्टरजी सन्मति पुस्तकायल चलाकर छात्र-छात्राओ को जो पुस्तक लाभ देते थे, वह एक ऐसा स्थायी कार्य था जिसे कि ज्ञानार्जन के क्षेत्र मे आज भी भुलाया नही जा सकता। आज से काफी वर्षो पहले नियमित क्रम मे पुस्तकालय चलाना और घर घर सम्पर्क कर शिक्षाप्रद पुस्तको से सर्व-साधारण को लाभ देना साधारण बात नही थी। छोटी कक्षाओ के बच्चो के लिये उपन्याम पढने को वे ठीक नही समझते थे—इसीलिए ऐसे वर्ग मे वे धर्म सस्कृति या शिक्षा सम्बन्धी अन्य पुस्तकें अधिक देने पर बल देते थे। पुस्तकें एकत्रित करने और उन्हे पढने के लिए आदत डालने के क्षेत्र मे मास्टर जी ने अनुकरणीय कार्य किया था।

दरबार हाईस्कूल मे मैं उनके काफी निकट उन दिनो था। गर्मियो मे कुर्ता धोती पहने जब वे अपनी धीमी चालसे चलते हुए कही मार्ग मे मिल जाते थे तो अपने छात्रो को कुछ न कुछ ज्ञान की बात दे देते थे। सर्दियो मे या तो वे रूई की बन्डी पहनते थे या लम्बा कोट। अनुशासन भग करने या अनैतिक कार्य करने पर छात्रो को चाटा मार कर या डडे से पीटकर सही रास्ते पर लाने मे भी नही हिचकिचाते थे। उनसे सब डरते थे परन्तु हृदय से वे निर्मल थे और गरीब छात्रो को सहायता देने मे सदैव चिन्तित रहते थे।

उन दिनो पतलून पहनने का रिवाज कम था और बुशशर्ट तो चला ही नही था। स्कूल मे हाफपेंट-नेकर कमीज का रिवाज था। सामान्य तौर पर स्कूल के बाहर गरारा (पजामा) और कमीज युवक वर्ग मे पहना जाता था। धोती भी नवयुवक लोग पहना करते थे। मैं भी एक दिन पता नही क्यो धोती कमीज पहन कर कही जा रहा था। हल्दियो के रास्ते में वे मिल गये, उन्होने ही मुझे देख लिया और आवाज लगाई, रास्ते के बीच ठहराकर। नीचे से ऊपर तक मुझे देखा और मेरी खुली लाग की धोती को वही खुलवा-कर लाग बधवायी। उन्हे खुली लाग की धोती पहनना पसन्द इस लिए नही था कि उसमे व्यक्ति ढीला रहता है। मेरी क्या हिम्मत थी। मैंने चुपचाप जैसे उन्होंने कहा वैसा ही किया और काफी जान-पहचान के लोग

एकत्रित हो गये—बड़ी शर्म आयी, लेकिन क्या करता उनके सामने किसकी बोलने की हिम्मत थी। फिर मैंने भी उन दिनो ऐसी भूल नही की।

इसी तरह दूसरी घटना याद आती है जिसे मैं अभी तक नही भूल पाया हू। एक दिन प्रात जल्दी ही वे मेरे घर आगये और मुझसे उन पुस्तको की माग की जिन्हे मैं पिछली कक्षा में पढ चुका था और अब अगली कक्षा मे उनकी मुझे आवश्यकता नही थी। शायद वे किसी अन्य छात्र को देना चाहते थे। मैंने बहुत धीरे से गर्दन झुकाकर उत्तर दिया कि मैंने मेरे किसी रिश्तेदार को देने का आश्वासन दे दिया है। उन्होने कहा कि तुम तो एक को दोगे और मेरे से जाने कितने लोग इसका लाभ उठावेंगे। तुम्हारे रिश्तेदार को भी मैं लाभ पहुचा दू गा, उसे मेरे पास भेज देना। मैंने तुरन्त चुपचाप पूरी पुस्तकें दे दी और वास्तव मे उनसे कई छात्रो को लाभ पहुचा होगा।

संघी मोतीलालजी मास्टर
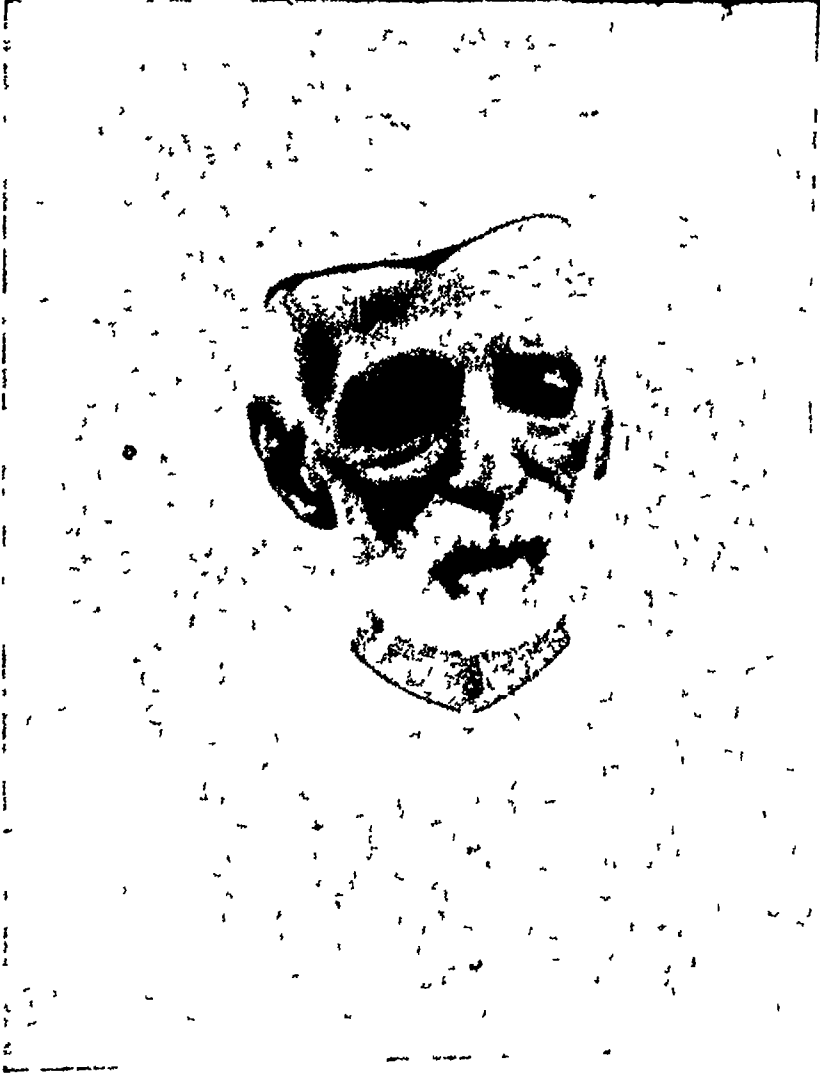
अन्तिम दर्शन

विचार
श्रौर
दृष्टिकोण

मास्टर मोतीलालजी ने एक पुस्तिका–अपना हित–पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित कराई थी जिसमे मानव-हित के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये थे, दूसरी पुस्तिका वैराग्य भजन-सग्रह थी। इसके अतिरिक्त उनकी सजिल्द छ नोट बुकें हैं जिनमे वे अपनी पसन्द के पद्य, गीत, कहावतें, उपदेश आदि सग्रह करते रहते थे। यहा, अपना हित, के कुछ अश दिए जा रहे हैं तथा कुछ भजन-उपदेश भी दिये जा रहे हैं जो मास्टर साहब के आध्यात्मिक विचार और दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हैं।

—सम्पादक

(१)

"इस श्वास के धोखे का क्या ठिकाना।
जीवन क्षणिक है यही सबने जाना॥
पर-स्वार्थ मे मुझको जीवन लगाना।
ना जाने किस क्षण यहा से हो, जाना॥

ससार मे अथवा भारत मे तीन ही बड़ी कौमे हैं:–हिन्दू, मुसलमान और ईसाई। तीनो के ही धर्म–हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म हैं। प्राचीनकाल मे बौद्ध-धर्म भी भारत मे था, परन्तु आजकल इस धर्म के अनुयायी चीन, जापान आदि देशो मे हैं, भारत मे बहुत कम हैं। हिन्दू, इस्लाम और ईसाई तीनों ही नर्क, स्वर्ग, मोक्ष, मनुष्य जाति, पशु, पक्षी आदि को मानते हैं।

हिन्दू कहते हैं मोक्ष मनुष्य को ही प्राप्त हो सकता है, नारकी, देव, पशु, पक्षी आदि को नही। इसी तरह मुसलमान भी कहते हैं 'इन्सान अशरफ उल मखलूकात' है। ईसाई भी इन्सान का ही दर्जा ऊचा मानते हैं, इसलिये मनुष्य जीवन बहुत ही अमूल्य है।

यह जीव एक अकेला ही है–माता, पिता, पुत्र, स्त्री, मित्र आदि कोई भी इसका सच्चा साथी नही है, सब मतलब के हैं। जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक अपनाना और स्वार्थ खतम होने पर दुतकारना। यहा तक कि यह जीव जो कर्म करता है, वह भी तो साथ नही रहता, भला-बुरा फल देकर झड जाता है। एक धर्म ही ऐसा है जो इस जीव के साथ रहता है और दु ख में सहायता करता है, जब हम हमारे सच्चे साथी धर्म को ही भूल गये, तो फिर क्यो न हो! इसके बिना ही हम सब दु खी हो रहे है। किसी को पैसा न होने

का दु ख, किसी को कुपुत्र का, कोई अस्वस्थ है तो कोई अल्पायु है, अर्थात कोई जीव सुखी नही है। इसलिये सब प्राणी, मनुष्य व मनुष्येत्तर सब ही सुख चाहते हैं, दुख से डरते हैं, दु खो से बचने या छूटने और सुख प्राप्ति के लिये निरन्तर उद्यमशील रहते हैं। खाना-पीना, व्योपार करना, पढना, पढाना, देश-देशो मे यात्रा करना, जप, तप, दान, पूजा, सेवा, भक्ति आदि सब इसी निमित्त करते हैं।

यदि सुख का लक्ष्य भी पहचान लिया, लेकिन जिस दिशा मे लक्ष्य है वह दिशा न जानी, और विपरीत दिशा मे चलना प्रारम्भ कर दिया, जैसे लक्ष्य तो पूर्व दिशा मे हैं और हम पश्चिम की तरफ रवाना हो जावें, तो हम कितनी भी तीक्ष्ण गति से चलें, लक्ष्य से दूर ही होते जावेंगे और लक्ष्य प्राप्ति कभी भी नही होगी।

लक्ष्य भी पहचान लिया, दिशा भी जान ली, यदि यथार्थ मार्ग पर न चलें तो भी लक्ष्य की प्राप्ति नही हो सकती। लक्ष्य की प्राप्ति तब ही हो सकती है कि जब हम हमारे पूर्वजो के चले हुये निष्कंटक मार्ग पर चलें और उनके माफिक लक्ष्य प्राप्त करें। बस इन्ही तीन बातो को 'सम्यक्-दर्शन' [अपने लक्ष्य की पहचान तथा उस पर दृढ श्रद्धा या विश्वास], 'सम्यक्ज्ञान' [लक्ष्य की दिशा जानना तथा लक्ष्य का सच्चा ज्ञान], और 'सम्यक्चारित्र' [लक्ष्य की दिशा मे शक्ति के अनुसार ठीक ठीक मार्ग पर चलना] इनको Right Belief, 'Right Knowledge and Right Conduct भी कह सकते है।

अब प्रश्न यह उठता है कि लक्ष्य है क्या चीज ? इसका उत्तर यह है कि हम सब जीवो का ध्येय आत्मा की उस अवस्था को प्राप्त करना हो सकता है जिसमे दु ख, आकुलता, चिन्ता, इच्छा आदि का कोई भी कारण न रहे। वह दशा 'मोक्ष' है। मोक्ष प्राप्ति होने पर आत्मा को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य अर्थात् अनन्त शक्ति प्राप्त हो जाती है और इन गुणो मे कभी बाधा नही आती।

मोक्ष की प्राप्ति मे हम ससारी जीवो को क्या क्या बाधाए रोक रही हैं? कठोपनिषद् मे बतलाया गया है कि यह शरीर एक गाडी है, इन्द्रिया घोडे हैं, मन लगाम है, बुद्धि अर्थात् ज्ञान कोचवान है और आत्मा इसमे बैठने वाला है। शरीर को हम सब लोग अपना मानते हैं, यही हमारा अज्ञान तथा अविद्या है, क्योकि यह शरीर तो किराये की गाडी के समान है।

हम लोग आजकल शरीर के साईस ही बन रहे हैं, इसको अच्छा खिलाना, सुन्दर कपडे पहनाना, पोछना, धोना, निहलाना आदि ही अपना

कतव्य समझते हैं। आजकल के नवयुवक तो तेल साबुन लगाकर शरीर का शृङ्गार करना बूटो की पालिश करना तथा छैल-छबीला बनना ही अपना प्रधान कर्तव्य समझते हैं। ऐसा सुनने म आया है कि साल भर मे एक लाख रुपयो से अधिक का तेल साबुन सिफ जयपुर ही मे खर्च हो जाता है। फैशन इतना बढ गया है कि इतने ही रुपयो की बीडी सिगरेट का फिजूल खर्च जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, बढता जाता है, इन्ही वस्तुओ से सारा ससार दुखी हो रहा है। इसका खास कारण एक यह भी है कि हम बिना वजह अपनी आवश्यकताए बढा लेते है जिनका फिर घटना बडा कठिन हो जाता है और फलत हम सब दुखी रहते हैं। हमको इस शरीर रूपी गाडी के साईस न बन कर इसके मालिक बनना चाहिए और इस गाडी को काम मे लेकर हमारा लक्ष्य जो मोक्ष है उसकी प्राप्ति की कोशिश करना चाहिए।

हमे अपने शरीर रूपी गाडी पर सवार होकर मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर इस प्रकार चलना चाहिए कि जब यह मौजूदा शरीर रूपी गाडी छूटे तो फिर मनुष्य शरीर रूपी गाडी ही हमको मिले। फिर यदि हम लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग पर ही चलते रहे तो पाच सात शरीर पाकर ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और घोर सासारिक दुखो से मुक्त हो सकते है। यदि यह मनुष्य शरीर रूपी गाडी छूट कर फिर मनुष्य शरीर रूपी गाडी न मिले तो फिर चौरासी लाख योनि मे भ्रमण करना पडेगा और कठोर यातना सहनी पडेगी।

(३)

प्रश्न उठता है—मनुष्य शरीर छूटकर फिर मनुष्य शरीर की प्राप्ति किन साधनो से हो सकती है?

उत्तर यही है कि थोडा आरम्भ रखना, थोडा परिग्रह रखना, स्वाभाविक कोमलता और ज्ञान-दान इन चारो के करने से मनुष्य शरीर फिर मिल सकता है। प्रत्यक्ष मे देखते हैं कि जो बोये जाते हैं तो जौ मिलते हैं और गेहू बोये जाते है तो गेहू मिलते हैं। इसी तरह जब ज्ञान दान दिया जाता है तो ज्ञान का भोग मनुष्य शरीर मे ही हो सकता है, देव, नारकी, पशु, पक्षी के शरीर मे ज्ञान का भोग नही हो सकता। आजकल लोगो ने ज्ञान को भी एक व्यापार समझ रक्खा है। वे अक्सर ऐसा कहते हैं कि हमको मिलता ही क्या है? जितना मिलता है उतना सा ही काम कर देते हैं। यह उन लोगों की बडी भूल है।

(४)

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित तीन बातें भी ध्यान मे रखने की हैं— (१) जीवन निर्वाह, (२) जीवन सुधार (३) और सन्यास मरण।

जीवन-निर्वाह न्याय नीति से द्रव्य उपार्जन करके होना चाहिये। जिसका जीवन-सुधार होता है उसी का सन्यास व धार्मिक मरण हो सकता है, जिसका धार्मिक मरण नही होता वह जीव मरकर दुर्गति मे जाता है।

जीवन-सुधार ससार से विरक्तता और वैराग्य से ही हो सकता है, (इसके लिए चार बातें और याद रखनी चाहिये) किन्तु इसके माने यह नही है कि साधु ही हो जावें। तो क्या करे ? मसार मे रहते हुए भी ससार से विरक्त रहे। रामकृष्ण परमहस कहते है कि "नाव चाहे पानी मे रहे, लेकिन नाव मे पानी नही रहना चाहिये।" जीव भले ही ससार मे रहे मगर जीव के हृदय मे ससार नही रहना चाहिये। एक कवि कहते हैं—

रत्नत्रय धर्म पालकर, करों कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारा रहो, ज्यों धाय खिलावे बाल॥

आत्म श्रद्धान, श्रद्धा सहित आत्मा का ज्ञान और इस ज्ञान के अनुसार आत्मा मे रमण या चर्या करना ही रत्नत्रय धर्म है। चार आवश्यक बातें ये है— दान देना, प्रियवचन बोलना, मात्र जीवो का विनय करना और दूसरो के गुणो को ग्रहण करना तथा अवगुणो पर दृष्टि न डालना।

(५)

महर्षि पतञ्जली कहते हैं कि यम और नियमो के पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यम पाच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन सब यमो का गुरु है—लालसा का त्याग। किसी प्रकार की लालसा का न होना ही मोक्ष का मार्ग हैं। जब तक लालसाए बनी हुई हैं, हृदय से निकली नही हैं, तब तक मोक्ष की इच्छा करना पवन को मुठ्ठी में रोकने की चेष्टा करना है, इसलिये लालसाओ का त्याग आवश्यक है। इनका त्याग करने के लिए झूठ को छोडने की आवश्यकता है। जहा झूठ है वहा हिंसा है, जहा हिंसा है वहा लालसा है। झूठ का त्याग करने के लिए चोरी का त्याग करना आवश्यक है। बिना चोरी के त्यागे झूठ नहीं छूट सकती। चोरी के त्यागने के लिये कुशील का त्याग करना अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना जरूरी है। बिना ब्रह्मचर्य पालन किये बिना इन्द्रियो को वश मे किये, न तो चोरी छूट सकती है, न झूठ और न हिंसा ही। ब्रह्मचर्य

पालन करने के लिये ही परिग्रह का त्याग करना पडता है । पाप कराने वाला या ससार मे भ्रमण कराने वाला एक परिग्रह है, इसलिये परिग्रह को छोडना जरूरी है । ससार की जिस वस्तु से आत्मा को ममत्व है, वही परिग्रह है । ससार की प्रत्येक वस्तु से ममत्व छोडो । इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिये परिग्रह, अब्रह्मचर्य, चोरी, झूठ, और हिंसा का क्रमश त्याग करना होता है । जो आत्मा इसका जितने अश मे त्याग करेगा उसकी लालसाए ही उतनी ही कम होगी, मोक्ष के वह उतना ही समीप होगा ।

नियम पाच प्रकार के बताये हैं । (१) शौच दो प्रकार का, बाहर और भीतर की शुद्धि । न्याय नीति से उपार्जित द्रव्य के द्वारा आहार तथा योग्य बर्ताव मे आचरण की, और जल मिट्टी आदि से शरीर की शुद्धि को बाहर की शुद्धि कहते हैं । राग,द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारो का नाश होकर अन्त करण का शुद्ध हो जाना भीतर की शुद्धि है ।

(२) सन्तोष—जो कुछ कर्मो के उदय से प्राप्ति हो उसी मे सन्तुष्ट रहना सन्तोप हैं । एक कवि कहता है —

सन्तोषी सदा सुखी, दु खी तृष्णावान ।
चाहे वेद पढ़ो, चाहे पढ़ो कुरान ।।

अपने से छोटों को लख, सन्तोष हृदय मे लाओ तुम ।
सम्पति का अभिमान छोड, छोटो पर निगाह लगाओ तुम ।।

(३) तप—शीतोष्णादि बाईस परिषहो पर विजय प्राप्त करना और व्रतो का करना, भूख प्यास आदि का कष्ट सहना, उपसर्गों को सहना तप है । तप और ध्यान से तमाम सचित कर्मों का बिना फल दिये नाश हो जाता है ।

(४) स्वाध्याय—आप्त अर्थात् सर्वज्ञ पुरुषो के उपदेशो के अनुसार लिखे हुये ग्रन्थो का पढना, पढाना, सुनना स्वाध्याय है ।

(५) ईश्वर प्रणिधान—ससार से बिलकुल हटकर ईश्वर मे तन्मय हो जाने को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं ।

लोग अक्सर कहा करते हैं कि अभी जवानी तो भोग भोगने और ससार के सुख देखने की है । धर्म सेवन के लिये तो बुढापा ही बहुत है । बुढापे मे इन्द्रिया, हाथ, पैर आदि सब शिथिल हो जाते हैं, उस समय सासारिक कार्य ही नही हो सकते तो मोक्ष प्राप्ति जैसा दुर्लभ काम तो कैसे हो सकता है । एक कवि कहता है —

"तरुण भये मन भ्रमर भया, वृद्ध भये देह थाक रही है।
दिन बीत गये प्रभु नाम जपे, अब जीतब मे क्या खाक रही है?
प्राण थके बुद्धि हीन भई, अब नैनन मे नहीं ताक रही है।
लोग कहे अजी राखो रही, अब राखन को क्या राख रही है??

मनुष्य का कर्त्तव्य यह है कि जवानी मे ही ऐसे मार्ग को ग्रहण करे और ऐसे कार्य करे जिसमे उसे बुढापे मे पछताना न पड़े।

(६)

हम किसी का उपकार या भला करें तो उसका उस व्यक्ति पर एहसान न जतावें। यदि हमारे प्रति कोई उपकार करे तो हम उसके कृतज्ञ रहे और उसे याद रक्खें। भगवान व्यासदेव अठारह पुराणो का सार केवल दो ही वचनो मे कहते हैं—"परोपकार पुण्य का हेतु है और पर-पीड़न पाप का हेतु है।

आभरण नर देह का, बस एक पर-उपकार है।
हार को भूषण कहे, उस बुद्धि को धिक्कार है।।

हम लोगो को 'ब्राह्मण' बनने की कोशिश करनी चाहिये।

जपो यस्य तपो यस्य यस्य चेन्द्रियनिग्रह।
सर्वभूतदया यस्य स वै ब्राह्मण उच्यते।।

भावार्थ—जो जप करता है, तप करता है, इन्द्रियों को वश मे रखता है, सब प्राणियो पर जिसके हृदय मे दया भाव है वह ब्राह्मण है।

(७)

प्रत्येक मनुष्य को सुबह उठते ही भगवान से हाथ जोडकर पांच बातो की प्रार्थना करनी चाहिये।

(१) आज मुझसे कोई पाप कार्य या बुरा काम न हो जाय। (२) मेरे ज्ञान की वृद्धि हो। (३) मेरे परिग्रह कम हो। (४) हे भगवन! कभी ऐसा अवसर आवे कि साधु बनकर मानव जीवन सफल करूं। (५) हे भगवन! मेरा धार्मिक तथा सन्यास मरण हो। रात को सोते समय दिन भर के किये कार्यों का विचार करे कि कोई अनुचित काम तो नही होगया है। यदि हो गया हो तो पश्चात्ताप करे और भगवान से माफी मागे और प्रार्थना करे कि भविष्य मे मुझसे ऐसा कार्य न हो। यदि किसी जीव को बाधा पहुची हो या किसी का नुकसान हो गया हो तो शुद्ध हृदय मे हाथ जोड कर माफी मागे। यदि फिर कभी उससे मिलना होजाय तो हाथ जोड

कर माफी मागे इसके पश्चात मात्र जीवो से प्रार्थना करे कि हे सब जीवो ! आज तक तुमसे मेरे प्रति कोई अपराध हुआ तो उसको मैं आपको क्षमा करता हू, और मुझसे आपका कोई अपराध हुआ हो, तो आप मुझ को क्षमा करे ।

मैं इच्छुक हू क्षमा भाव का, क्षमा कीजिये ।
भूल चूक अपराध हुये हों, माफ कीजिये ।।
मै अपना मन साफ सभी से कर लेता हू ।
सबको सब विधि प्रेमधार माफी देता हू ।।

जहा तक हो सके प्रत्येक मनुष्य को दो बातो को ध्यान मे रखना चाहिये— मौत और भगवान' ।

दो बातन को याद रख, जो चाहे कल्यान ।
'नारायण' एक मौत को, दूजो श्री भगवान ।।

मौत और भगवान को हर समय याद रखने से मनुष्य से पाप नही होते ।

एक मन्दिर मे रोज कथा बचती थी । जितने सुनने आते थे सबको एक २ मूठी बताशे की दी जाती थी । इसके लालच से एक चौकीदार का लडका भी नित्य कथा सुनने जाने लगा । सुनते २ उसे कुछ धर्म का बोध भी हो गया । फसल के दिनो मे खेतो में से चौकीदार दो मन की पोट रोज चुरा लाया करता था । एक दिन उस चौकीदार ने अपने लडके से कहा 'तू आज मेरे साथ चले तो चार मन की पोट चुरा लाऊ । ले तो मैं आऊगा, मगर मुझसे उचती नही । लडका चला गया, चौकीदार ने पोट बांधली और चारो ओर देखने लगा कि कोई देखता तो नही है । तब उस लडके ने कहा 'बाबा' तूने ऊपर तो देखा ही नही, चौकीदार ने पूछा 'कौन देखता है ? लडके ने कहा – भगवान देखते हैं । चौकीदार पर ऐसा प्रभाव पडा कि पोट के अनाज को फेंक कर उस दिन से चोरी करना छोड दिया ।

धन दे तन को राखिये, तन दे रखिये लाज ।
तन दे, धन दे, लाज दे, एक धर्म के काज ।।

अन्त मे —

मुझको सदा करना क्षमा, कर याचना चरनन परू ।।
ससार के सब प्राणियों में, आत्मवत दर्शन करू ।।
और मित्रता सब जगत के, प्राणियो से हो सदा ।
द्वेष रञ्च न हो किसी से, प्रेम सब से हो सदा ।।

---

(१)

कामना

दयामय ऐसी मति होजाय ।
त्रिजगत की कल्याण कामना, दिन दिन बढ़ती जाय ।।
औरो के सुख को सुख समझूं, सुख का करूं उपाय ।
अपने दुख सब सहू किन्तु पर दुख नहिं देखा जाय ।।
अधम अज्ञ अस्पृश्य दीनतम, दुखी और असहाय ।
सकल जीव अवगाहन हित मम उर सुरसरि बन जाय ।।
भूला भटका उल्टी मति का जो है जन-समुदाय ।
उसे सुझाऊ सच्चा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय ।।
सत्य धर्म हो सत्य कर्म हो सत्य ध्येय बन जाय ।
सत्य चिदानद और लखें पर सत्य स्वरूप समाय ।।

(२)

मेरी अभिलाषा

सन्त साधु बनके विचरू वह घडी कब आयगी ।
शान्ति दिल पर मेरे वैराग्य की छा जायगी ।। टेक ।।
मोह ममता त्याग दू मैं सब कुटुम्ब परिवार से,
छोड दू झूंठी लगन धन धान्य अरु घरबार से ।
नेह तजदू महल और मन्दिर अरु चमन गुलजार से,
वन मे जा डेरा करू मुह मोड इस ससार से ।। १ ।।

काल सिर पर काल का खजर लिए तैयार है,
कौन बच सकता है इससे इसका गहरा वार है ।
हाय ! जब हर हर कदम पर इस तरह से हार है,
फिर न क्यो वह राह पकडू सुख का जो भण्डार है ।। २

ज्ञान रूपी जल से अग्नि क्रोध की शीतल करू,
मान माया लोभ राग औ द्वेष आदिक परिहरूं ।
बस में विषयो को करूं और सब कषायो को हरूं,
शुद्ध चित आनन्द से मैं ध्यान आतम का धरूं ।। ३ ।।

जग के सब जीवो से, अपना प्रेम हो और प्यार हो,
और मेरी इस देह से ससार का उपकार हो।
ज्ञान का प्रचार हो और देश का उद्धार हो,
प्रेम और आनन्द का व्यवहार घर घर वार हो ॥ ४ ॥

प्रेम का मन्दिर बनाकर ज्ञानदेवहिं दू बिठा,
शान्ति और आनन्द के घडियाल घण्टे दूँ बजा।
और पुजारी बनके दू मैं सब को आतम रस चखा,
यह करूँ उपदेश जग मैं 'कर भला होगा भला ॥ ५ ॥

आए कब वह शुभ घडी जब बन विहारी बन रहू,
शान्त होकर शान्ति-गगा का मैं निर्मल जल पिऊँ।
"ज्योति" से गुण ज्ञान की अज्ञान सब जग का दहू,
'हो सभी जग का भला' यह बात मैं हरदम चहू ॥ ६ ॥

(३)

प्रभात-चिन्तन

या नित चितवो उठिके भोर—
मैं हू कौन ? कहा तें आयो ? कौन हमारी ठोर ॥टेक॥

दीसत कौन ? कौन यह चितवत ? कौन करत है शोर ?
ईश्वर कौन ? कौन है सेवक ? कौन करत झकझोर ? ॥ १ ॥

उपजत कौन ? मरै को भाई ? कौन डरे लखि घोर ?
गया नही आवत कछु नाही, परिपूरन सब ओर ॥ २ ॥

और ओर मे और रूप ह्वै, परनति करि लई और।
स्वाग धरे डोलो याही तैं, तेरी 'बुधजन' मोर ॥ ३ ॥

(४)

सुभाषित

ईश्वर के घर जाने का यह रास्ता है नर।
दिल किसी का मत दुखा फिर जी चाहे सो कर ॥ १ ॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब तक मन मे खान।
तब तक पडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥ २ ॥

तू तो याही कहत है, मेरी माया मुलक ।
तेरे ही राखे रहे, तो काया राख पलक ।।३।।

जहा राम तह काम नही, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहू होत नहिं, रवि-रजनी इक ठाम ।। ४ ।।

छामा-खडग लीने रहै, खल को कहा बसाय ।
अग्नि परी तृन-रहित थल, आपहिते बुझ जाय ।। ५ ।।

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देहि उडाय ।। ६ ।।

आप भुलानो आपतै, बध्यौ आपतें आप ।
जाको ढूढत आप तू, सो तू आपो आप ।। ७ ।।

(५)

राधा-स्वामी हुजूर महाराजा का वचन

मनसा वाचा कर्मणा सबको सुख पहुँचाय ।
अपने मतलब कारने दु ख न दे तू काय ।।

जो सुख नाही दे सके तो दु खँ काहू मत देय ।
ऐसी रहनी जो रहे सोई शब्द-रस लेय ।।

(६)

रामायण

विराजै रामायण घट माहि,
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहिं ।। १ ।।

आतम-राम, ज्ञान गुण लछमन, सीता सुमति समेत ।
शुभ उपयोग वानर दल मडित, वर विवेक रण-खेत ।। २ ।।

ध्यान धनुष टकार सोर सुनि गई विषय दिति-भाग ।
भई भस्म मिथ्या मत लका, उठी धारना आग ।। ३ ।।

जरे अज्ञान भाव-राक्षस कुल, लरे निकाछित सूर ।
जूझे राग-द्वेष सेनापति, ससय गढ़ चकचूर ।। ४ ।।

विलखत कु भकरण भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव ।
थकित उदार वीर महि रावण, सेतुबन्ध समभाव ।। ५ ।।

मूर्छित मदोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान ।
छटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे छपक गुणवान ।। ६ ।।

निरखि सकति गुण चक्र सुदर्शन, उदय विभीषण दीन ।
फिरै कवधमही रावण की, प्राण-भाव सिर हीन ।। ७ ।।

इह विधि सकल साधु घट अन्तर, होय सहज सग्राम ।
वह व्यवहारदृष्टि-रामायण, केवल निश्चय राम ।। ८ ।।

(७)

बहुत से मनुष्यों की यह इच्छा रहती है कि हमारा प्रभाव दूसरो पर पड़े और वे कोशिश भी करते है परन्तु यह उनकी भूल है । प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन-सुधार की कोशिश करनी चाहिये । जीवन-सुधार की यह तरकीब है कि अपने अन्दर जो दुर्गुण हों उनको निकालने की और सद्गुणो को ग्रहण करने की तरकीब करनी चाहिये । जब दुर्गुणो का नाश हो जायगा और सद्गुण ही सद्गुण बच रहेंगे तो दूसरो पर प्रभाव अपने आप ही पड़ने लगेगा ।

(८)

अब हम अमर भये न मरेंगे, हमने आतमराम पिछाना ।।

जल में गलत न जलत अग्नि मे, असि से कटत न विष से हाना ।।
चीरत फास नपेरत कोल्हू, लगत न अग्नि बाण निसाना ।।१।।

दामिनि परत न हरत वज्रगिरि, विषधर डस न सके यह जाना ।
सिंह व्याघ्र गज ग्राह आदि पशु, मार सके कोई दैत्य न दाना ।।२।।

आदि न अन्त अनादि निधन यह, नहि जनमत नहि मरत सयाना ।
पाय पाय पर्याय कर्मवश, जीवन मरन मान दुख ठाना ।।३।।

यह तन नसत और तन पावत, और नसत पावत अरु नाना ।
यो बहुरूप धरे बहुरूपियो, बहु स्वांग धरे मन माना ।।४।।

ज्यो तिल तेल दूध मे घी ज्यो, त्यो तन मे आतमराम समाना ।
देखत एक, एक ही समझत, कहत एक ही मनुज सयाना ।।५।।

पर पुदगल, पर यह आतम नहि इक दो तत्व प्रधाना ।
पुद्गल मरत जरत अरु विनसत, आतम अजर अमर गुणवाना ।।६।।

अमर रूप लखि अमर भये हम, समझे भेद जो वेद बखाना ।
ज्योति जगी श्रुत की घट अन्दर, ज्योति निरन्तर उर हर्षाना ।।७।।